द्विमासिक पत्रिका

जनवरी 2026-फरवरी 2026

बेग़मपुरा

सभ्यता का आह्वान

साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य

संवाद का मंच

विशेषांक

स्त्री-विमर्श की कहानियां

भारत का अन्तर्मन

हमारे बारे में

'बेगमपुरा: सभ्यता का आह्वान' द्विमासिक पत्रिका है, जिसका इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉफ्रेंस उपक्रम मूलनिवासी सभ्यता संघ द्वारा पीडीएफ प्रारूप में वेबबेस प्रकाशन किया जा रहा है। इसका प्रबंधन, वेब प्रकाशन मई–जून 2025 से किया जा रहा है। यह पत्रिका अंबेडकरवादी विचारधारा से परिचालित है जिसमें तथागत गौतम बुद्ध, रैदास, कबीर, फुले व पेरियार से लेकर मौजूदा मानवतावादी दर्शन शामिल हैं। समाज में समता, स्वतंत्रता, बंधुता की स्थापना हेतु यह पत्रिका मैत्री, प्रेम और सहिष्णुता की भावना को बढ़ाने का कार्य करती है। समाज में उपेक्षित–अधिकारविहीन व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करना, संविधान की उद्देशिका के अनुरूप भारतीय समाज का मानस तैयार करना तथा भौतिक बुद्धिवाद की भारतीय सभ्यता का विकास करना इस पत्रिका उद्देश्य है।

पत्रिका के लिए सामग्री भेजते समय ध्यान रखने योग्य बातें

- साहित्यिक रचनाओं के पुनर्पाठ, आलोचना के पूर्व प्रतिमानों की पुनर्व्याख्या करते हुए शोध आलेख, आलोचकों की आलोचना, पुस्तकों को आधार बनाकर लिखें गए लेख, समसामयिक और ऐतिहासिक महत्व की पुस्तकों पर आधारित सूचनापरक लेख, बहुजन साहित्य की धारा जैसे दलित–आदिवासी–पिछड़ा वर्ग के बहुजन नायकों, कलाओं, गीतों और पेशों की जानकारी देते शोधपरक लेख।
- सामग्री की शब्द सीमा 3 से 5 हजार है। सभी प्रकाशकीय सामग्री यूनिकोड में टाइप और अप्रकाशित होनी चाहिए। भाषिक शालीनता का ख्याल रखा जाए।
- प्रकाशित होने वाली सामग्री का चयन संपादक मंडल द्वारा किया जाएगा।
- संपादक को मूल भावना के अनुरूप आंशिक संशोधन/टिप्पणी करने का अधिकार होगा।

बेगमपुरा
सभ्यता का आह्वान
साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य
वर्ष 1। अंक 5। जनवरी-फरवरी 2026। दिल्ली

परामर्श मंडल

मा. द्वारका भारती, मा. कर्मशील भारती, डॉ. कुसुम वियोगी, मा. विपिन बिहारी

पूर्व समीक्षक

प्रो. (डॉ.) नीलम, लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

प्रो. (डॉ.) गोरख निळोबा बनसोडे (शोध निदेशक), हिंदी विभाग सरदार बाबासाहेब माने महाविद्यालय, सातारा, संबद्ध- शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र।

डॉ. प्रभाकर निसर्गंध, एसोसिएट प्रोफेसर, श्रीविजय सिंह यादव कॉलेज, पेठ गांव, कोल्हापुर सबंद्ध -शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र।

डॉ. देवी प्रसाद (आचार्य), सेठ नन्दकिशोर पटवारी राजकीय महाविद्यालय, नीम का थाना, संबद्ध -पंडित दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

प्रो. (डॉ.) सनोज कुमार, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

संपादक मंडल

डॉ. नीलिमा बागड़े ☎9407352073 | **डॉ. श्यामसुंदर मिरजकर** ☎9421212352 | **डॉ. हरे राम सिंह** ☎8544034280 | **डॉ. पूरन सिंह** ☎9868846388 | **डॉ. वंदना** ☎8178190409

प्रधान संपादक

दयाराम ☎9368125292

कार्यकारी संपादक

शीलबोधि ☎9971566918

सहायक कार्यकारी संपादक

डॉ. सरिता ☎9999039617। मा. राजेंद्र प्रसाद ☎9268798084

प्रकाशन प्रबंधन : इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस, नई दिल्ली
(मूलनिवासी सभ्यता संघ का उपक्रम)

संपादकीय कार्यालय

527-ए, निकट आंबेडकर पार्क, नेहरू कुटिया, कबीर बस्ती, मल्कागंज, दिल्ली-110007

सहयोग राशि रु. 160 वार्षिक

शब्द संयोजन-अवनिश कुमार बौद्ध। **आवरण**-राजेंद्र प्रसाद

'बेगमपुरा: सभ्यता का आह्वान' में प्रकाशन संबंधी निर्णय संपादक मंडल द्वारा सामूहिक रूप से लिए जाते हैं, प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं, जिनसे संपादक मंडल की सहमति होना अनिवार्य नहीं है, संपादक मंडल को प्रकाशित होने वाली सामग्री में संशोधन या परिवर्तन करने का अधिकार होगा, 'बेगमपुरा: सभ्यता का आह्वान' से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है।

'बेगमपुरा: सभ्यता का आह्वान' मूलनिवासी सभ्यता संघ के लिए मू. सुनील कुमार द्वारा ई पत्रिका के रूप में प्रकाशित करते हुए इंडियन नेशनल लिटरेचर कॉन्फ्रेंस की वेबसाइट पर जारी, संपादक **शीलबोधि**

बेगमपुरा
सभ्यता का आह्वान
साहित्य का आंदोलन-आंदोलन का साहित्य
वर्ष 1। अंक 5। जनवरी-फरवरी 2026। दिल्ली

संपादकीय

स्त्री विमर्श का वितान, डॉ. पूरन सिंह : 3
कहानी दर्शन को सोच में बदलती है, शीलबोधि : 5

स्त्री विमर्श की कहानियाँ

1 चलते-चलते, सुशीला टाकभौरे : 14
2 नत्थो मरी नहीं है, कमलेश चौधरी : 19
3 गुलमोहर, कविता विकास : 25
4 अभिशप्त जीवन, पुष्पा विवेक : 27
5 उजाले की ओर, डॉ. सुमा टी आर : 33
6 तीसरी कसम, अनीता भारती : 37
7. दंश, डॉ. सुमित्रा मेहरोल : 42
8 कसक, डॉ. पूनम तुषामड़ : 46
9 फिर यहीं आयेंगे वे..., डॉ. राजकुमारी : 54
10 कितने सपने कितनी हकीकत, सलीमा : 58
11 मेरी स्वानुभूति तेरी स्वानुभूति, डॉ. कनक लता : 63
12 तह-रुश, सोमा विश्वास : 72
13 हौसला, डॉ. वंदना : 75
14 ईर्ष्याग्नि, डॉ. प्रिया राणा : 78
15 पहचान, अंजली कॉजल : 83
16 प्रत्युत्तर, सुनीता बौद्ध : 89
17 जाति का यथार्थ, डॉ. मोहिनी 'मिंकी' : 91
18 मदमस्त, डॉ. तपस्या चौहान : 94
19 वे गुरु हैं हमारे, डॉ. धनेश्वरी : 99
20 नाम के आगे सन्नाटा, डॉ. यशोदा कुमारी : 104
21 महकता कोना, डॉ. दीपा : 107
22 मोक्ष, डॉ. प्रियंका सोनकर : 114

विशेषांक संपादकीय

बेग़मपुरा
स्त्री विमर्श का वितान

डॉ. पूरन सिंह
विशेषांक संपादक
9868846388

बेग़मपुरा:सभ्यता का आह्वान' पत्रिका का पांचवा अंक स्त्री विमर्श की कहानियाँ निकालते हुए हमें खुशी हो रही है। हमने उस परिपाटी को यहां तोड़ा है, जिसमें महिला पर यदि कोई विशेषांक निकलेगा तो वह महिला ही निकालेगी। महिला मुद्दों पर जितना एक महिला संवेदनशील हो सकती है, उतना एक पुरुष को भी होना जरूरी है। जब तक एक पुरुष महिला कथाकारों के कार्य, में से, गहनता के साथ नहीं गुजरेगा, भला बताईये वह उन्हें और उनके मुद्दों को कैसे समझने का दावा कर सकता है। फिर देखिये बात दावा करने और न करने की भी नहीं है, बात है साथ देने की, साथ खड़े होने की, लेकिन यह कैसे पता चलेगा कि साथ दिया जा रहा है, साथ खड़ा हुआ जा रहा है, यह तभी होगा जब कुछ करके दिखाया जाएगा। इस पत्रिका का हिस्सा पहले ही प्रो. नीलिमा बागड़े, डॉ. सरिता और प्रो. नीलम हैं, जिनसे इस काम को कराया जा सकता था, लेकिन जैसा कि सामूहिक फैसला हुआ कि महिला को महिला तक ही क्यों सीमित रखा जाए, उन्हें दौड़ने के लिए पूरा मैदान क्यों न दिया जाए, तब सोचा गया, महिलाओं को पूरे पंख फैलाकर उड़ने के लिए पूरा आकाश देना होगा, इसलिए इस स्त्री विमर्श की कहानियाँ के लिए किसी पुरुष को चुना जाना तय हुआ, और आगे महिला संपादकों को इतर विषयों पर संपादन की जिम्मेदारी दी जाए। संयोग से मुझे यह जिम्मेदारी मिल गई। हालांकि पत्रिका महिला प्रतिनिधित्व के लिए सचेत रही, इसी वजह से डॉ. वंदना को यहाँ संपादक मंडल में जगह दी गई है। आगे आने वाले अंकों में आप उनके काम को यहाँ देख पाएंगे।

कथा और लघुकथा दोनों में मेरा दखल रहा है, लेकिन अब मामला मेरा नहीं था, महिला कथाकारों का था और मुझे महिला कथाकारों की जानकारी भी अपेक्षाकृत कम थी। यहाँ आकर मुझे भारी समस्या हुई। दरअसल, महिला कहानीकारों से कहानी मंगवाना मेरे लिए कठिन कार्य रहा फिर भी हाँ कर दी। युवा कथाकार डॉ. वंदना से महिला कथाकारों के नाम सुझाने की मदद माँगी गई, वे सहर्ष सहयोग करने के लिए तैयार हो गई। प्रो. नामदेव का

काम इस संबंध में मेरी जानकारी में आया था, सो मैंने उनसे भी सहयोग का अनुरोध किया। व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने सहयोग किया, प्रो. नामदेव सर ने तो पूरी सूची ही भेज दी। फिर क्या था, मुहिम शुरू हो गई। सभी कहानीकारों को फोन किया गया। सभी ने एक ही फोन पर कहानियाँ भेज दीं। किसी ने थोड़ा समय लिया लेकिन भेजीं। जो काम मेरे लिए बहुत कठिन था, वह सरल हो गया। कहानियाँ बहुत सुंदर और विचारपरक रहीं।

हमारी सिर्फ एक ही इच्छा थी कि नए कहानीकारों को ज्यादा स्थान मिले। ऐसा नहीं है कि हमने स्थापित कहानीकारों को महत्व न दिया हो। पूरा महत्व दिया लेकिन उनका रुझान बहुत ठंडा ही रहा। ऐसा क्यों हुआ होगा, व्यस्तता तो बड़ा कारण है ही, इसी के साथ, आज के समय में, बड़े होते हुए बच्चों के साथ चलना भी एक बड़ा और जटिल काम हो गया है, उनके बारे में सोचना, उनके साथ तालमेल बनाना भी आधुनिक जीवन की नई चुनौती बनकर उभर आई है, उनसे जूझने में एक कथाकार के लिए जो महत्वपूर्ण होता है, वह कम महत्वपूर्ण हो जाता है, ध्यान कई-कई हिस्सों में बंट जाता है, इस वजह से भी हमारे कई बार के आग्रहों पर कम ध्यान गया होगा, लेकिन मार्क्सवादी, जनवादी, प्रगतिशील या इसी तरह के अन्य आंदोलनों को लेकर चलने वाली पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं हैं, पर हमारे पास नहीं है, तब यह महसूस होना स्वाभाविक है, कि 'हमारा' (एक भाव) आंदोलन के स्थान पर 'मैं' (एक भाव) आंदोलित हो रहा है। 'मैं' के भाव को जहाँ उचित भाव मिलेगा अर्थात् मैं जहाँ अधिक लाभांवित होगा, उधर का ही 'मैं' महत्व समझेगा। इस तरह तो जान पड़ता है कि साहित्य सेवियों में आंबेडकरवादी साहित्यिक आंदोलन की भावना भवन निर्माण के स्थान पर किराये का मकान लेकर गुजर-बसर करके खुश हो रही है। खैर! ऐसा हो भी सकता है, और नहीं भी हो सकता है। जिन तक हमारी आवाज पहुँचनी चाहिए थी, वहाँ तक पहुँची, जहाँ तक नहीं पहुँच सकती थी, वहाँ तक भला कैसे पहुँचती।

अलग-अलग आयु, आय, सामाजिक परिवेश के साथ शहर और देहात तक की महिला कथाकार यहाँ इस अंक के साथ जुड़ी हैं। उन सबकी कहानियों ने स्त्री विमर्श का एक विशाल वितान यहाँ तान दिया है। कहानियों में इकहरापन, एकरूपता, एक जैसे मुद्दे नहीं हैं, बल्कि इस अंक में विमर्श का कोना-कोना स्पर्श होकर गुजरता हुआ नजर आता है।

प्रो. नामदेव सर और प्रो. महेंद्र सिंह बेनीवाल सर का भी आभार कि उन्होंने मेरा मोरल सपोर्ट भी किया। डॉ. वंदना का पत्रिका के इस अंक को तैयार करने में कई तरह से सहयोग रहा है। अंत में, सभी कथाकारों का आभार, जिन्होंने अपनी उत्कृष्ट रचनाएं भेजीं। हमारा सहयोग किया। ऐसा विश्वास है कि आगे भी वे पत्रिका के साथ रहेंगी। संपादक मंडल के सभी सदस्यों का धन्यवाद करता हूँ। और हाँ इसी के साथ कहना चाहूँगा कि हमें आपकी प्रतिक्रिया और सुझाव की प्रतीक्षा रहेगी, जिससे हमें आगामी अंकों को तैयार करने का हौसला मिलेगा।

इस अंक में अपना रचनात्मक सहयोग करने के लिए हम डॉ. सुशीला टाकभोरे, कमलेश चौधरी, डॉ. कविता विकास, पुष्पा विवेक, डॉ. सुमा टी आर, अनीता भारती, डॉ. सुमित्रा मेहरोल, डॉ. पूनम तुषामड़, डॉ. राजकुमारी, सलीमा, डॉ. कनक लता, सोमा विश्वास, डॉ. वंदना, डॉ. प्रिया राणा, अंजली कॉजल, सुनीता बौद्ध, डॉ. मोहिनी 'मिंकी', डॉ. तपस्या चौहान, डॉ.धनेश्वरी, डॉ. यशोदा कुमारी, डॉ. दीपा और डॉ. प्रियंका सोनकर के आभारी हैं।

इन कहानियों में स्त्री-पुरुष सभी की आवाज है। शोषण और अन्याय पर केवल विमर्श ही नहीं है, बल्कि कई सारी कहानियाँ विमर्श से आगे बढ़ी है और दर्शन की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए नजरिये में दखल की सार्थक कार्यवाही करती हैं। मुक्ति के लिए शिक्षा की जरूरत पर बल देती हैं। कई कहानियाँ ऊंचे पदों पर पहुँचने की व्यक्तिगत उपलब्धियों को नकारती हुई जान पड़ती हैं, क्योंकि ऊंचे पदों से नजरिया नहीं बदलता है, नजरिया तभी बदल सकता है, जब जातिवादी मिथ्या दृष्टि के समक्ष उसे मात देने के लिए सम्यक दृष्टि की सैद्धांतिकी मौजूद हो। अनेक कहानियाँ विमर्श के आरंभिक पायदान पर और कुछ कहानियों से विमर्श से आगे बढ़कर दर्शन के पायदान पर पहुंच बनाई है, हालांकि दर्शन के प्रति अभी समझ में परिपक्वता का अभाव है, लेकिन भाव से अभाव दूर होते हैं, बहुत जल्द यह कमी भी साहित्य में दूर होगी, इसी कामना के साथ 'बेगमपुरा:सभ्यता का आह्वान' का 'स्त्री विमर्श की कहानियाँ' सादर भेंट करते हैं।❑

संपादकीय

बेग़मपुरा
कहानी दर्शन को सोच में बदलती है

शीलबोधि
कार्यकारी संपादक
9971566918

कहानी अपने-आप में एक पूर्ण विधा है। ''कहानी समय में दखल कम करती है बल्कि समय का बयान ज्यादा करती है'—इस बात से आसानी से असहमत हुआ जा सकता है, कहानी का जन्म ही सहमति या असहमति के किसी बिंदु से होता है। कहानी अपने-आप में एक दृष्टि है, जो हो सकता है किसी की दृष्टि में न आया हो, वह कथाकार की दृष्टि में आ गया हो, जैसा किसी ने न समझा हो, वैसा कथाकार ने समझ लिया हो, जैसा किसी ने महसूस न किया हो, कथाकार ने महसूस किया हो। जो भी हो, कथाकार को जो मिलता है, वह उसे अपनी जेब में संभालकर रखने की बजाय बांटना चाहता है। जो है, जैसा है, वह सब कुछ जिसे कथाकार ने हासिल किया है, वह चाहता है कि उसमें सभी का हिस्सा बने। सब जाने, सब समझें और सभी महसूस करें।

जब हमने यह स्वीकार कर लिया है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, तब हमें यह स्वीकार करने में ज्यादा आपत्ति नहीं होगी कि मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने की शर्त उसका समाज के रूप में रहना-सहना है। यह भी हम सभी जानते हैं कि समाज एक व्यवस्था है। कोई व्यवस्था कुछ नियमों पर टिकी होती है। समाज के लिए नियम आधारित व्यवस्था के साथ दंड की व्यवस्था भी होती है। दंड का भय समाज में शामिल किसी भी व्यक्ति को सामाजिक नियमों को तोड़ने से विरत रखता है। ये नियम पारिवारिक नैतिकता व सामाजिक नैतिकता के रूप में टिके हुए होते हैं। नैतिकता के नियम उस 'मन' को संचालित कर रहे होते हैं, जो मन पूरे 'तन' को संचालित कर रहा होता है। जिस 'मन' की हम बात कर रहे हैं, वह पाँच ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त 'प्राकृतिक मन' से अलग है। प्राकृतिक मन का काम; देखना, सुनना, चखना, सूंघना और त्वचा से महसूस करना ही है।

जान लेने के भाव अथवा जान लेने की प्रक्रिया को विज्ञान कहा जाता है। मनुष्य के शरीर में पाँच तरह के विज्ञान सक्रिय रहते हैं, जैसे अभी बताया है कि देखना, सुनना, चखना, सुंघना और महसूस करना। ये पाँच तरह के विज्ञान हैं, जो उन असंख्य तत्त्वों की परस्पर आनुपातिक क्रिया है, जो जल-तत्त्व, ताप-तत्त्व, पृथ्वी-तत्त्व व वायु-तत्त्व के मेल-मिलाप से संभव होती है। इसी

भूमिका और क्रियाशीलता से छठा विज्ञान उत्पन्न होता है जिसे 'प्राकृतिक मन' कहते हैं। जिस शरीर में चार महाभूत यानी चार वर्गीकरण में समझे गये तत्त्वों की आनुपातिक मात्रा नहीं होती है, उस शरीर में जागृत प्राकृतिक मन नहीं होता, वहाँ देह की क्रिया नहीं होती है बल्कि देहांत की क्रिया होती है।

प्राकृतिक-मन से अलग एक 'संस्थापित-मन' (installed mind) होता है, वैदिक संदर्भ में उसे 'संस्कारित-मन' कहा जा सकता हैं। केवल समझने भर के लिए उदाहरण दे रहा हूँ, जैसे कंप्यूटर में विंडो नाम का सॉफ्टवेयर होता है, वैसा मनुष्य का 'प्राकृतिक मन' होता है, जो शरीर द्वारा ग्रहण करने की क्रिया का आधार है। इस आधार-मन पर जिस मन को संस्थापित किया जाता है, उसे संस्थापित-मन कहते हैं। जो हम अपने अनुभवों से सीखते हैं और जो हमें सिखाया जाता है, उस सबको मिलाकर जो बनता है, वही 'संस्थापित-मन' कहा जाता है। संस्थापित-मन को 'संस्थापित- मन', इसलिए कहा जाता है, क्योंकि इसे 'आधार-मन' पर संस्थापित किया जाता है।

सुबह उठने से लेकर शाम को सोने तक की हमारी क्रियाएं दो भागों में विभाजित हैं, पहले भाग में प्राकृतिक क्रियाएं जैसे सोना, खाना, पीना, हँसना-रोना, महसूस करना, हगना-मूतना, साँस लेना आदि, दूसरे भाग में वे सभी क्रियाएं शामिल होती हैं, जो प्राकृतिक क्रियाएं नहीं हैं, जिन्हें हम *'पारिवारिक नैतिकता व रीति-रिवाज-परंपराएं'* तथा *'सामाजिक नैतिकता और रीति-रिवाज-परंपराएं'* कहते हैं, वही संस्थापित मन होता है। इस दूसरे भाग में पद होते हैं, पद की प्रतिष्ठा होती है और पद के दायित्व होते हैं। दायित्व के साथ अधिकार की भी व्यवस्था होती है। पद, प्रतिष्ठा, दायित्व व अधिकार को मिलाकर एक अनुशासन बनता है। इसी अनुशासन को शरीर के आधार यानी 'प्राकृतिक मन' पर संस्थापित किया जाता है, जैसे कंप्यूटर की विंडो पर एमएस-ऑफीस, पेजमेकर, कॉरल ड्रा जैसे प्रोग्राम इंस्टाल किये जाते हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन पर सबसे ज्यादा अधिकारिक कब्जा संस्थापित मन का होता है।

जो साकार है यानी तन और जो निराकार है यानी मन, दर्शन दोनों की स्थिति को समझकर उसकी व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसके बाद मनुष्य को सामाजिक प्राणी बनाने के लिए नैतिकता व रीति-रिवाज के रूप में अनुशासन देता है। कहानी और अन्य साहित्यिक विधाएं दर्शन को सामाजिक व्यवहार बनाने के लिए सोच बनाती है, या सोच में बदलाव करती है या एक सोच के स्थान पर दूसरी सोच को संस्थापित करती है। सोच में बदलाव का अर्थ होता है कि मन ने पूर्व स्वीकृत नैतिकता की मान्यताओं को अस्वीकृत किया है, या उन्हें संशोधित किया है, या पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित किया है या नई मान्यताओं को स्वीकृत किया है। किसी बदलाव या नई चीज को मन ने अगर स्वीकृत कर लिया है, तब तन के द्वारा किये जाने वाले व्यवहार में उसी मात्रा में परिवर्तन आ जाएगा, जिस मात्रा में मन ने स्वीकार कर लिया है।

किसी स्थान पर जहाँ बदलाव की सोच के लोग कम होंगे, वहाँ बदला हुआ मन एक द्वंद्व से गुजर रहा होता है। कहानी में अक्सर ऐसा द्वंद्व दिखाई दे जाता है, यहाँ दी गई 22 कहानियों में भी वह द्वंद्व दिखाई दे रहा है, यही द्वंद्व असंख्य मन को बदलाव के लिए तैयार कर रहा होता है, आइए कहानियों पर गौर करते हैं।

1

डॉ. सुशीला टॉकभोरे की कहानी उस कुटिलता को सामने रखती है, जिसमें कुछ भी न कहकर सब कुछ कह दिया जाता है। सुपरवाइजर डॉ. दीपक सर की कार में लिफ्ट के बाद कथाकारा को निश्चित मान्यताएं सहानुभूति की चाश्नी में लपेटकर जहर बुझे संवाद के साथ वैसे ही परोसी जाती है जैसे कड़वी गोली को मीठी कोटिंग के साथ खाने के लिए दे दिया जाता है। पुरानी बातों या पेशों को याद कराना या उन पर बात करने का इरादा रखना, क्या जातभेद को नकारने के लिए किया जाता है, या फिर यह अहसास दिलाने के लिए किया जाता है कि बेशक आज तुम ऊंचे पद पर हो लेकिन हमारी नजर में तुम्हारा ओहदा वही है, जो हम उदारता के साथ जातिभेद को न मानते हुए तुम्हें अक्सर स्मरण करा रहे हैं।

2

विशेषांक की दूसरी कहानी 'नत्थो मेरी नहीं है' एक महिला के लिए तय उस दृष्टि व दर्शन की है, जिसमें उसके स्वतंत्र अस्तित्व को नकार देने के कारण उसकी इच्छा और निर्णयों की स्वाधीनता नहीं रहती है, कोई अधिकार नहीं रहते हैं। नत्थो अपनों के लिए स्नेहिल है, साथ ही वह समझदार भी है। उसकी समझदारी अक्षर ज्ञान की मोहताज नहीं है, फिर भी उनका स्कूल के लिए दिया गया दान भी शिक्षा के प्रति उसकी जागरूकता का परिचायक है। नत्थो का होना, न होना, कोई मायने नहीं रखता, लेकिन स्कूल को दिया अल्पदान ने उसे सदा के लिए अमर कर दिया। कहानी बताती है कि कैसे आवश्यकता से

अधिक धन अपने साथ बुराईयाँ लाता है और मानवीय संबंधों को पुनः परिभाषित करने लगता है।

3

इस कहानी में 'गुलमोहर' एक घर यानी आसियाना नहीं है, कोमल के संघर्ष और शख्सियत की देन है। वह लड़की जिसे एक हाथ की विकलांगता के कारण अपनों ने ही त्याग दिया था। इस कहानी में माँ का एक कथन है जो माँ से बड़ा बल बन जाता है। जिसके बलबूते कोमल, न केवल अपना सहारा खुद बनती है, बल्कि सैंकड़ों बेसहारों के लिए सहारा बनती है, प्रेरणा बनती है। भाई भी उस बहन से प्रभावित होता है, जो सफल है, आत्मनिर्भर है। कोमल को उसका भाई माता-पिता के जोड़े पैसे का चैक देता है, और वह उसे उस विद्यालय को दे देती है, जिसने उसमें वास्तविक बल दिया। कहानी बताती है, जीवन में हजारों निरर्थक वाक्यों में से कौन-सा वाक्य आपका आत्मबल बन जाए, पता नहीं चलता, लेकिन आत्मबल विद्या के बल पर इतना मजबूत हो जाता है कि निर्बल भी बलवान हो जाता है, तब सहारा लेता नहीं बल्कि देता है, यही इस कहानी की सार्थकता है।

4

'अभिशप्त जीवन' कहानी में पुष्पा विवेक ने किसी व्यक्ति या परिवार पर केंद्रित कहानी नहीं लिखी है, बल्कि सामाजिक जीवन की ऐसी कथा लिखी है, जिसे इसी देश में कुछ लोग जी रहे हैं। अशिक्षा के कारण वे अपने जीवन की विसंगतियों से निकलने का रास्ता नहीं निकाल पाते हैं। पूरी दम-भरकर की गई शारीरिक मेहनत के बावजूद बौद्धिक कुशलता के अभाव में दुर्गति से मुक्त नहीं हो पाते हैं।

कहानी में एक-ही माँ के दो बेटे हैं, एक कुंदनलाल जो शिक्षा प्राप्त कर सम्मानजनक रोजगार पा जाता है, दूसरा अशिक्षित चुन्नीलाल जो अपना मानसिक विकास न कर पाने के कारण नशे और गलत सोबत का शिकार हो जाता है। चुन्नी लाल की पत्नी विद्या अपनी सारी अच्छी खूबियों के बाद भी खूब मेहनत करने पर भी, अपने जीवन को खूबसूरत नहीं बना पाती। विद्या अपने बच्चों के लिए संघर्ष करते हुए खुद कुर्बान हो जाती है। कहानी अपना संदेश देती है कि गरीबी और भुखमरी से जुझकर जो शिक्षित हो गया, उसका जीवन सुधर गया, बाकी जो अशिक्षित रह गया, वह अपने जीवन को सुधार नहीं पाता है। ऐसा आदमी अगर दुर्व्यसनों में पड़ गया तो अपने साथ परिवार के जीवन को भी बद से बदतर बना देता है। अपना संदेश देने में कहानी सफल रही है।

5

डॉ. सुभा टी आर की कहानी 'उजाले की ओर' में कमली को एक अंधविश्वास के कारण देवदासी बनना पड़ा। कहानी में कथा लेखिका देव के स्थान पर देवी येलम्मा से विवाह का जिक्र करती है। देखा जाए तो यह विवाह समान लिंग के व्यक्तियों के बीच होने के कारण लेसबियन जैसा लगता है। विवाह की मान्यता यहाँ वैसी लागू नहीं होती जैसा विवाह माना जाता है। गाँव-देहात में जो वर्ग समाज को संचालित और नियंत्रित करता है, समाज की दृष्टि व देखने के तरीके यानी दर्शन को भी नियंत्रित करता है। यह व्यवस्था गलत है, क्योंकि इसके पीछे की दृष्टि यानी एक महिला का विवाह एक देवी के साथ करवा देना, ही गलत है, यह तब भी गलत ही होता जब एक महिला का विवाह उस देव के साथ करा दिया जाता जिसका प्राकृतिक अस्तित्व पत्थर का है। इस अप्राकृतिक व्यवस्था का लाभ किसे मिलता है, उस प्रभुत्वशाली सामाजिक वर्ग को जिसे द्विज या ऊंची जाति कहा जाता है। इसमें हानि किसकी होती है, शोषण किसका होता है, इस व्यवस्था में तबाह कौन होता है, वह सामाजिक वर्ग जिसकी अपनी कोई दृष्टि या दर्शन नहीं होता है यानी नीचे स्तर की जाति। कमली को इसी मिथ्या और गलत दर्शन के कारण देव दासी बना दिया जाता है, उसके शरीर का उपभोग शिव शंकर करता है, इस वजह से पवित्रा का जन्म होता है, जैविक आधार पर शिव शंकर पवित्रा का पिता होता है, लेकिन मिथ्या दर्शन पर खड़ी सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था में शिव शंकर पवित्रा का पिता नहीं है। खुद शिव शंकर की मिथ्या दृष्टि में पवित्रा उनकी बेटी होने के बावजूद भी बेटी नहीं, वह पवित्रा का उसी तरह से दैहिक शोषण करना चाहता है, जैसे कमली का किया था। कमली शिव शंकर को पवित्रा के पिता के रूप में देखती है, पर शिव शंकर पवित्रा को बेटी के रूप में नहीं देखता है, उस देवदासी की बेटी को देवदासी के रूप में ही देखता है। देखने का यह दर्शन ही मनुष्य के व्यवहार का नियमन करता है। नियमन करने वाला वर्ग प्रभुत्वशाली होता है, भारत में उच्च जाति वह प्रभुत्वशाली वर्ग है, जो दृष्टि व दर्शन देता है, वही सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था करता है। कहानियाँ दर्शन को व्यवहार में लाने की सोच निर्मित करती है। ब्राह्मणवादियों ने ब्राह्मण दर्शन को, सामाजिक व्यवहार बनाने के लिए, सोच को, ढेरो कहानियों के सहारे बदला है।

6

'तीसरी कसम' कहानी में 'राधे' एक पुरुष पात्र है, जो एक ऐसे समाज का हिस्सा है, जहाँ महिलाएं नाचने-गाने का काम करती हैं। समाज में ये लोग-लुगाइंयाँ अपने पेशे के कारण निम्नतर समझे जाते हैं। समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग का नजरिया (दर्शन) बेशक इन्हें सम्मान नहीं देता है, लेकिन अपनी स्वयं की नजर में ये कलाकार हैं। इनके लिए यह समझना मुश्किल है कि बड़े मंचों से गाने-बजाने वाले कलाकारों और इनमें क्या अंतर है। वे बड़े मंचों के कलाकारों-सा सम्मान क्यों नहीं पाते हैं। कला व कलाकार को सम्मान मिलने की बात इनके लिए बहुत दूर की कौड़ी साबित होती रही है, जबकि कला प्रस्तुति इनके दैहिक शोषण का कारण बन जाती है। इनके पास जीवन व सम्मान की कोई सुरक्षा नहीं है। राधे अपनी पहली कसम खाता है कि वह अपनी बहन चंपा जीजी को नाचने नहीं देगा, लेकिन वह कुछ नहीं कर पाता है। जब उसकी दो बेटी होती हैं, तो अपनी बेटी की शादी कर देता है, शादी के बाद उसकी बड़ी बेटी सोना भी नाचने-गाने का काम करने लगती है। इसका राधे दुख मनाता है। राधे दूसरी बार कसम खाता है कि उसकी छोटी बेटी रमैनी नाचने-गाने का काम नहीं करेगी। वह पढ़ेगी और बहनजी (मैडम) बनेगी।

रमैनी पढ़ना चाहती है लेकिन अध्यापकों का रूखा व्यवहार और चिढ़ा देने वाली टिप्पणियों से तंग आकर वह अपनी पढ़ाई छोड़ देती है। इस तरह राधे की दूसरी कसम भी पूरी नहीं होती है।

राधे की छोटी बेटी रमैनी बड़ी हो जाती है, उसकी बेटी का नाम मीनू है। रमैनी की भांति एक दिन मीनू भी स्कूल से आकर कहती है कि वह नहीं पढ़ेगी, उसे हमेशा कक्षा में पीछे बैठाया जाता है। मास्टरजी हमें गंदा कहते है। रमैनी अपने पिता की दो अपूर्ण कसमों के बाद तीसरी कसम खाती है कि चाहे कुछ भी हो, वह अपनी बेटी को जरूर पढ़ाएगी, वह उसका हाथ पकड़कर स्कूल की ओर चली जाती है। रमैनी के अंदर और बाहर कुछ ऐसा नहीं जिसे निजी कहा जाए और न ही ऐसा है कि सामाजिक कहा जाए। आगे बढ़ने के लिए जिन रास्तों का खुले रहना जरूरी है, उन्हें रमैनी आँख से नहीं अक्ल से देखती है, वह न दिखाई देने वाले ब्राह्मणवादी दर्शन से टकराने के लिए चल देती है। रमैनी इस काबिल नहीं है कि वह ब्राह्मणवाद से इतर अपने लिए बेहद दर्शन का विकल्प तलाश सके, लेकिन मीनू से उम्मीद की जा सकती है, वह पढ़-लिखकर अपने लिए दर्शन का विकल्प तलाश कर लेगी।

7

शहरीकरण के साथ जाति आधा-रित मोहल्लों की हदबंदी भी टूटी है। एक से ज्यादा जातियों के लोग अपनी आर्थिक क्षमताओं के अनुसार नई बस्तियों में बसते जा रहे हैं। ऐसे में सामाजिक संबंधों और मेल-जोल की वैसी शुरुआत हो रही है, जो पहले नहीं हुई थी, जाति का भाव एक किनारे होता जा रहा है और एक नया समाज बनता जा रहा है, जो पहले जैसे दायरों को कुछ हद तक तोड़ चुका है, यहाँ इंसान एक-दूसरे से मिल-जुल रहा है और एक-दूसरे की खुशियों में शामिल हो रहा है, लेकिन 'दाल में काला' कहावत के चारित्रार्थ भी कुछ लोगों के व्यवहार में भेदभाव दिखाई दे जाता है। इस नये तरह के समाज में शर्माइन का नजरिया अभी नहीं बदला है, क्योंकि वह उस दृष्टि को अपनाएं हुए है, जिसमें शर्माइन उच्च है और मालती नीच है, बेशक शिक्षा, धन, पद में वह समान है। समाज के बदलते स्वरूप में यह कुरूपता भी दिखाई दे जाती है, जहाँ यह अहसास करा ही दिया जाता है कि सामान्य सामाजिक संबंध में कुछ भी सामान्य नहीं हुआ है।

शर्माइन का वह नजरिया और नजरिये के पीछे खड़ी मान्यताएं अभी भी समाज की एकता में अवरोधक बन कर खड़ी है। मालती ऐसी दृष्टि को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है जिसमें शर्माइन उच्च हो और वह निम्न हो जाती हो। वह शर्माइन के साथ अगर कोई संबंध रख सकती है तो केवल बराबरी का, ऊंच या नीच का नहीं। मालती अब इस स्थिति में है कि वह उस सहयोग से आगे इंकार कर सकती है, जो अभी तक करती आ रही है। पड़ोस की दूसरी औरत के समान जब मालती को समान रूप से सम्मान नहीं मिलता तो वह सख्त लहजे में समझा आती है कि उसके घर के बाहर लगा शादी का कूड़ा जल्द उठा लें, नहीं तो वह पुलिस को शिकायत भी कर देगी। शर्माइन का झेपता चेहरा नये और पुराने नजरिये की न्याय संगतता का सामाजिक द्वंद्व बन जाता है। सुमित्रा मेहरोल की कहानी बाखूबी इसे रेखाकिंत करने में सफल रही है।

8

समाज की मान्यताएं जिनसे समाज का व्यवहार तय होता है, हुआ है, स्त्री के प्रति न्यायपूर्ण नहीं है। जिन्होंने इन मान्यताओं को गढ़ा होगा, वे भी न्यायप्रिय नहीं होंगे। लेखिका न्यायप्रिय है, इसलिए उसकी मान्यता है कि यौन-अपराध

होने पर अपराधी को चिह्नित किया जाए और यौन अपराध करने पर पुरुष अपराधी को बचाया न जाए बल्कि सजा दिलाई जाए। समाज में ऐसा होता नहीं है। यौनिक-अपराध की कहानियाँ कागज पर पेंसिल लिखकर रबड़ के मानिंद मिटा दी जाती है, लेकिन यह कोई नहीं देखता है कि मिटा देने के बाद भी कागज पर रह गए पेंसिल की लिखाई के निशान कोई रबड़ नहीं मिटा पाती, वे बने रह जाते हैं, उनकी ओर देखा नहीं जाता, उसकी उपेक्षा कर दी जाती है। भुला दिये गए यौन-अपराध के गहरे दर्द भरे निशान टिसने के लिए जहाँ रह जाते हैं, बस रह जाते हैं। लेखिका पूनम तुषामड अपनी कहानी में न्याय माँगती है, अपने लिए नहीं, एक मासूम बच्ची के लिए, पर कुछ असमान सामाजिक मान्यता से निर्मित मिथ्या दर्शन रास्ते बंद करता जाता है। लेखिका की 'कसक' जरूर पाठक के मन में कसमसाहट पैदा करेगी, पाठकों की मान्यताओं को बदलेंगी, यहीं से सामाजिक बदलाव की शुरुआत होगी।

9

डॉ. राजकुमारी ने अपनी कहानी 'फिर यहीं आयेंगे वे' में उजागर किया है कि कैसे पहचान बिगड़ने के साथ समाज बिगड़ता है। समाज में परस्पर संबंध बिगड़ते हैं, और वे रास्ते भी बिगड़ जाते हैं, जो उन्नति की ओर ले जाते हैं। लेखिका जो पढ़ना चाहती है, उसे गाँव में घटित एक घटना के कारण पढ़ने से रोका जाता है। घटना है कि एक चूहड़े का लड़का और चमार की लड़की गाँव से बाहर पढ़ने के लिए जाते हैं, और आपस में शादी कर लेते हैं। गाँव में इस बात पर पंचायत होती है। पंचायत में शामिल लोग इस बात को भूल चुके हैं कि वे मनुष्य हैं, उनके अंदर केवल यही अहसास जिंदा है कि वे चूहड़े या चमार हैं। जब अनपढ़ थे तो जो किसी ने बताया वह मान लिया। इसलिए मनुष्य के रूप में अपना सही व सम्यक दर्शन करने की बजाय पंचायत में बैठे लोग मनुष्य को मिथ्या दर्शन से चूहड़े व चमार के रूप में पहचान रहे हैं। जिन समाज के नेताओं का इंतजार पंचायत कर रही है, वे भी मिथ्या दर्शन से पीड़ित है। ज्ञान से नहीं अज्ञान से बनी सामाजिक मान्यताओं को मान्यता देते हैं। हालांकि ये समाज के नेता मंचों से खड़े होकर बाबा साहेब आंबेडकर का नाम लेकर समाज को एक होने का संदेश देते हैं। जातिभेद की दीवारों को गिराने की बात करते हैं। मंचों से बोलते हुए उन्हें यह अहसास नहीं होता है कि वे क्या बोल रहे हैं, उन्होंने कहीं सुना था, उसे ही मंचों पर चढ़कर दोहरा देते हैं। यहाँ पंचायत में आकर भी वे क्या फैसला दे रहे हैं, यह उनके विवेक से उत्पन्न सम्यक दर्शन नहीं है, यह भी उन्होंने कहीं सुना है, उसी को यहाँ दोहरा रहे हैं–'लड़का चूहड़े का है और लड़की चमार की है, दोनों की जाति एक नहीं है, इसलिए यह शादी नहीं हो सकती। दोनों को समाज से बाहर किया जाता है।' इतनी अज्ञानता और इतनी अविद्या से जिस सामाजिक क्लेश को खत्म करने की बात की जा रही है, वह सामाजिक क्लेश खत्म कहाँ हो रहा है, बल्कि मजबूत हो रहा है। नतीजा यह है कि गाँव की वे लड़कियाँ जो गाँव से बाहर जाकर आगे की शिक्षा लेना चाहती हैं, उन्हें आगे शिक्षा लेने से प्रतिबंधित कर दिया जाता है।

समाज के नेता और डॉ. आंबेडकर का नाम लेकर मंचों पर चढ़कर चिल्लाने वाले नेताओं ने स्कूली किताबों के अलावा भी बाबा साहेब को पढ़ा हुआ होता तो उनका मनुष्य को जाति के रूप में देखने का मिथ्या दर्शन नहीं होता। उनके पास मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखने का सम्यक दर्शन यानी सही और समुचित दर्शन होता। बिना सम्यक अथवा सही दर्शन के समाज की मान्यताएं कैसे सही हो सकती हैं। समाज की मान्यता को सही किये बगैर समाज की व्यवस्था कैसे सही हो सकती है, यदि समाज का नेतृत्व करने वाले लोग बाबा साहेब के दिए सही दर्शन को समझकर समाज को सही दर्शन देना शुरू करते हैं तो समाज की मान्यता और व्यवस्था दोनों सुधर सकती हैं। जब तक समाज का सही यानी सम्यक दर्शन नहीं होता, तब तक शिक्षा प्राप्त करने जैसा प्रगतिशील कदम, मिथ्या दर्शन की बेड़ियों में बांधा जाता रहेगा। कहानी अपने-आप में सार्थक है।

10

सलीमा की कहानी एक नजरिया देती है। नूपुर अपना करियर बनाते समय कई तरह के घुमाव, अपनी जिंदगी में लेती है। राजनैतिक कार्यकर्ता बनने से यूट्यूबर बनने तक, वह उन चीजों को करने में रुचि रखती है, जिससे उसका कैरियर मजबूत हो सके। अपने चैनल पर हिंदू-मुसलमान करने वाली नूपुर कट्टर धार्मिक पहचान के तहत अपने आप को आम जीवन में स्थापित करने में लगी है। दूसरी तरफ वह हॉकी के खिलाड़ी शिवान देवा के साथ लिव-इन- रिलेशनशिप में भी रहती है। वह शिवान से शादी करना चाहती है। शिवान अपना केरियर पहले बनाना चाहता है, इसके बाद ही शादी करना चाहता है। वह शिवान से गर्भवती भी हो जाती है, आर्ब्शन कराती है, लेकिन आगे जब वह शिवान के बच्चे की माँ

बनना चाहती है, तो माँ नहीं बन पाती है। वह इमोशनल क्लिप बनाकर सोशल मीडिया पर जारी करती है, ताकि आमजन की सहानुभूति बटोर सके और शिवान पर वह दबाव बना सके, जिससे वह उसे छोड़े नहीं। कहानी की अच्छी बात यह है कि शिवान उसके प्रति ईमानदार है। बेशक वह शादी नहीं कर रहा है लेकिन वह नूपुर से सच्चा प्यार करता है। बच्चे के लिए दोनों सेरोगेसी को चुनते है। पार्लर में नूपुर की मुलाकात सीमा से होती है, सीमा सेरोगेसी के लिए तैयार हो जाती है। बच्चे के जन्म के समय नूपुर को पता चलता है, जिस सीमा से शिवान को बच्चा पैदा होने वाला होता है, वह मुसलमान है। जो सीमा अब तक शिवान का बच्चा पैदा करने वाली केवल एक महिला थी, क्षणभर में वह महिला नहीं रहती, वह मुसलमान हो जाती है। वास्तव में बदला कुछ भी नहीं, बदली है केवल दृष्टि अर्थात दर्शन। नूपुर की मिथ्या दृष्टि या दर्शन से देखने के साथ ही सामाजिक व निजी जीवन में क्लेश उत्पन्न हो जाता है, लेकिन यह दृष्टि या दर्शन उस बच्चे के साथ कैसे अपनाया जा सकता है, जो अभी पैदा हुआ है। जो कोरा हार्डवेयर है, जिसमें प्राकृतिक रूप से केवल विंडो के रूप में एक प्राकृतिक मन साथ लेकर आया है, हिंदू या मुसलमान के रूप में जिसकी अभी कोई प्रोग्रामिंग नहीं हुई है। बच्चा हिंदू या मुसलमान तो तब होगा जब हिंदू या मुसलमान का सॉफ्टवेयर उसमें संस्थापित किया जाएगा। खैर नूपुर अपने अंदर संस्थापित मान्यताओं की उपेक्षा करके बच्चे को स्वीकार कर लेती है। कहानी को यदि ठीक से समझा गया तो कहानी भारतीय समाज में शांत व सुखी सामाजिक जीवन को उत्पन्न करती है।

11

डॉ. कनक लता की कहानी 'मेरी सहानुभूति तेरी सहानुभूति' उस दार्शनिक बोध को सामने रखती है, जिसमें मनुष्य को जाति की अवधारणा में देखा और समझा जाता है। जाति न यथार्थ है और न ही सच्चाई। जाति की दृष्टि मिथ्या है और झूठ पर आधारित है। यह झूठ उन लोगों का फैलाया हुआ है, जो इंसान पर हुकूमत करना चाहते है, इंसान को गुलाम बनाकर रखना चाहते हैं। इस स्थिति में एक व्यक्ति जो असभ्य और शोषक है, बहुत जनों को अपने अधीन रखकर उनको दास तुल्य जीवन जीने के लिए मजबूर करता है। विदेशी शासकों के मुकाबले स्वदेशी, वर्णवादी, सामंतवादी प्रवृत्ति का भारतीय व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह (वर्ग) ज्यादा क्रूर, अत्याचारी और जन-धन की लूट मचाने वाला साबित होता है, कहानी में शिक्षक है, जो मुखिया के दिये गये भोज के निमंत्रण पर अपने स्कूल के विद्यार्थियों को भोज में ले जाता है। अध्यापक की दृष्टि और दर्शन में जिन स्कूल के विद्यार्थियों को वह भोज में लेकर जाता है, वे सभी विद्यार्थी हैं। भोज में मुखिया का परिवार स्कूल से भोज में आये विद्यार्थियों को विद्यार्थी की दृष्टि और दर्शन में नहीं देखते हैं, वे उन्हें मिथ्या दृष्टि से देखते हैं, इसलिए वे विद्यार्थियों के रूप में बच्चों को विद्यार्थी के रूप में न देाकर जाति के रूप में देखते हैं, जो व्यवहारिक रूप से गलत धारणा है, क्योंकि धारणा या मान्यता के गलत हो जाने से व्यवहार भी गलत हो जाता है, इसलिए मुखिया का परिवार विद्यार्थियों के साथ गलत व्यवहार करने लगता है। समूह के रूप में आये विद्यार्थियों को एक साथ समूह में न बैठाकर उनके समूह को खंडित कर देना चाहता है और अलग-अलग बैठाना चाहता है। अध्यापक विद्यार्थियों को अलग-अलग कर बैठाकर जिमाने की जातिगत मिथ्या दृष्टि और व्यवस्था का विरोध करता है, और विरोध स्वरूप इस भोज का बहिष्कार करते हुए वहाँ से वापस जाने लगता है। इन हालातों में मुखिया को अपनी लोक-निंदा का डर सताने लगता है, इसलिए वह अध्यापक की शर्त मानने के लिए तैयार हो जाता है। कहानी में उभरता दर्शन समझने लायक होता है, जब अध्यापक उस मुखिया के साथ बैठकर भोजन करने से इंकार कर देता है, उसी मुखिया के साथ जो कुछ समय पहले विद्यार्थियों में भेदभाव पैदाकर उन्हें अलग-अलग बैठाकर भोजन कराना चाहता था। कारण पूछे जाने पर अध्यापक कहता है कि विद्यार्थियों में भेदभाव करने वाला व्यक्ति सभ्य नहीं हो सकता है। एक असभ्य व्यक्ति के साथ बैठकर एक सभ्य व्यक्ति कैसे भोजन कर सकता है। इस तरह कहानी यह संदेश देने में कामयाब होती है कि गलत दृष्टि या दर्शन की वजह से गलत व्यवहार होता है। अगर दृष्टि सही व सम्यक हो जाए तो व्यवहार भी सही और सम्यक हो जाएगा। जाति गलत और मिथ्या दृष्टि है, इसलिए जातिगत व्यवहार को सही और सम्यक नहीं कहा जा सकता है। अगर हम इस भांति समझते नहीं हैं, तो हमें समझना चाहिए कि जातिगत व्यवहार असभ्य है, हम स्वयं को कुछ भी समझे, पर दुनिया की नजरों में असभ्य साबित होते हैं।

12

सोमा विश्वास की कहानी का नाम 'तह-रुश' है जबकि मूल शब्द 'तहर्रुश' है। इस शब्द का इस्तेमाल उस स्थिति के लिए होता है, जब भीड़ द्वारा महिला के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है, ऐसी कोई इस्लामिक परंपरा नहीं है, लेकिन अरब में यह एक सामाजिक बुराई है।

कहानी में लेखिका कहना चाहती है कि केवल एक या कुछ देशों का नाम लेकर ही क्यों कहा जाए। किसी न किसी रूप में यह खेल प्रत्येक देश में खेला जा रहा है, हालांकि प्रत्येक ऐसे पुरुष हैं जो महिला के खिलाफ इस तरह के घिनौंने व्यवहार का विरोध करते हैं, लेकिन उनके विरोध करने से होता क्या है, खेल तो जारी रहता है। इस खेल में कोई सार्थक प्रतिकार की ताकत नहीं है। डॉक्टर मैम फूलन देवी को यहाँ उद्धृत करती हैं, जो इस खेल में विरोध की ताकत बनी, लेकिन हर जगह तो ऐसा नहीं होतौ। कहानी महिलाओं के साथ होने वाले क्रूर सामाजिक यौनाचार को पाठकों के सामने रखती है और पाठकों की संवेदना को झकझौर कर उनके महिलाओं के प्रति मिथ्या दर्शन को सही दर्शन में बदलने का प्रयास करती है। कहानी विषय की जरूरत के अनुसार छोटी और समेटी हुई है।

13

डॉ. वंदना की 'हौसला' कहानी की दो घटनाएं महत्वपूर्ण है, एक जब माँ की बाजार में बैठने की जगह को कोई दूसरा घेर कर बैठ जाता है, वह अपना सामान दूसरी जगह बैठकर बेचने लगती है। दूसरी घटना है, कॉलेज में जब डॉ. स्वर्णलता शर्मा कहती है कि उसके परिवार का अच्छा खासा बिजनैस है। वह नौकरी केवल टाइमपास के लिए करती है। दोनों घटना बताती है कि ताकतवर लोग, भले ही थोड़े से ही ताकतवर हो, दूसरे लोगों की उन्नति के रास्तों पर कब्जा करके बैठे हैं। कीर्ति जो हौसला कहानी का केंद्रीय पात्र है, घर में सबसे ज्यादा पढ़ी-लिखी है, जीवन में आगे बढ़ने का हौसला माँ और भाई से लेती है, जो आमतौर पर शिक्षित नहीं है, ऐसे लोगों को समाज में समझदार नहीं माना जाता है। अब पहली घटना को लीजिए, माँ का ढ़िया किसी दूसरे ने घेर ली, माँ दूसरी जगह बैठकर सामान बेचने लगती है, लड़ती नहीं, झगड़ती नहीं, क्योंकि माँ को लगता है कि लड़ने का कोई फायदा नहीं, अभी आगे बढ़ना, दो पैसे कमाना, यही उसका ध्येय है, इसे वैसे ही नहीं छोड़ना चाहती है, जैसे चींटी अपने मार्ग पर आई रुकावट से टकराती नहीं, बल्कि थोड़ा-बहुत इधर-उधर होकर अपनी मंजिल की ओर सीधा बढ़ती रहती है। अपने जीवन संघर्ष में कीर्ति उस बात को भी याद रखती है जो बार-बार साइकिल खराब हो जाने पर उसके भाई ने कही थी कि साइकिल के खराब होने से चलना थोड़े ही छोड़ देंगे। ये दोनों बातें उस जीवन दर्शन का हिस्सा है जिसमें समस्या को झेला नहीं जाता बल्कि देखा जाता है, समझा जाता है, और अभाव में रोया नहीं जाता बल्कि समस्या को देखने में ही समा- धान भी देख लिया जाता है। तब मन में अव- धारित होता है कि ऐसा नहीं तो वैसा सही या ये नहीं, तो वही सही, लेकिन रुकते नहीं, ठहरते नहीं, बल्कि निश्चय लिया जाता है कि करते हैं या चलते हैं—देखा जाएगा जो होगा। बस जीवन को देखने की इसी दृष्टि या दर्शन के कारण कोशिशें परास्त नहीं होती, हौसला बना रहता है। कीर्ति का जीवन दर्शन केवल उसके द्वारा खाई चोट से प्राप्त अनुभवों से ही निर्मित नहीं होता है बल्कि उसकी माँ और भाई के अनुभवों से भी निर्मित होता है। इसी तरह जब एक पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी को अपना जीवन दर्शन देकर जाती है, तब आगे की पीढ़ियाँ मजबूत होती जाती है, उनका हौसला बना रहता है। वे कौम दुनिया की दौड में पिछड़ गई हैं, जो पुर्खों के जीवन दर्शन को विस्मत कर बैठी हैं।

14

'ईर्ष्याग्नि' कहानी अपर्णा और शंकर की कहानी भर नहीं है बल्कि स्त्री और पुरुष के संबंधों के विमर्श की ही कहानी नहीं है, मानवीय मनोविज्ञान की भी कहानी है और दार्शनिक मूल्यों की भी, जिसमें से गुजरकर स्त्री व पुरुष, तन से ही नहीं मन से भी अलग हो जाते हैं। यहां दो तरह के दार्शनिक मूल्य हैं, शंकर का दार्शनिक बोध जो अपर्णा को केवल देह के रूप में देखता है, और पुरुष से निम्न स्तर पर रखता है, जबकि अपर्णा के लिए अपर्णा का दार्शनिक बोध उस व्यक्तित्व में स्थिर है, जो उसने अपनी कोशिशों से बनाया है। यह ऐसा व्यक्तित्व है, जो पुरुष से, न उच्चतर होने की चाह रखता है और न निम्नतर। यहाँ बराबरी का भी मूल्य नहीं है बल्कि यहाँ है प्रतिस्पर्धा मुक्त संबंधों की मान्यता, जिसमें एक ऐसा भाव स्थित है, जिसमें वह जो है—वह है; और मैं जो हूँ—वह 'मैं' हूँ। एक का अहं दूसरे के अस्तित्व को गौण न करे; इसे प्रेम स्वीकारता है, तभी प्रेम है; नहीं तो केवल प्रेम का वैसा आवरण है जैसे भेड़ की खाल में भेड़िया होता है। जरा-सी हवा भी आवरण को हटा दें तो भेड़िये को देखा जा सकता है। अपर्णा शंकर पर पड़े आवरण को देख लेती है, यही इस कहानी की सार्थकता है।

15

'पहचान' कहानी अस्तित्व के संकट पर बात करती है, जब किसी व्यक्ति का इंसान होना नकारा जाता है, तब जाति के नाम पर इंसान की कोशिशों को मानसिक पराजय में धकेला जाता

हो, तब किरण जैसा व्यक्ति जाति की दलदल से निकल कर जाति की कीचड से मुक्त होना चाह रहा हो, तब कोई उस पर जाति की कीचड फेंक कर मार रहा हो, तब 'पहचान' का सवाल बन जाता है। अंजली कॉजल इस कहानी में बताने में सफल हुई हैं कि पहचान का मामला जाति से तय नहीं होगा, उसे तय होना है, विशुद्ध अपनी कोशिश के परिणाम के रूप में। गीता जो कहानी का एक पात्र है, कहानी की शुरुआत में वह फटेहाल और कम्पार्टमेंट के साथ पहचानी जा रही है, वह अध्यापिका किरण के प्रोत्साहन और मार्ग दर्शन से गीता की पहचान मौलिक सोच और समझ, उम्दा कविता की कवयित्री के रूप में स्थापित करती है। असल पहचान कोशिशों से प्राप्त सफलता से बनती है।

16

कहानी धर्म और कर्म की है। जीवन में दोनों का अपना स्थान है, इसलिए धर्म को केवल-भर पूजा बना देने से काम नहीं चलेगा, धर्म को नैतिक शिक्षा के रूप में अच्छे गुणों को पोषण करने वाला भी बनना चाहिए। जीवन में तरक्की के लिए कर्म चाहिए, लेकिन उससे पहले कर्म की गुणवत्ता प्राप्त करने के लिए शिक्षा का होना जरूरी है। दोनों में संतुलन होना जरूरी है। जीवन प्रति-पल की घटना है, सुखद और दुखद घटनाएं जीवन में होती ही हैं, रमा इस रूप में धार्मिक प्रवृत्ति की है कि वह पूजा में अपना ज्यादा वक्त गुजारती है। घर में ही नहीं मंदिर में की जाने वाली पूजा को ज्यादा महत्व व समय देती है। रमा का जीवनसाथी का नाम जीवन है, वह कर्म को महत्व देता है। जीवन कठिन परिश्रम करके भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करता है। जीवन की असमय मृत्यु हो जाती है। जिससे आमदनी का स्रोत खत्म हो जाने से रमा का जीवन बिखर जाता है। कहानी रमा का पूजा को धर्म मानना और यह समझना कि पूजा से ही उसके जीवन की दिक्कतें दूर होगी, गलत साबित होता है। धर्म का नैतिक शिक्षा का हिस्सा रमा के लिए जरूरी नहीं था, इसलिए बड़े होने पर रमा के बच्चे उसके किसी काम के सिद्ध नहीं होते हैं। अगर रमा धर्म की नैतिकता को महत्व व समय देती और साथ ही कर्म की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए बच्चों की शिक्षा पर ध्यान देती तो रमा और उनके बच्चों का जीवन खुशहाल हो सकता था। जीवन में धर्म और कर्म के मिथ्या दर्शन की वजह से रमा के साथ उनके बच्चों का जीवन भी तबाह हो गया।

17

यह कहा जाता है कि 'जाति जाती–नहीं जाती' लेकिन जाति क्यों नहीं जाती? इस सवाल का जवाब सामाजिक व्यवस्था में देखा जाता है, जबकि जाति एक दार्शनिक समस्या है। जातिगत समाज वास्तव में समस्या नहीं, जाति के प्रति जो दृष्टि या नजरिया लागू किया जाता है, वहां से अधिकार और कर्त्तव्य को वर्गीकृत करके मानवीय प्रयासों पर पाबंदियाँ लगा दी जाती है। कुछ लोगों के नजरिये के कारण मान्यताओं का जन्म होता है, मान्यताएं ही कठोर व्यवस्थाओं की दीवारे खड़ी करती हैं। ब्राह्मणवादी नजर के समक्ष क्योंकि कोई वैकल्पिक नजरिया नहीं है, इसलिए ब्राह्मणवादी नजरिया, उससे उत्पन्न मान्यता, दो मनुष्य के बीच उठती अप्राकृत दीवारे बना देती है। रमन और नियति जैसे कहानी के पात्रों के बीच अगर नजरिया बदल जाता तो संबंधों को कुछ जगह मिल जाती। जब तक ब्राह्मण दर्शन का विकल्प सामने नहीं होगा, तब तक, न तो कहानी में और न जीवन में बदलाव हो पाएगा। इसी को मोहिनी 'मिंकी' अपनी कथा में कथित करती हैं।

18

एक दिन का खेल जो डॉ. तपस्या चौहान की आँखों में उतरता है। जहाँ जीवन है, जश्न है और जीवन का संघर्ष है। जो चाह है, उसे पेड़ पर हाथ बढ़ाकर फल तोडने के मानिंद नहीं हासिल किया जा रहा है, बल्कि हासिल करने के लिए संघर्ष में सभी चीज गौण हैं, नाला, कीचड, गंद में सन जाना, फिर जो हासिल किया वह सामूहिक रूप से हासिल किया, उसका लाभ व्यवस्थित तरीके से सभी को देना भी, जीवन का उन्नत मूल्य है। इस सुअर की दावत में व्योवृद्ध द्वारा की जाने वाली समाज की चिंता, युवकों का जश्न, गीत और संगीत के साथ नृत्य है। सभ्य जीवन की ऐसी कला निम्न कैसे हो सकती है। डॉ. तपस्या चौहान की कहानी पूछती-सी जान पड़ती है कि क्या है ऐसा सभ्य दुनियां में जो यहाँ नहीं है, केवल भव्यता को छोड़कर पूछे जाने वाला प्रश्न तो बनता है। सवाल उस सुअर का भी जो सभ्यता और जीवन के रंगों को जिंदा रखने के लिए कुर्बान नहीं हुआ था, बल्कि कुर्बान किया गया था, सवर्णवाद की दमक में दलता दलित की भांति।

19

डॉ. धनेश्वरी की कहानी 'वे गुरु हैं हमारे' शिक्षा व्यवस्था के महत्वपूर्ण हिस्सा यानी गुरुजी पर बात करती है। गुरु और शिष्य या शिष्या के बीच ज्ञान के अतिरिक्त कुछ शेष नहीं होता है। जहाँ जहाँ गुरु के लिए शिष्या केवल भर शिष्या नहीं है, बल्कि शिष्या की

मान्यता से बहुत अलग कुछ और ही है। कहा ही जाएगा, एक जाति है। जाति भी मान्यता है और शिष्या भी मान्यता है, अब देखना यह है कि गुरु दोनों में से किस मान्यता को मान्यता देता है। जब गुरु किसी व्यक्ति को 'शिष्या' से अलादा 'जाति' के रूप में देखता है, तब उसकी इस दृष्टि या दर्शन से सामाजिक क्लेश की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। डॉ. धनेश्वरी इस स्थिति को बड़ी कुशलता से तल से ताल पर लेकर आती हैं।

20

आँखों से ही नहीं देखा जाता है बल्कि देखने के लिए आपके पास दिलो-दिमाग की आँखें भी होनी चाहिए। कभी-कभी कोई विचार सर्दी में जैसे रजाई खींचकर भोर के दर्शन कराने की मानिंद जगा देता है, वैसे ही यशोदा की कहानी 'नाम के आगे सन्नाटा' का पात्र बाबा साहब डॉ.आंबेडर के शब्दों को पढ़कर जाग जाता है। जाग जाने में कहाँ सुविधा हैं, बल्कि जाग जाने के बाद ही हर मुश्किल हमसे टकराने के लिए तैयार मिलती है। सोया हुआ जमीर यातना रहकर भी कुछ नहीं कर सकता। पर जागा हुआ जमीर उनींदा नहीं रह सकता। यशोदा अपनी कहानी में नहीं कहती कि वह दलित है, उसे बराबरी का अधिकार चाहिए, बल्कि वह अपनी आवाज बुलंद करते हुए कहती है कि वह भी इंसान है, इसलिए उसे बराबरी का अधिकार चाहिए। दलित की अस्मिता में पहचानने का आग्रह के कारण ही इंसान होने की अस्मिता पृष्ठभूमि पर चली जाती है। दलित होना एक अवस्था हो सकता है, पर पहचान नहीं हो सकता। घायल होना, जख्मी होना किसी के लिए भी अवस्था हो सकती है, लेकिन पहचान नहीं हो सकती। जख्मों को याद रखा जा सकता, उसका ख्याल रखा जा सकता है कि उन्हें भरना है, पर जख्म ही इंसान की पहचान बन जाए यह किसी तरह ठीक नहीं माना जा सकता है। इंसान होना काफी है, कोई इससे ज्यादा या कम कैसे हो सकता है, यदि कोई जिस बिंदु से इंसान से ज्यादा या कम हो जाता है, उसी बिंदु से उस चीज या बात का होना तय है, जिसे नहीं होना चाहिए। एक समान अधिकारों की आवाज बिना एक पहचान या एक अस्मिता के कैसे हो सकती है। जब तक की जाति रहेगी, तब तक तो शोषण किसी न किसी रूप में मौजूद रहेगा। डॉ. यशोदा कुमारी समरूप पहचान के साथ समान अधि-कारों की माँग करती है, इसे कथाकार की बौद्धिक उपलब्धि मानना जरूरी है।

21

'महकता कोना' कहानी उस सामाजिक परिवेश को सामने रखती है, जिसमें आजादी के बाद संवैधानिक व्यवस्था लागू होने के साथ सभी को पढ़ने और आगे बढ़ने का अवसर मिला था, इसी परिवेश में एससी, एसटी और ओबीसी के साथ सवर्ण वर्ग के युवा आपस में मिलने लगे, परस्पर संवाद और बहसें करने लगे। इस प्रक्रिया में वे एक-दूसरे को जानने और समझने लगे। इससे उनके बीच नए सामाजिक समीकरण बनने लगे, हालांकि समाज के कमजोर तबके में दहेज प्रथा जैसी बुराई पहले नहीं थी, लेकिन परस्पर संपर्क से उन्नति व अवसर का उपयोग करने की चाह व अक्ल आने के साथ कई एक सामाजिक बुराईयाँ भी आ गई।

खैर! हम अपना ध्यान 'महकता कोना' कहानी पर टिकाते हैं, यह कहानी अवनी की है, उसमें उसके साथ महत्वपूर्ण पात्र श्रेय श्रीवास्तव है, जिसके पिता आजादी के बाद की संतान हैं, इसलिए वह अपने बेटे श्रेय की खुशियों के रास्ते में नहीं आते, जैसे श्रेय के पिता के पिता और दादा श्रेय के पिता की खुशियों के सामने आ गये थे। इस तरह से वर्णवादी कठोर चट्टान के चटकने के संकेत कहानी में साफ तौर पर उभरते हैं। श्रेय के पास ऐसी कोई दृष्टि या दर्शन नहीं कि वह अवनी को एक जाति में रूप में देखे, इसलिए उनके बीच बहुत सहज और मानवीय संबंध बनते हैं। श्रेय के पिता बहुत पहले ही वर्ण-जाति की दृष्टि व दर्शन को छोड़ चुके हैं। इस तरह से यह कहानी अखंड भारतीय समाज की आधारशीला रखती-सी जान पड़ती है।

22

डॉ. प्रियंका सोनकर की कहानी 'मोक्ष' पर बात करने से पहले मोक्ष का मतलब जान लेना जरूरी है। मोक्ष का मतलब माया से मुक्ति है। हर तरह के लोभ, लालच से मुक्ति है, लेकिन मोक्ष की क्रिया (कर्म) जिनके हाथों से होगी, वह खुद लोभी-लालची है। डॉ. प्रियंका सोनकर अपनी कहानी में इस विरोधाभास को देखती हैं, लेकिन चुप नहीं रहती बल्कि सवाल उठाती है कि एक लोभी व लालची पुरोहित कैसे मोक्ष के द्वार हमारे पुर्खों के लिए खोल सकता है।

हमने इन 22 कहनियों से गुजरकर महसूस किया कि मन में संस्थापित मान्यताओं के सामाजिक व्यवहार से प्राकृतिक और सहज मानवीय संबंध निर्मित नहीं हो पा रहे हैं। जिन मान्यताओं से पारिवारिक व सामाजिक नैतिकता का निर्माण हुआ है, उनके बीच जैसी पद, पद-प्रतिष्ठा और अधिकार व कर्त्तव्य की दार्शनिक व्यवस्था की गई

है, उनकी वजह से निजी व सामाजिक जीवन में क्लेश की स्थिति उत्पन्न हो गई है। प्रत्येक कहानी स्थापित पारिवारिक व सामाजिक मान्यताओं से संघर्ष करती है। स्थापित मान्यताओं की वजह से उत्पन्न क्लेश से अपना बचाव या रक्षा करने की मुद्रा अपनाती है। कई कहानियों में असहमति का तीव्र व तीखापन देखा गया। वहाँ-जहाँ स्त्री-पुरुषों के संबंधों की सहजता बुरी तरह से प्रभावित होती है, ठोस अस्वीकृति का भाव शासन करता है, लेकिन मुझे लगता है कि दर्शन के अभाव में शासन का इस प्रकार का भाव समाज पर कोई स्थाई प्रभाव दर्ज नहीं कर पायेगा, क्योंकि नजरिया जो प्रमुख समस्या है, को प्रतिस्थापित करने के लिए विकल्प के रूप में कोई दूसरा नजरिया कहानियाँ नहीं दे पाती हैं, यहाँ सोचना जरूरी है।

प्रत्येक रचनाकार को समझना जरूरी है कि दर्शन–देखने के तरीके को अभि-नियमित करता है। पहला तरीका है कि चीजों को समुचित रूप देखा जाए। जैसे सामने जो हमें दिखाई दे रहा है, वह मनुष्य है, वह मनुष्य ही क्यों है, क्योंकि उसका आकार ऐसा है, आकार ऐसा क्यों है, क्योंकि उनके मांस, चमडी, हड्डी व रक्त आदि ऐसे हैं, ये सब ऐसे क्यों है, क्योंकि जिन चार तत्त्वों से बने हैं, वे ऐसे ही हैं, चार तत्त्व क्या है, ये असंख्य पदार्थों का वर्गीकरण है, वास्तव में जिन्हें चार तत्त्व कहा जा रहा है, वे असंख्य पदार्थ हैं। यही असंख्य पदार्थों का समूह और उनका ऐसा आकार ही मनुष्य है। इस भांति मनुष्य के दर्शन किये जाते हैं। दर्शन के इस तरीके में मनुष्य को प्राकृतिक भाव में संस्थापित किया जाता है।

दूसरी तरफ का दर्शन कहता है, सामने जो चीज है, वह हिंदू, मुसलमान या ईसाई आदि है, अथवा चमार, दूसाध खटिक, ब्राह्मण, ठाकूर आदि है। यहाँ मनुष्य के अप्राकृतिक रूप से दर्शन किये जा रहे हैं। यहाँ देखने का तरीका समुचित है अथवा अनुचित है, समझने और समझाने का तरीका देना कथाकार का काम है, मनुष्य के अनुचित दर्शन की वजह से जो निजी व सामाजिक जीवन में संत्रास उत्पन्न हुआ है, उसी के विरुद्ध इस कथा विशेषांक की लेखिकाओं का संघर्ष दिखाई देता है। इस संघर्ष के भी दर्शन किया जाना जरूरी है।

स्त्री किसी पुरुष से कितनी सम है और कितनी विषम है, उसी आधार पर उसका पद, प्रतिष्ठा और अधिकार व कर्त्तव्यों का निर्धारण विशिष्ठ तरीके से होगा। स्त्री से पुरुष की विषमता कम मात्रा में है पर समता अधिक है, इस आधार पर पारिवारिक व सामाजिक नैतिकता के निर्धारण से पद, पद-प्रतिष्ठा और अधिकार व कर्त्तव्य का निर्धारण सम व विषम की आनुपातिक मात्रा के अनुरूप होना न्यायसंगत होगा। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में न्याय हो नहीं रहा है, इस संग्रह की कहानियाँ इसकी गवाही दे रही है। पारिवारिक व सामाजिक संबंधों के बीच स्थापित दार्शनिक-बोध को इन कहानियों ने खुलकर चुनौती दी है, सभी कथाकाराएं बधाई की पात्र हैं। फिर भी, चिंता की बात है कि जिस प्राकृतिक व न्यायपूर्ण दार्शनिक बोध को विकल्प के तौर पर उपस्थित होना चाहिए, वह कहानियों में नजर नहीं पड़ता। कहानियाँ जिस मजबूत, व्यवस्थित व नियंत्रित दार्शनिक बोध की मान्यताओं से असहमत हैं, उसका मजबूत और व्यवस्थित दार्शनिक बोध, विकल्प स्वरूप उन्हें देना होगा। कहानियों में वैकल्पिक दार्शनिक बोध का होना उतना ही जरूरी है, जितना कि कहानी का होना जरूरी है, जिसके अभाव में कहानियों के औचित्य पर सवाल उठेंगे, ऐसे सभी सवाल कहानियों में स्थापित फूले-फोके मूल्यों को बुलबुलों की भांति फोड सकते हैं।

कई साहित्य सेवियों का विचार होता है कि उन्हें जो लिखना था, वह उन्होंने लिख दिया है। आगे उसका काम नहीं है। कहानी लिखना भी वैसा ही काम है जैसे किसान को बीज बोकर यह देखना है कि वह अंकुरित हुआ है या नहीं, और अगर अंकुरित हो गया है तो पला-बढ़ा या नहीं। पला-बढ़ा हुआ तो फल दिये या नहीं। लापरवाही उस मेहनत को बर्बाद कर रही है, जो बीज जैसी चीज को उत्पन्न करने के लिए की गई। वंचित समाज के महान साहित्यकारों की कहानी में जिन पात्रों की छलक हमें देखने के लिए मिलती है, वैसी कोई झलक साहित्यकार के खुद के जीवन में नहीं होती, कारण संभव है कि वह दर्शन को छूने और समझने से लगातार स्वयं को वंचित करते रहे थे, रहे हैं। उसमें इसका अहसास है या नहीं, यह जानना भी कोई मुश्किल काम नहीं। खैर! हमें उम्मीद है, जहाँ तक हम पहुँचे हैं, वहाँ से आगे हम बढ़ेंगे। इसी उम्मीद के साथ डा. पूरन सिंह के संपादन में तैयार यह विशेषांक आपको सादर भेंट करते हैं।❑

चलते-चलते

डॉ. सुशीला टाकभौरे
मो. 9588442591

कार एल.आय.सी. चौक के बस स्टॉप के पास रुकी। अग्रवाल सर को यहाँ उतरना था। इसके बाद बर्डी जाने के लिए कार आगे बढ़ी। बर्डी का पूरा नाम सीताबर्डी है। रेड सिग्नल होने के कारण कार एल.आय.सी चौक पर रुक गई। सुपरवायजर डॉ. दीपक सर कुछ देर सामने देखते रहे। फिर उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए अपनेपन से कहा, 'मैडम अब पहले जैसी बात कहाँ रही है? अब सब कुछ बदल गया है... पूरी समाज व्यवस्था बदल गई है...'

मैंने उनकी बात के समर्थन में कहा, 'जी सर, अब पहले जैसी बात नहीं है। बहुत बातें बदली हैं, और बदल रही हैं। लेकिन आप किस संदर्भ में कह रहे हैं?'

सर उत्साह के साथ बोले, 'अपने नागपुर में तो बिल्कुल नहीं है। नागपुर क्या पूरे महाराष्ट्र में नहीं है। मैं तो कहता हूँ, अब पूरे देश में वह बात नहीं है। छुआछूत जाति भेद अब कहाँ है?'

सर की इस बात से मैं सहमत नहीं थी। मैंने कहा, 'जी सर... लेकिन. ..' मैं चुप हो गई, इस समय सुपर-वायजर सर से वाद-विवाद करना ठीक नहीं लगा। मैं जानती हूँ, ब्राह्मण सर की बड़ी बेटी पल्लवी ने बिहार के एक दलित जाति में जन्मे इंजीनियर लड़के से कोर्ट मैरिज कर ली है। वे दोनों पांच साल से बाम्बे में साथ-साथ रहकर एक ही कंपनी में नौकरी कर रहे थे। पिछले माह शादी कर ली। मैंने सोचा, शायद इसीलिए सर ऐसी बातें कर रहे हैं।

हमारे कॉलेज में छह दिसम्बर को 'डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर महापरिनिर्वाण दिन' का कार्यक्रम लिया गया था। कार्यक्रम में सर भी थे, कार्यक्रम में हुए भाषण और सामाजिक समानता की बातों का प्रभाव भी शायद सर को प्रभावित कर रहा था। वे स्वयं को सामाजिक समानता का पक्षधर बताते हुए, बड़े आग्रह के साथ अपना मन्तव्य मुझे बता रहे थे।

ग्रीन सिग्नल मिलते ही कार तेजी से आगे बढ़ी। रिजर्व बैंक चौक से मीना बाजार, मॉरिस कॉलेज होकर बर्डी जाना है। मीना बाजार के विशाल मैदान में खिलाड़ी लड़कों की टीम हॉकी और क्रिकेट खेल की प्रेक्टिस कर रही थी। सर उन्हें बहुत ध्यान से, अपनेपन के साथ देखने लगे। मैंने रिजर्व बैंक

चौक पर ऊंचे आसन पर स्थित बाबासाहब की आदमकद मूर्ति को देखा। उन्हें देखने के बाद कार के अंदर मुझे उमस महसूस होने लगी। दिसम्बर की ठंडी से बचने के लिए, कार के सभी शीशे बंद थे।

महाराष्ट्र विधान सभा का शीतकालीन सत्र नागपुर में शुरू है। इन दिनों सुबह दस बजे से शाम पांच बजे तक यह रास्ता बंद रखा जाता है। मोर्चे, जुलूस, प्रदर्शन, मूक मोर्चा आंदोलन, इन सबके कारण इस रास्ते पर आम लोगों का चलना कठिन होता है। बर्डी में व्हेरायटी चौक के पुलिस थाने से 'टी. प्वाइन्ट', 'गोवारी चौक', 'जीरो माईल' होकर रिजर्व बैंक जाने वाला यह रास्ता पुलिस बंदोबस्त में मोर्चो के लिए आरक्षित है। जुलूस, मोर्चे बर्डी पुलिस थाने के सामने से शुरू होकर कलेक्टर ऑफिस के सामने वाली रोड तक जाते हैं। वहां सुरक्षा बल द्वारा उन्हें रोक दिया जाता है। वहां से उनके प्रतिनिधि मंडल के पांच या सात लोग ही अपनी मांग लेकर कलेक्टर ऑफिस जा पाते हैं।

महाराष्ट्र की उप-राजधानी नागपुर के विधान सभा के शीत सत्र में मंत्रियों के समक्ष प्रदर्शन करके, अपनी समस्याएं और मांग के प्रस्ताव रखे जाते हैं। दस-बारह दिन के शीतकालीन सत्र में जिस दिन बड़े मोर्चे नहीं रहते और छोटे मोर्चो की संख्या कम रहती है, उस दिन यह रास्ता खुल जाता है। बर्डी से रिजर्व बैंक चौक तक मोर्चे, जुलूस, प्रदर्शन, मूक आंदोलन का क्रम लगातार आठ-दस दिन चलता है।

बाबासाहब डॉ. भीमराव आंबेडकर का स्टेच्यू देखते ही वे जलसे, जुलूस भीड़ और कार्यक्रम मुझे याद आ गये। बाबासाहब को मानने वाले, बाबासाहब के नाम पर अपने अधिकारों की मांग करने वाले, सबसे पहले यहाँ बाबासाहब को फूलों के हार पहनाते हैं, उनके कार्यो और उनकी कुर्बानी को याद करते हैं, फिर उनके नाम के नारे लगाकर मीटिंग, धरना, जुलूस, प्रदर्शन और आंदोलन के कार्यक्रम शुरू करते हैं। तब चारों तरफ जयघोष का नारा गूंजता है ,

'बाबासाहब जिंदाबाद, '

'डॉ. आंबेडकर जिंदाबाद, '

'बाबासाहब विजयी हो'

मेरे कानों में ये आवाज सुनाई देने लगी। सुपरवायजर सर कह रहे थे, 'मैडम, अब पहले जैसी बात नहीं रही। आप देखना, धीरे-धीरे लोग जात, पांत को भूल जाएंगे। जातिभेद जैसी कोई बात ही नहीं रहेगी,'

सर की बात सुनकर मैं चुप रही। मैं जानती हूँ, सर बहुत ही पुराने ख्याल के हैं। सच कहो तो वे पुराणपंथी हैं। वे जाति, भेदभाव को अभी भी मानते हैं। केवल इतना ही नहीं, जाति भेद की समाज व्यवस्था को वे अभी भी जरूरी मानते हैं, क्योंकि उच्च वर्ण होने की उनकी श्रेष्ठता इसी में संभव है। वे स्वयं कभी नहीं चाहेंगे कि जाति भेद खत्म हो।

'जातिभेद मिट रहा है, धीरे-धीरे पूरी तरह मिट जायेगा।' यह कहना सरल है। वैसे यह अच्छी बात है मगर जातिभेद अभी कम कहाँ हुआ है? ऊपरी व्यवहार की सौजन्यता सामाजिक जड़ मानसिकता का आईना नहीं हो सकती। उस आईने का चेहरा बहुत वीभत्स है। उसे छिपाने के लिए ही सौजन्यता का ताना-बाना ओढ़ा जाता है। शायद इसीलिए सुपरवायजर सर बार बार कह रहे हैं, 'मैडम, अब जात पांत को कोई नहीं मानता है।'

शहरों में भी छुआछूत है। नागपुर शहर में भी है। लोग मुँह पर नहीं कहते, सज्जनतावश जाहिर नहीं करते मगर उनके मन में जातिभेद रहता है। शिक्षित, उच्च शिक्षित, उच्च पदों पर आसीन दलितों के प्रति भी जातिभेद रहता है। जब इनके प्रति भेदभाव है तब अनपढ़ गरीब सफाई कार्य के रोजगार से जुड़े लोगों के प्रति कैसा भाव रहता होगा? जब शहरों में छुआछूत, भेदभाव का यह हाल है, तब गांवों में कितना रहता है? इसकी कल्पना की जा सकती है। अभी भी ऐसी घटनाएँ घटती हैं। खुल्लमखुल्ला जातिभेद मानने वाली कर्णकटु बातें कही जाती हैं।

कार जीरो माईल और गोवारी स्मारक से आगे बढ़कर टी. प्वाइन्ट के ट्राफिक सिग्नल पर रुकी।

'गोवारी शहीद स्मारक' देखकर मेरी आँखों के सामने पिछले दिनों हुई घटना सजीव हो गई। मुझे वे दृश्य याद आ गये, बेचारे गोवारी आदिवासी लोग! अपने अधिकारों की मांग के लिए जुलूस निकालकर आंदोलन कर रहे थे। सामने महिलाएँ थीं, बच्चे थे, पीछे पुरुष थे। गोवारी समाज के नेता और आंदोलन के अन्य नेता जुलूस के आजू-बाजू नारे लगाते हुए चल रहे थे। पुलिस ने जुलूस को रोका। महिलाएं कुछ समझी नहीं, वे नारे लगाती हुई आगे बढ़ती गई। पुलिस ने इसे उनकी धृष्टता समझा और अंधाधुंध गोलियां चलाना शुरू कर दिया। सड़क पर औरतों, बच्चों की लाशें बिछ गई। खून के फब्बारे बह निकले। सब लोगों में चीख पुकार मच गई। जो गोली से नहीं मरे, वे भगदड़ में एक दूसरे को रौंद कर घायल हो गये। उन्हें रोकना,

समझाना, संभालना मुश्किल हो गया।

नागपुर की यह बहुत ही दुखद और हृदय को चीर देने वाली घटना थी। गरीब आदिवासी गोवारी महिलाएँ, जिनके बदन पर पूरे कपड़े भी नहीं थे। आधी साड़ी का टुकड़ा घुटने तक ऊंचा कमर में बंधा था, ऊपर फटी पुरानी अंगिया थी। साथ लाये सामान की छोटी पोटली सिर पर थी। उन्हें घबराहट में न खुद का होश था, न अपने कपड़ों का। सुबह से भूखे प्यासे आंदोलन के लिए आये लोग, अपने अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। अधिकारों की लड़ाई लड़ते, लड़ते वे शहीद हो गये। अखबारों में कई दिनों तक समाचार छपते रहे। कई सामाजिक संस्थाएं भी 'टी प्वाइंट' के उस स्थान को देखकर, न्यूज बनाकर प्रकाशित करती रहीं। कितनी औरतें, कितने पुरुष, कितने बच्चे मारे गये थे! सरकारी आंकड़ा बहुत कम संख्या बताता रहा। पूरे देश में गोवारी हत्याकाण्ड की चर्चा और निन्दा हुई। पत्रकार नेता और स्वयंसेवी संस्था के लोग दूर-दूर से, 'गोवारी हत्याकाण्ड' का स्थल देखने आये। उन्होंने सच्ची जानकारी ली और अपने अपने ढंग से अपनी सच्ची रिपोर्ट छापी।

'गोवारी हत्याकाण्ड' को देखकर नागपुरवासियों के दिल दहल गये थे। खून से लाल हुई जमीन को देखकर लोगों के दिल कांप उठते थे। कई दिनों तक पुलिस की निन्दा हुई, उनके लिए सस्पेंड, ट्रान्सफर जैसी कार्यवाही भी होती रही। उन नेताओं की भी निन्दा हुई, जिनके नेतृत्व और मार्गदर्शन में यह जुलूस निकाला गया था। 'महिलाओं और बच्चों को ही सामने क्यों रखा गया?' इस बात पर कई प्रश्न और आक्षेप उठाये गये थे।

जो होना था, वह हो चुका था। इसके साथ यह भी पता चला कि न्याय और अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ना कितना कठिन काम है। शायद यह सोचकर ही हमारे लोग किसी आंदोलन में भाग नहीं लेते हैं, वे अपनी जान जोखिम में नहीं डालते हैं। वे जैसे हैं उसी हालत में खुश हैं। भोले-भाले आदिवासी शुरू से ठगे जाते रहे हैं। इतना होने पर भी उन्हें न्याय नहीं मिला। कई दिनों तक विरोध प्रदर्शन धरना, भूख हड़ताल के रूप में आंदोलन चलता रहा। तब कहीं उन्हें कुछ लाभ मिल सका। शहीदों के परिवार को राहत राशि दी गई। नौकरियों का आश्वासन दिया गया। 'गोवारी हत्याकांड' घटना की स्मृति में 'गोवारी शहीद स्मारक' बनाया गया।

गोवारी शहीद स्मारक के रूप में कई संगीनें सब तरफ निशाना ताकते हुए हैं। इन संगीनों को देखकर, उस दिन का गोवारी हत्याकाण्ड हर क्षण उजागर होता रहता है। इस शहीद स्मारक के छोटे घेरे में, हरी घास पर चरती बकरियों के पुतलों को चराते गोवारी आदिवासी स्त्री, पुरुष के छोटे-छोटे पुतले और सिर पर लकड़ी का गट्ठर लिए, गोवारी आदिवासी स्त्रियों के पुतलों को देखकर मन द्रवित हो गया। टी. प्वाइन्ट से आगे वर्धा रोड की ओर जाने वाले उड्डान पुल को 'आदिवासी गोवारी शहीद उड्डान पुल' नाम देकर गोवारी आंदोलन को सम्मान दिया गया है। 'गोवारी शहीद स्मारक' के सामने सड़क के उस पार देश का हृदय स्थल 'जीरो माईल' है। एक ऊंचा स्तम्भ, जहाँ से देश की सब ओर की दूरी नापी गई है। 'गोवारी शहीद स्मारक' भी 'जीरो माईल' की तरह अपना विशेष महत्व रखता है।

गोवारी आदिवासी लोगों के प्रति मेरा हृदय सम्मान से भर गया। तभी याद आये हमारे जाति समुदाय के लोग, जिनके प्रति छुआछूत के विषय में सुपरवायजर सर बता रहे थे। सफाईकर्मी लोग ... क्या आज भी उनकी हालत बदली है? जो अपने ऊपर होने वाले अन्याय को नहीं समझते, वे कब न्याय और अधिकार की बातों को समझेंगे? क्या वे अपनी स्थिति बदलने के लिए इस तरह आंदोलन कर सकते हैं? अपनी कौम के लिए, अपनी आने वाली पीढ़ियों को अधिकार दिलाने के लिए क्या वे इस तरह शहीद हो सकते हैं?'

मेरा हृदय अंदर ही अंदर अलोड़ित हो गया। हमारे लोग कितने अपमान का जीवन जीते हैं? पीढ़ी दर पीढ़ी आज भी वही हालत है। कैसे जीते होंगे वे लोग नरक सफाई का काम करते हुए, नारकीय जीवन! इस जीवन की यातना कैसे सहते होंगे? बताने वाले उनके विषय में, उनके काम के विषय में कितनी सहजता से कहते हैं। वे क्या समझेंगे उनकी पीड़ा, उनका दर्द!

मैं बाहर दूर देखती हुई अपने विचारों में खोई थी। सर बार-बार पूछ रहे थे, 'मैडम आपको बर्डी उतरना है न? व्हेरायटी चौक आ गया। आपको यहीं उतरना है न?' मैंने कहा, 'जी सर' लेकिन तब तक ट्रैफिक सिग्नल की ग्रीन लाइट शुरू हो गई थी। सर ने कहा, 'मैडम, अब आप रानी झांसी चौक पर ही उतरिए।'

मैंने देखा कार 'मून लाइट' फोटो स्टुडियो के सामने रुकी है। सीताबर्डी किले की दीवार कब गुजरी, कब बिना

कलश का मंदिर 'मुण्डा देवल' पीछे छूटा, मैंने नहीं देखा। व्हेरायटी चौक पर मैंने सबसे पहले रोड के उस पार खड़े गांधीजी को देखा। अधिकांश गांव और शहरों में नगर परिषद, नगर निगम, नगर पालिका और महानगर पालिका के सामने गांधीजी की मूर्ति बड़े श्रद्धाभाव के साथ इसी तरह स्थापित की गई है, लोग कहते हैं, उन्होंने अछूतोद्धार का काम किया था। मेरा घायल मन तड़प उठा, क्यों हमारे लोग गांधीजी के प्रति इतनी श्रद्धा रखते हैं? क्योंकि वे जानते ही नहीं हैं कि गांधीजी का असली चेहरा क्या है। मुझे याद आया, जब व्हेरायटी चौक से गांधीजी की मूर्ति हटाई गई थी।

व्हेरायटी चौक पर कार, स्कूटर व आटो के भागते पहियों पर जन समूह बहता नजर आता है। सामने चौक के उस पार हाथ में लाठी लिए ऊंचे चबूतरे पर गांधीजी का पुतला खड़ा है। पहले यह पुतला इस चौक के बीच में था। वैसे यह नागपुर शहर की विशेषता है। पहले यहाँ हर चौक के बीच एक पुतला जरूर रहता था। इस कारण इसे पुतलों का शहर भी कहा जाने लगा था। फिर धीरे-धीरे रोड चौड़े होते गये, शहर की आबादी बढ़ती गई। बढ़ते शहर के बढ़ते विकास के साथ और सड़क चौड़ीकरण के साथ पुतलों के चबूतरों का घेरा छोटा होता गया। फिर एक समय ऐसा आया कि पुतलों को बीच चौक में सड़क पर रखना कठिन हो गया। तब यातायात की सुविधा के लिए, बड़ी सड़कों और बड़े चौक के पुतलों को उठाकर, वहीं आसपास किनारों पर स्थानापन्न किया जाने लगा।

रानी झांसी चौक की झांसी की रानी लक्ष्मीबाई को घोड़ी सहित उठाकर, हिंदी मोर भवन के सामने की सड़क के उस पार स्थापित किया गया। मगर यह सच है, उनकी जो शान बीच चौक में थी, वह बाद में नहीं रही। झांसी की रानी का पुतला बस पुतली बनकर रह गया। इसी प्रकार जब गांधीजी के पुतले को बीच चौक से उठाया गया था, तब बर्डी में व्हेरायटी चौक पर लोगों की बहुत भीड़ जमा हुई थी। गांधीजी को हटाये जाने का विरोध भी हुआ मगर जनता की सुविधा और शासन के आदेश के सामने चुप रह जाना पड़ा। गांधी-वादी दुख के आँसू पीकर चुपचाप देखते रहे। गांधी विरोधी पार्टी के लोग दिखावे के दुख के साथ चुप रहे। आम जनता चुप रही।

गांधी जी का पुतला हटाने में और झांसी की रानी का पुतला हटाने की बात में बहुत अंतर था। झांसी की रानी बस झांसी की रानी है, मगर महात्मा गांधी पूरे देश के राष्ट्रपिता हैं। कहते हैं, उनके राष्ट्रीय आंदोलन के पीछे पूरा देश था। पूरा देश उनकी भक्ति में अंधा था। मगर ये सब बातें गांधीवादी ही कहते हैं। शुरू से उनके भी कई विरोधी थे, अभी भी हैं। इसी देश के लाखों देशवासी उनके विरोधी हैं।

गांधीजी का पुतला हटाये जाने के समय की तस्वीर खींची गई। 'मून लाइट स्टूडियो' के बगल की 'श्याम होटल' के ऊपर छत पर चढ़कर फोटो खींची गई। गांधीजी का मुख उसी दिशा में था। पेशेवर फोटोग्राफर और पत्रकारों ने बड़ी तकनीक के साथ फोटो खींचे। दूसरे दिन सभी अखबारों में गांधीजी को उठाये जाने के फोटो छपे।

इस समय की अलग-अलग झलकियाँ इस प्रकार थीं, गांधीजी को उठाने के लिए क्रेन खड़ी है, क्रेन के ऊंचे उठे हुक में एक फंदा लटक रहा है। जमीन से दस-बारह फुट की ऊंचाई पर गांधीजी के गले में फंदा लगाया गया है। क्रेन के हुक ने फन्दे को ऊंचा खींचकर, गांधी जी को ऊपर उठा लिया है। कई लोगों ने कई अखबारों में ऐसी तस्वीरों को बहुत रस लेकर रुचि के साथ क्रमबद्ध छापा। कई लोगों ने गांधी जी के ऐसे ऐतिहासिक चित्रों को संग्रह करके रख लिया। मैं यह सब इसलिए याद कर रही हूं कि यह भी हो सकता है, ऐसा हुआ है। क्यों नहीं होना चाहिए? कोई कभी किसी बात की कल्पना भी नहीं कर पाता है, तब भी वह काम या घटनाएं होती हैं। इस दुनिया में असंभव कुछ भी नहीं है। गांधीजी जिस तरह पूरे देश के हृदय में बैठे हैं, उनकी सच्चाई जानकर उनसे पीड़ित लोग उन्हें कम से कम अपने हृदय से तो निकाल सकते हैं।

आज वही गांधीजी व्हेरायटी चौक के बीच से हटाकर आनंन्द भंडार की ओर जाने वाली रोड की बगल में, चौक के बाजू में स्थानापन्न हैं। उनके पीछे दुकाने हैं मगर उधर उनकी पीठ है। चौक की तरफ मुँह है। हर दो-चार दिन में वहां धरना, मीटिंग, अनशन, नारेबाजी, पोस्टर प्रदर्शन जैसे कार्यक्रम चलते रहते हैं। वहाँ कार्यक्रम में उपस्थित दस-पंद्रह लोगों को, रास्ता चलते लोग चलते-चलते देखते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। सुरक्षा के लिए वहाँ पुलिस रहती है। फोटो लेने के लिए पत्रकार और फोटोग्राफर आते हैं। न्यूज तैयार होने पर कार्यक्रम समाप्त होता है। जिन्होंने चलते-चलते वे कार्यक्रम देखे थे, वे और सभी लोग दूसरे दिन उस न्यूज को विस्तार के साथ समाचार पत्र

में पढ़तें हैं। आँखों देखे हाल से काफी बढ़ा-चढ़ाकर समाचार पत्रों में छपे समाचारों को पढ़कर, बात पूरी तरह समझ में आती है। कुछ लोग कहते हैं, इसी का नाम राजनीति है।

व्हेरायटी चौक से झांसी रानी चौक तक पैदल जाना बड़ा कठिन काम है। पांच रास्तों का बड़ा चौक होने के कारण इस चौक पर ट्राफिक ज्यादा रहता है। ग्रीन सिग्नल मिलते ही लोग फर्राटे से भागते, मुड़ते, उड़ते, हवा से बातें करते हुए गाड़ी चलाते हैं। बेचारे पैदल चलने वाले खुद को बचाते हुए परेशान हो जाते हैं। बीच सड़क पर ट्राफिक रहता है, सड़क के किनारे फुटपाथ से लेकर सड़क तक दुकानें ही दुकानें हैं। जूते, चप्पल, कंघे, मोजे, टोपी, थैली, बैग, बेल्ट व सस्ती घड़ी आदि कई सामान। 'रस्ते का माल सस्ते में', हर दुकान वाला हर राहगीर से अपना माल खरीदने का अनुरोध करता। पैदल चलने वाला परेशान, रोज-रोज क्या-क्या खरीदे? कितना खर्च करे?

फुटपाथ की दुकानों के सामने सड़क पर ऑटो खड़े रहते हैं। ऑटो के बगल में ऑटोचालक अपने दोनों हाथ बगल में फैलाकर मानो पैदल चलने वालों को रोकते हुए, अपने ऑटो में बैठने का अनुरोध करते हैं। हर राहगीर से एक जैसा अनुरोध, 'चलिए बहन जी, चलिऐ भैया जी, कहाँ जाना है, ऑटो में बैठ जाइये... आइये... आइये... मीटर से चलिए, ज्यादा नहीं लेंगे।' इतना आग्रह कि न कहना मुश्किल। मुझे हर ऑटो वाले को बताना पड़ता है, 'भैया, हमें सिर्फ झांसी रानी चौक तक जाना है।' तब कहीं जाने देते हैं। झांसी रानी चौक से सवारी रेट से चलने वाले ऑटो मिल जाते हैं। यहाँ से अपने घर जाने में मुझे कोई परेशानी नहीं होती है।

जबसे गोवारी उड्डान पुल (फ्लाय ओव्हर) बना है, तब से वर्धा रोड जाने वाले हल्के वाहनों वाला ट्राफिक ऊपर से जाता है फिर भी नीचे भीड़ कम नहीं हुई। सड़के चौड़ी हो गई, उसी अनुपात में भीड़ भी बढ़ गई। इतनी भीड़ को देखकर मन में विचार आते, 'इतने लोग कहाँ से आ जाते है? क्यों इतना बाहर घूमते हैं? कितना धन है इनके पास खरीदी करने के लिए, बर्डी की बड़ी-बड़ी दुकानों से महंगा सामान खरीदते है, कितनी शान से रहते हैं, सम्पन्न, सवर्ण बस्तियों के लोग!'

सुपरवायजर सर का स्वर मेरे कानों से बार-बार टकरा रहा था, 'मैडम, अब जात पांत कोई नहीं मानता है,' सर की यह बात अब मुझे असहनीय लगने लगी।

लेकिन सर को तो आज अपने मन की बात कहना ही था। वे मेरी तरफ मुड़कर बहुत अपनेपन के साथ बोले, 'मैडम, अभी-अभी की बात है बस कोई तीस साल पहले की बात है। पहले वही सिस्टम था, पुराना सिस्टम। खुद हमारे घर ड्राय सिस्टम था। वे लोग टोकरा लेकर सफाई का काम करने के लिए आते थे। वो सब अपने सिर पर उठाकर ले जाते थे। हमारे जोशी वाड़ी में ऐसे ही पाखाने थे। पाखाने साफ करने की वही पद्धति थी। जोशी वाड़ी में तब अधिकांश घर ब्राह्मणों के थे।'

सर बता रहे थे, हम लोग महीने भर का उन्हें एक या दो रुपया दिया करते थे। हमारी ज्वाइंट फैमली थी। पूरे कुटुम्ब परिवार का सिर्फ एक या दो रुपया देते थे,' फिर उन्होंने याद करते हुए कहा, 'पहले अठन्नी ही दिया करते थे। बाद में एक या दो रुपया देना पड़ता था। हर घर से महीने भर में उन्हें इतना ही मेहनताना मिलता था। साथ में कुछ फटे, पुराने कपडे, कुछ खराब अनाज या बचा-खुचा जूठा खाना बगैरह भी उन्हें देते थे।'

सर की बातें सुनकर मुझे उन पर गुस्सा आया। मैं सोचने लगी , सर ने मेरे सामने सफाई के काम की चर्चा क्यों की? आखिर वे इन बातों के द्वारा मुझसे क्या कहना चाहते हैं? कहीं वे इन बातों से मुझे यह याद दिलाना तो नहीं चाहते कि मैं कौन हूँ? मैं क्या हूँ? मेरे जाति-समुदाय का रोजगार क्या है? कहीं वे मुझे मेरी जाति का एहसास कराने के लिए तो ऐसा नहीं कह रहें हैं? वह भी इतने अपनेपन से? यह तो सरासर उनकी दुष्टता है।

मेरा मन कुंठित हो गया, पीड़ित हो गया। राहत के लिए मैं बाहर देखने लगी। सर कुछ कह रहे थे। मैं उनकी बातों को अनसुना करते हुए बाहर देखती रही।

मुझे वह दिन याद आया जब इन्हीं सुपरवायजर सर को मैंने पूरे स्टाफ के सामने खूब खरी खोटी सुनाई थी। वे हमेशा मुझपर यह दोष लगाते थे कि मैं लेट आती हूँ, मैं क्लास नहीं लेती हूँ। उस दिन मैं ग्यारह बजे के पहले कॉलेज में थी ठीक समय पर ग्यारह बजे क्लास लेने गई। मेरी क्लास में चालीस स्टुडेंट थे। पीरियड लेने के बाद मैं सर के ऑफिस में आई। सर मुझे देखकर कहने लगे, 'मैडम आज भी आप लेट आई हैं आपकी क्लास नहीं हुई आपकी क्लास के बच्चे यहाँ बताने आये थे कि आपका क्लास नहीं

पृष्ठ सं. 46 पर शेष भाग

नत्थो मरी नहीं

कमलेश चौधरी
मो. 9813446370

साठ-बासठ साल के लगभग आयु, गौर, वर्ण, ऊँचा कद, मर्दानी कुरती, नीचे पुराने चलन का घाघरा, देशी जूती, माथे तक ओढ़ी गई जयपुरी छींट की ओढनी, गले में चाँदी की हँसुली, हाथों में सोने के कड़े, टखनों में छैलकड़ी, बारह महीने यही पहनावा बहुत ज्यादा सर्दी में कंधों पर सूती चादर, चेहरे पर सरलता, बातों में अपनापन, सबको अपनी सी लगती, यह थी पूरे गाँव की बुआ नत्थो। नत्थो अपने मायके में रहती थी सो काकी, ताई, भाभी जैसे रिश्तों का सवाल ही नहीं था। पूरे गाँव से उसका एक ही रिश्ता था, बुआ। बच्चों के साथ-साथ बड़ी आयु के लोग भी उसे बुआ कह कर पुकारते थे। गाँव में हर किसी को गाहे-बगाहे नत्थो की जरूरत पड़ती रहती थी। बच्चे के जन्म पर सोहर गाने के लिये, भजन, कीर्तन में ढोलक, चिमटे का इन्तजाम करने के लिये, लड़की की शादी में सुहाग तथा लड़के की शादी में घोड़ी गीत गाने के लिये, गोबर की सांझी बनाने के लिये बुआ नत्थो को पुकारा जाता था। वह भी झट से हाजिर हो जाती। बुआ अपने मायके में क्यों रहती थी, इसकी एक दु:ख भरी कथा है। पन्द्रह साल की होने पर नत्थो का विवाह बीस-बाईस कोस की दूरी पर बसे गाँव रामगढ़ के अतर सिंह के साथ हुआ था। तीन भाई, सास-ससुर, एक जेठ व एक अविवाहित देवर, भरा पूरा परिवार था नत्थो की ससुराल का। अतर सिंह व नत्थो का जीवन खुशियों से भरपूर था। मगर नत्थो की तकदीर में ये खुशियाँ लंबे समय तक विधाता को स्वीकार नहीं थीं। अतर सिंह को टाईफाइड हो गया। शुरू में इलाज करने में काफी लापरवाही के कारण निमोनिया का भी असर हो गया। काफी भाग-दौड़ की। इलाज करवाया, झाड़-फूंक का भी सहारा लिया। मगर होनी को कुछ और ही मंजूर था। शहर के बड़े अस्पताल तक ले जाने में देर हो चुकी थी। बड़े डॉक्टर ने काफी प्रयास किया मगर अतर सिंह के प्राणों की रक्षा नहीं हो सकी।

तीन भाईयों में अब दो रह गये। जेठ विवाहित और बाल-बच्चे वाला था। छोटा देवर इंद्र सिंह अविवाहित था। नत्थो के मायके और ससुराल के बड़े बुजुर्गों ने विचार विमर्श के बाद

निर्णय लिया कि इंद्र की चादर नत्थो पर डलवा दी जाए। चादर डालने का अर्थ पुनर्विवाह होता है। तेरहवीं के बाद इंद्र के सामने यह प्रस्ताव रखा और उसकी मंशा जाननी चाही तो वह एकदम तैयार हो गया। उसने कोई एतराज या ना-नुकर नहीं की। फैसला किया गया कि अतर सिंह की छमाही के बाद इंद्र व नत्थो का विवाह कर दिया जाएगा। नत्थो ने भी इसे अपनी नियति स्वीकारते हुए 'हाँ' कह दी।

एक दिन नत्थो सुबह पशुओं के बाड़े में भैंस दुहने गई तो इंद्र ने पीछे से आकर उसे अपनी बाँहों में कस लिया। नत्थो ने छूटने की कोशिश की तो इंद्र ने कहा, "देखो हमारे भाग्य का फैसला तो ऊपर वाले ने कर दिया। तुम्हें तो मेरी होना ही है। इस रिश्ते पर किसी को आपत्ति नहीं है। तुम्हें भी स्वीकार है। फिर क्यों खुद तड़प रही हो और साथ में मुझे भी तड़पा रही हो। फर्क केवल इतना-सा है कि जो कुछ समय बाद होने वाला था वह थोड़ी जल्दी हो रहा है।'

नत्थो को लग रहा था कि यह इंद्र की ज्यादती है। उसकी आत्मा देवर के इस आग्रह को स्वीकार नहीं कर पा रही थी। कुछ इंद्र के दिये हुए तर्क, कुछ देह की माँग, इस पर इंद्र का निर्दोष सा लगता अनुरोध यह सब एक साथ नत्थो की चेतना पर हावी हो गया। वह आपा हार गई। छमाही से पहले दो दफा ऐसा हो चुका था। छमाही से अगले दिन नत्थो का देवर के साथ विवाह होना था। जेठ ने सारा जरूरी सामान मँगवा कर रख लिया था। नत्थो के मायके से उसके दोनों भाई भी आ गये थे। पण्डित भी पधार चुके थे। मगर इस आयोजन के केन्द्र इंद्र का कोई पता नहीं था। काफी देर इन्तजार करने के बाद भी जब इंद्र नहीं आया तो नत्थो के भाई ने उसके ससुर से पूछा, 'मौसा जी, आपने इंद्र से पूछ तो लिया था ना? कहीं ऐसा तो नहीं है कि वह इस रिश्ते का इच्छुक न हो और आप लोगों ने उस पर दबाव डाल कर जबरदस्ती हाँ कहलवाई हो।'

नत्थो के ससुर ने कहा, 'नहीं बेटा! हमें पता है ये जिंदगी भर का संबंध है। जबरदस्ती थोपने वाला काम नहीं है। हमने उससे इस बारे में साफ-साफ पूछा था। कोई दबाव नहीं डाला था। उस समय तो उसने अपनी खुशी से यह प्रस्ताव स्वीकार किया था। पता नहीं अब ऐसा क्या हो गया? मुझे तो चिन्ता होने लगी है।'

लोग अभी कुछ सोच ही रहे थे कि पड़ोस के गाँव में रहने वाला इंद्र का एक दोस्त आता हुआ दिखाई दिया। उसने आकर सबका अभिवादन किया और बोला, 'मैं इद्र का संदेश लेकर आप लोगों के पास आया हूँ। उसे यह विवाह स्वीकार नहीं है। उसने एक बार हाँ कर दी थी। इसलिये वह सबके सामने हाँ कह कर मुकरने से शर्मिन्दा है, वह भाग कर मेरे पास आया और उसने सारी बात बता कर मुझे कहा, 'मैं आप लोगों को सब बता दूँ। इसीलिये मैं यहाँ पर आया हूँ।'

यह सुनकर सब सकते में आ गये। नत्थो पर जो गुजर चुकी थी और अब उसकी आशाओं पर जो वज्राघात हुआ था, उसके साथ जो छल हुआ था, उसकी आत्मा पर जो घाव लगे थे उन्हें बस वही जानती थी। नत्थो के भाईयों पर तो जैसे बिजली गिर पड़ी। कोई कुछ बोल नहीं पा रहा था। सब खामोश हो गये थे। किसी के पास जैसे शब्द ही नहीं थे। पूरे वातावरण में एक दमघोटू मौन पसर गया था। आखिर नत्थो के भाई ने मौन तोड़ते हुए कहा, 'मौसा जी, अब हमें इजाजत दीजिए। नत्थो को ले जाते हैं। इसके पास तो कोई बाल बच्चा भी नहीं है। कहीं और घर देखकर इसका ठिकाना बनाने का काम भी तो करना ही है।'

नत्थो के ससुर के पास कोई उत्तर नहीं था। उसके जेठ ने कहा, 'अब हम क्या कहें। वह आपकी बहन है। आप उसके बारे में जो कुछ सोचेंगे उसके भले के लिए ही सोचेंगे।'

भाईयों ने नत्थो से उनके साथ चलने का आग्रह किया। वह बोली, 'नहीं भाई, आज नहीं। मैं अपने आप चली आऊँगी। फिलहाल आप चले जाइए।' 'क्या करेगी यहाँ रहकर?' बड़े भाई ने पूछा।

'ठीक कहते हो भाई, यहाँ अब कुछ करने को है भी नहीं। बस दो-चार दिन की ही तो बात है। कह तो रही हूँ मैं आप चली आऊँगी।' नत्थो बोली, 'मैं किसी गैर के ठिकाने पर तो नहीं हूँ। आखिर यह मेरे स्वर्गवासी पति का घर है। आप चिंता मत कीजिये।' भाई निरुत्तर होकर वापस चले गये।

दो दिन बाहर रहने के बाद इंद्र घर लौट आया। नत्थो ने उससे पूछा, 'तुमने ऐसा क्यों किया इंद्र। बस मुझे अपने इस सवाल का उत्तर चाहिये। इससे अधिक कुछ नहीं।' इंद्र ढिठाई से बोला, 'मैं जवान हूँ, मेरे भी कुछ अरमान हैं। तुमने यह कैसे सोच लिया कि मैं तुम जैसी फूटी मटकी को सारी उम्र गले में लटकाए घूमता रहूँगा।'

'यही तो मैं जानना चाहती हूँ कि यदि तुम्हारे मन में यही कुछ था तो मेरे साथ ऐसा खेल क्यों खेला?'

'अरे बार-बार मुझे ही दोष दे रही हो, मुझसे सवाल पूछ रही हो? जो कुछ हुआ उसमें तुम भी तो बराबर की भागीदार हो। मैंने जबरदस्ती तो नहीं की। तुमने कहीं इंतजार किया भाई की छमाही का? छमाही पर सब कुछ स्पष्ट हो जाना था।' नत्थो जैसे आसमान से गिरी। इंद्र ने एक बेहद कुटिल चाल चली थी उसके साथ। उसे अब लगने लगा कि उसे छमाही तक ऐसी स्थिति से स्वयं को बचाना चाहिए था। मगर अब तो तीर कमान से छूट चुका था। इंद्र ने बेशर्मी से कहकहा लगाया और बोला, 'चाहो तो यहीं टिकी रहो। यकीन करो अपनी शादी हो जाने के बाद भी मैं तुम्हें अनदेखा नहीं करूँगा। विश्वास रखो। मैं झूठ नहीं कह रहा।'

नत्थो की अन्तर्मन जल उठी। पाँचवें दिन नत्थो ने अपने ससुर से कहा, 'बापू जी, मुझे मायके छोड़ आइए।'

ससुर बोले, 'ठीक है बेटी, जैसा तुम चाहो।'

नत्थो मायके चली आई। चलते समय ससुर ने कहा, 'बेटी अतर सिंह के हिस्से में तीन एकड़ जमीन है। एक पशु बाँधने का बाड़ा है। जिस घर में रहते हैं उसका तीसरा हिस्सा अतर सिंह का है। इन सब की मालिक अब तुम हो। तेरे कुछ जेवर भी हमारे पास हैं। इन का तुम जैसे चाहो इस्तेमाल कर सकती हो। भगवान ने जो कुछ किया वह उसकी मर्जी। मगर मैं तुम्हारे साथ किसी प्रकार का अन्याय नहीं होने दूँगा।' नत्थो ने अपने संदूक की चाबी ससुर के हाथ पर रखी और कहा, "बापू जी, मैं वहाँ रहते हुए भी इसी परिवार का हिस्सा हूँ। जब भी आपको जरूरत हो पता कर देना, मैं चली आऊँगी।' यह कह कर नत्थो ने ससुर के चरण स्पर्श किये। उन्होंने सिर पर हाथ रख कर कहा, 'सुखी रहो।' ससुर चले गये। नत्थो के साथ जो गुजरी थी, उससे उसको गहरी चोट लगी थी। पुरुष जाति से तथा पुनर्विवाह के नाम से ही वह चिढ़ उठती थी। उसे विवाह के नाम से वितृष्णा हो गई थी। उसने आपा मारना सीख लिया था। दोनों भाभियों ने कुछ दिन तो नाक, मुँह चढ़ाया मगर नत्थो की कर्मशीलता तथा शालीनता ने उनके मुँह पर ताला लगा दिया। इस प्रकार नत्थो सारे गाँव की बुआ बन गई। वह गाँव के लिये नत्थो बुआ थी, तथा भाभियों के लिये मुफ्त की नौकरानी। फकत रोटियों की मजदूर।

नत्थो ने ससुराल से पूर्णतया नाता नहीं तोड़ा था। देवर की शादी में जाकर उसने पिछले प्रकरण का पटाक्षेप कर दिया था। यदि वह शादी में नहीं जाती तो चादर चढ़ाने वाले दिन इंद्र के भागने की कहानी फिर से ताजा हो सकती थी। सुख-दुख में या परिवार में होने वाले बच्चे के जन्म के समय ससुराल में दो-चार दिन रह कर वापस मायके चली जाती थी।

एक दिन नत्थो के ससुर चल बसे। उम्र तो ज्यादा नहीं थी मगर जवान बेटे की मौत ने उनको गहरा सदमा दिया था। ससुर की मृत्यु होने पर नत्थो को लगा जैसे वह अनाथ हो गई। सिर पर आशीर्वाद का हाथ रखने वाले ससुर के चले जाने के बाद नत्थो का ससुराल जाना बहुत कम हो गया था।

एक दिन नत्थो के जेठ का बेटा उसके मायके आया और बोला, 'काकी, सरकार एक प्रोजेक्ट लगाने के लिये हमारी जमीन खरीद रही है। सात लाख प्रति एकड़ के हिसाब से पैसा मिलेगा। आप अपने हिस्से की तीन एकड़ जमीन की हकदार हैं।

'आप मेरे साथ चलिए। कल मुआवजा बाँटने वाला अधिकारी आ रहा है। यह काम कल ही हो जाएगा।'

नत्थो रवि के साथ ससुराल चली गई। पुनर्वास अधिकारी ने उन लोगों को चेक दिये जिनके बैंक में खाते खुल हुए थे। जिनके खाते नहीं थे उनको नकद रुपया गिनकर दे दिया। नत्थो के हाथ में इक्कीस लाख की नकद रकम थी। घर आकर नत्थो ने कहा, "पहले तुम्हारे काका गये, पति नहीं रहे तो ससुर का स्नेह भरा हाथ सदा सिर पर रहा। फिर वे भी नहीं रहे। यह जमीन का टुकड़ा था जिसे देखकर कहीं ना कहीं पति व ससुर के जीवित होने का अहसास बना रहता था। इस घर से लगाव बना रहता था। आज यह डोर भी कट गई। अब यहाँ का मोह छोड़ना होगा। मेरी उम्र भी बढ़ती जा रही है। पता नहीं कब बुलावा आ जाए।' यह कह कर नत्थो ने चाबी निकाली। अपनी संदूक खोली और उसमें से एक डिब्बा निकाला। उसमें से कर्णफूल तथा पाजेब निकाल कर जेठानी को देते हुए कहा, 'यह बेटी की शादी के लिये कर्णफूल और बेटे की बहू के लिये यह पाजेब मुँह दिखाई के लिये मेरी ओर से।'

'क्या कह रही हो, शादी होगी तो क्या तुम नहीं आओगी? अपने हाथों से देना।' ठीक है, मगर वक्त का कुछ पता नहीं होता, तुम अपने पास ही

रखो। मैं आकर तुमसे माँग कर उनको दे दूँगी। मगर अब तो ये तुम्हें ही रखने होंगे।' अब नत्थो के हाथों में एक अंगूठी और छोटी सी चेन बची हुई थी। उसने देवरानी को बुलाया और कहा, "देखो ये चेन और अँगूठी मेरी तरफ से तुम्हारे बच्चों के लिये शादी का उपहार।'

देवरानी बोली, 'अभी अपने पास ही रखो इनको, अपने पास रहने दो। वक्त आने पर तुम्हीं दे देना।'

नत्थो बोली, 'तुम दो या मैं, बात तो एक ही है ना।'

अब नत्थो खड़ी हो गई और बोली, 'मेरे पीछे किसी के बीच में मन मुटाव न हो। इसलिए मैं स्वयं ही सारा निपटारा कर देती हूँ। मेरे हिस्से का पशुओं का बाड़ा देवर का और घर का तीसरा भाग जेठ जी को सौंपती हूँ।' अब नत्थो ने पैसे निकाले। पाँच लाख देवर को तथा पाँच लाख जेठ को दे दिये।

पचास हजार गाँव की चौपाल की मरम्मत तथा पचास हजार स्कूल की पगडण्डी पर ईंटें बिछाने के लिये अलग से जेठ को पकड़ा दिये। यह सब करने के बाद नत्थो बोली, 'चलो हो गई मेरी वसीयत।'

नत्थो ने बची हुई चीजें सँभाली। दस लाख रूपये कपड़े में बाँध कर थैले में रखे। एक जोड़ा झुमकी तथा दो चूड़ी अभी भी डिब्बे में बची हुई थी। नत्थो ने उनको भी संभाल कर रख लिया। अगले दिन उसे मायके वापस जाना था। रात के समय जेठ-देवर व परिवार के अन्य सदस्य सिर जोड़ कर बैठे। इस मंडली में नत्थो को शामिल नहीं किया गया।

जेठ ने कहा, 'कितनी चालाक औरत है, हमारे भाई की जमीन के दस लाख लेकर मायके वालों को देने चली है। आज एक बात मेरी समझ में आ रही है कि घर की बहू के विधवा हो जाने पर देवर या जेठ की चादर डालने की प्रथा कितनी जरूरी और कितनी सही है। यदि उस दिन इंद्र मान जाता तो आज सारी की सारी जमीन हमारी होती। इस चुड़ैल को एक पैसा भी नहीं मिलता।'

इंद्र बोला, 'मैं तो सोच रहा था कि पीहर में इसे कौन बिठा कर खिलायेगा। भाई इसकी कहीं और शादी कर देंगे। मुझे अंदाजा नहीं था कि यह इतनी सख्त जान निकलेगी कि सारी उम्र मायके में निकाल देगी और हमारा पीछा भी नहीं छोड़ेगी।' खैर अब तो जो हो चुका था उसे बदला जाना संभव नहीं था।

देवरानी बोली, 'शुक्र करो उसका कि उसने दस लाख रुपये और काफी सारा जेवर हमें दे दिया। यदि वह एक पैसा भी नहीं देती तब तुम क्या कर लेते उसका।' यह सुनकर जेठ का जवान होता लड़का तमतमा कर बोला, 'यदि वह हमें एक पैसा भी नहीं देती तो सुन लो ऐसे चुप बैठने वाले हम भी नहीं थे। यहीं गर्दन दबा कर जमीन में गाड़ देते।' नत्थो को इस बातचीत का भान भी नहीं था।

अगले दिन नत्थो चलने लगी तो जेठ का बेटा रवि बोला, "काकी, तुम्हारे पास काफी पैसा है। रास्ते में खतरा हो सकता है। चलो मैं तुम्हें मोटर साइकिल पर बिठा कर छोड़ आता हूँ।' नत्थो बोली, 'बेटा सिवाय तुम लोगों के और भला किसको पता हो सकता है कि इस बुढ़िया के पुराने थैले में क्या रखा है। मैं चली जाऊँगी।' पर रवि की जिद के आगे उसे हारना पड़ा। रास्ते में रवि सड़क छोड़ कर पगडण्डी पर उतर गया। नत्थो ने पूछा तो वह बोला, 'काकी, थोड़ी ही दूर तक कच्चा है, छोटा रास्ता है। जल्दी पहुँच जायेंगे।'

मोटर साइकिल कच्चे मार्ग पर चलने के कारण उछल रही थी। अचानक उसके पैर में कुछ चुभ गया। नत्थो ने सीट के साथ बन्धे थैले की तरफ देखा तो उसकी रूह काँप गई एक तीखा खंजर छिपा कर रखा गया जो झटके खाकर अपनी जगह से सरक कर बाहर दिखाई देने लगा था। नत्थो ने अपने को संभालकर। बोली, 'रे रवि! जरा मोटर साइकिल रोक तो बेटा। पता नहीं क्या हुआ। पेट में जोर का दर्द हो रहा है। देखूं यदि आस पास कहीं पानी दिखाई दे जाए। शौच जैसा जी हो रहा है।' रवि ने मोटर साइकिल रोक दी। नत्थो पोटली समेत खेतों में घुस गई और छिपने या भागने की जुगत लगाने लगी। भागना ज्यादा कठिन था उसे बाजरे की पूलियों की छ्योरी दिखाई दी। वह दो पूली हटा कर अन्दर घुस कर बैठ गई। पूलियों को उसने वहीं पर जमा दिया जहाँ से उठाया था।

काफी देर इंतजार करने के बाद जब नत्थो नहीं लौटी तो रवि ने जोर-जोर से आवाजें लगाई। कोई उत्तर नहीं मिला तो रवि को लगा कि उसकी योजना काकी ताड़ गई है। अब वह हाथ आने वाली नहीं है। वह जोर-जोर से बड़बड़ाने लगा, 'साली हरामजादी! हमारे बाप दादा की जमीन से मिली दौलत को लुटायेगी, चौपाल की मरम्मत करवायेगी, दानवीर कर्ण की बहन, अपने मायके वालों को देगी। साली कुत्तिया यह

जमीन क्या तेरे बाप ने तुझे दहेज में दी थी।'

नत्थो सब सुन रही थी। रवि का बड़बड़ाना जारी था। 'यह हरामजादी औरत, एक बार दिख जाये तो काम तमाम।' नत्थो थर-थर काँप रही थी। गर्मियों की दोपहर। खेतों में कोई भी नहीं था। काफी देर बाद उसे रवि की मोटर साइकिल जाने की आवाज सुनाई दी। काफी देर बाद नत्थो बाहर निकलने का हौसला जुटा पाई। दोपहर ढल चुकी थी। खेतों में आवागमन होने लगा था। नत्थो ने एक पूली हटा कर बाहर देखा। उसे दो महिलायें दिखाई दी जो सिर पर घास के गट्टर रखे जा रही थी। नत्थो बाहर आकर उनके पीछे-पीछे चल कर पक्की सड़क पर निकल आई। अब तक वह सँभल चुकी थी। उसके चेहरे के हाव-भाव को देखकर किसी को ऐसा नहीं लगता था कि एक भयंकर तूफान अभी-अभी उसके ऊपर से गुजर कर गया है। नत्थो ने रास्ता पूछा। मायके जाने वाली बस पकड़ी और अँधेरा होते नत्थो अपनी कोठरी में थी।

'आ गई नत्थो बी जी?' बड़ी भाभी ने आते ही पूछा। 'हाँ आ गई भाभी!' कह कर नत्थो चुप हो गई। रात को कोई बातचीत नहीं हुई।

अगले दिन सुबह चाय नाश्ते के बाद नत्थो अपने भाई-भाभी के सामने आकर खड़ी हो गई। नत्थो अब हालात को समझने की कोशिश करने लगी थी। नत्थो ने झुमकी छोटी भाभी को तथा कंगन बड़ी भाभी को दे दिये। बोली, 'मैं उस घर से अपना सारा सामान ले आई हूँ।'

'कहाँ है?" छोटी भाभी बोली, 'बीबी जी, जेवर तो आपके पास और भी हैं।'

नत्थो बोली, 'जिस परिवार ने मेरी अमानत सँभाल कर रखी। उस परिवार के प्रति भी तो मेरा कुछ फर्ज बनता है। दो जेवर जेठ के बच्चों को तथा दो देवर के बच्चों को दे आई हूँ।'

अब पूछताछ विभाग भाइयों के अधीन था।

'जमीन कितने की बिकी नत्थो?'

'इक्कीस लाख की।' नत्थो बोली।

'पैसा किसके पास है?'

'मेरे पास ही है।'

'क्या करोगी इतनी बड़ी रकम अपने पास रख कर। खतरा भी तो है।'

'हाँ भाई, खतरा तो है।' नत्थो के दिमाग में मोटर साइकिल के थैले का खंजर घूम रहा था।

नत्थो बात आगे बढ़ाते हुए बोली, 'पैसे पूरे नहीं हैं। ग्यारह लाख तो मैंने खर्च कर दिये हैं।'

'हैं? कहाँ खर्चे?' भाई की आवाज में आश्चर्य एवं आक्रोश दोनों का मिश्रण था।

'पाँच लाख देवर के परिवार को, पाँच जेठ के परिवार को और एक लाख गाँव की चौपाल व गली की मरम्मत के लिये दान कर दिये?'

'इनको भी कहीं खर्च कर देती बहना। यहाँ लाने का कष्ट क्यों उठाया?' भाई की आवाज नत्थो के कलेजे को चीर गई।

'भाई, देखो मैंने अपनी समझ से जो उचित लगा वही किया है। दोनों परिवार मेरे हैं। आप लोगों के साथ मेरा जीवन जुड़ा है। उस परिवार के साथ मेरे पति का नाम व मेरे ससुराल के रिश्ते जुड़े हैं। मेरे पास जो कुछ है यह दोनों परिवारों के लिये ही है। जमीन बिक जाने के बाद जो पैसा मिला इसी हिसाब से उनको दे दिया और जो बचा है वह बैंक में जमा करवा कर तुम्हारे नाम वसीयत बनवा देती हूँ। जब तक जीवित हूँ तब तक खाता मेरे नाम रहेगा, मेरे बाद तुम दोनों को जरूरत पड़ने पर इस पैसे का प्रयोग कर सकते हो।'

भतीजे के चाकू ने नत्थो को दुनियादारी सिखा दी थी। भाइयों के थोबड़े सूज गये थे। भाभियों का व्यवहार बदल गया था। नत्थो समझ नहीं पा रही थी कि उससे गलती कहाँ हुई है। वह बार-बार भाइयों से अनुरोध कर रही थी कि बैंक में खाता खुलवा दो। उन्होंने टालमटोल का रवैया अपनाया हुआ था। एक अनजाना सा भय नत्थो को घेरे हुए था। वह हवा में षड्यन्त्र सूंघने की कोशिश कर रही थी। एक रात वह अपनी कोठरी से बाहर निकली। उसे आवाजें सुनाई दीं जो भाई की बैठक से आ रही थी।

बड़ी भाभी व दोनों भाई तथा बड़े भाई का बेटा बैठे मन्त्रणा कर रहे थे।

भाभी की आवाज सुनाई दी, 'देखा अपनी बहन को, रांड ने रंडापा काटा हमारे सिर पर और जब पैसा हाथ में आया तो उसी परिवार के लिये मोह जाग गया, जिसको छोड़ कर हमारे दरवाजे आ लगी थी।'

छोटा बोला, 'इस बात को दूसरी तरह सोच कर देखा जाए तो नत्थो की बात गलत भी नहीं कही जा सकती। आखिर वह जमीन हमारी तो नहीं है। वह हमें आधा दे भी रही है।'

'हाँ दे रही है, गिन लेना जा कर नकद नोट। वह महारानी तो बैंक में

खाता खुलवाने पर अड़ी है।'

'तो क्या हो गया? खुलवा लेने दो खाता। जरूरत पड़ने पर जीजी हमें मना तो नहीं करेगी। आखिर कहाँ लेकर जाना है उनको।' छोटे ने हल्का-सा प्रतिवाद किया।

'तो क्या हम उसके सामने भिखारी बन कर भीख मांगेंगे?' भाभी आँखें तरेर कर बोली। नत्थो का कलेजा थर्रा गया। वह दम साध कर सुनती रही। 'तो अब हम क्या करें?' आवाज बड़े भाई की थी।

'अरे रात को सारा पैसा निकाल लेते हैं। घर का सामान इधर-उधर बिखेर कर सवेरे छाती पीटना कि हमारे घर चोरी हो गई। नत्थो जीजी के पैसों के साथ-साथ हमारा जेवर भी चोर निकाल कर ले गए।' मशविरा भाभी का था।

'हे भगवान! जिस घर को अपना समझा, जवानी के दिन कर्मयोगिनी बन कर निकाल दिये। भतीजे-भतीजियों का पाखाना धोया। भाभियों की बांदी बन कर जीवन निकाल दिया और आज ये लोग... । मैं तो सोचती थी कि दोनों घर मेरे हैं। मगर आज पता चला मेरा कोई घर नहीं है।'

नत्थो फैसला कर चुकी थी। गाँव में लड़कियों का स्कूल पाँचवीं तक का था। जगह तो थी मगर कमरों की कमी के कारण स्कूल दसवीं तक का नहीं हो पा रहा था। नत्थो सुबह उठते ही पैसों की पोटली लेकर गाँव के सरपंच के घर गई। बोली, 'देखो बेटा, यह पैसा तुम्हारे स्वर्गीय फूफा जी की जमीन के मुआवजे में मिला है। गाँव की बेटियाँ मेरी बेटियाँ हैं। तुम इस पैसे से लड़कियों के स्कूल में कमरे बना कर अपने फूफाजी के नाम का पत्थर लगवा देना। तुम्हारा भला होगा बेटा और हाँ एक कोठरी भी बनवा देना कमरों के साथ। शायद मुझे जरूरत पड़ जाए।'

युवा सरपंच ने पूरी ईमानदारी व नेकनीयती से काम किया। कुछ पैसा अनुदान भी मिला। छह लाख रुपये नत्थों के खर्च हुए। बीच वाले कमरे पर पत्थर लगवाया, जिस पर लिखा था, 'कन्या विद्यालय की यह इमारत श्रीमती नत्थो देवी ने अपने पति स्वर्गीय श्री अतरसिंह की स्मृति में बनवाई।'

नत्थो के पास चार लाख रुपये अब भी बचे हुए थे। भाइयों की मंशा को भाँप कर उसने दोनों भाईयों को दो-दो लाख रुपये नकद दे दिये। चार लाख नकद दे दिये। जेवर दे दिया। जीवन भर काम किया मगर इतना करने के बाद भी घर में नत्थो का सम्मान नहीं था। एक दिन नत्थो ने अपने कपड़े समेटे और स्कूल में बनी कोठरी में आकर डेरा जमा लिया। भाइयों ने एतराज किया। मगर नत्थो ने कहा, 'मैं इसके लिए किसी को दोषी नहीं ठहराऊँगी। तुम्हारी बदनामी भी नहीं करूँगी। मैं तो यहाँ अपनी मर्जी से आई हूँ। किसी दुख या तकलीफ के कारण नहीं।'

नत्थो ने किसी के सामने अपना दिल नहीं खोला। सभी अध्यापिकाएँ नत्थो का बेहद सम्मान करतीं। लड़कियाँ भी नत्थो बुआ कहकर फूली नहीं समाती। एक दिन नत्थो संसार का सफर पूरा कर गुजर गई। नत्थो की इच्छा के अनुसार उसका अन्तिम संस्कार स्कूल के ही एक कोने में किया गया। अब बचे नत्थो की देह से उतरने वाले गहने। सवाल था उनको किसे सौंपा जाए। तभी मुख्याध्यापिका बोली, 'इनको बेचकर नत्थो देवी की एक प्रतिमा स्कूल के प्रवेश द्वार पर लगा दी जाए।'

बात सबको ठीक लगी। नत्थो की भाभी उसके मरने की खबर सुनकर बोली, 'अच्छा, रांड मर गई। न जाने कब तक छाती पर मूंग दलती।'

एक दिन नत्थो के भाई ने देखा स्कूल के दरवाजे के निकट एक चबूतरा बना है।

उस पर नत्थो की संगमरमर की प्रतिमा स्थापित कर दी गई है। उसके ऊपर गोल छतरी लगा दी गई है। छात्राएँ प्रतिमा को फूल भेंट कर रही हैं। वह तमतमाया हुआ अपने घर जा कर बोला, 'क्या कह रही हो तुम? रांड मर गई। अरे नत्थो मरी नहीं। जाकर तो देखो वह तो स्कूल के दरवाजे के पास चबूतरे पर बैठी मुस्कुरा रही है।'❑

चौथी सदी ईसापूर्व धम्मदिन्ना महाथेरी कहती है

'छन्दजाता अवसायी, मनसा च फुटा सिया।
कामेसु अप्पटिबद्धचित्ता, उद्धंसोता ति वुच्चती'ति

अनुवादः

जिसके अंदर परम लक्ष्य के लिए इच्छा उत्पन्न हुई है और इस इच्छा ने जिसके पूरे चित्त को भर दिया है; जिसका चित्त सभी भोगों में बंधा नहीं, वही ऊर्ध्व स्रोता कहलाती है।

थेरीगाथा, गौतम बुक सेंटर, 2010, पृ. 10

गुलमोहर

डॉ. कविता विकास
मो. 9431320288
9934519534

मिट्टी का रिश्ता सभी रिश्तों में सबसे गहरा होता है। चार दशक पहले छोड़े इस कस्बे में सब कुछ बदल गया था, फिर भी मुझे अपनी गली, अपना घर, विद्यालय और खेल के मैदान सब यूँ याद आ रहे थे मानो कल की बात हो। गुलमोहर की छतनार शाखों की काली परछाइयाँ में खड़े-खड़े लगा कि कुछ तो है जो यह पेड़ मुझे खींच रहा है। जब भी आगे बढ़ती हूँ, लगता है थोड़ी देर और ठहर जाऊँ। आखिरकार उसके नीचे बने चबूतरे में बैठते ही हरी-हरी पत्तियों में छुपा टूटा-सा एक हरा बोर्ड दिख गया, 'वृक्षारोपण-श्री मानवेंद्र' पुरानी स्मृतियों की धुंधली तस्वीर दिखने लगी, मेरे जन्म पर पिताजी ने यह पौधा लगाया था। शाम की ललछइयों की कालिमा में तब्दील हो जाना मुझे अच्छा लग रहा था मानो कोई पहचान न ले, लेकिन कोई पहचानेगा भी कैसे, पैंतीस साल पहले वाले लोग अब यहाँ बचे ही नहीं थे।

रेलवे में कार्यरत पिता जी की मैं तीसरी बेटी थी। बेटे की चाह में पहली बेटी से तीसरी तक में केवल रुदन-क्रंदन ही लोग सुनते रहे थे। पिता जी ने तो बिस्तर पकड़ लिया था। जैसे-जैसे मैं बड़ी होती गयी, शारीरिक विकलांगता भी दिखने लगी। मेरा दायाँ अंग बाएँ से पतला था। एक तरह से पोलियो-ग्रस्त। साथ ही, दाहिने हाथ की अंगुलियाँ भी टेढ़ी-मेढ़ी। बाकी दोनों बहनों का गोरा रंग और पढ़ाई में अव्वल होना उनके बेटी होने पर भी एक राहत थी, लेकिन मुझसे तो पिताजी कभी खुश नहीं रहे। माँ समझाती भी थीं कि वह भी जिगर का टुकड़ा है, भेदभाव नहीं होनी चाहिए, पर माँ की हैसियत भी क्या थी! जिस माँ को देहरी से बाँधकर केवल पति की जरूरतों को पूरा करना जिंदगी की सीख बना दी गयी हो, उसके लिए सुझाव देना आकाश से तारे तोड़ने के समान था। फिर भी वह माँ के जिगर का टुकड़ा थी। बहनों का दाखिला निजी स्कूल में करवाया गया था और उसका सरकारी में। पाँचवीं कक्षा में पिताजी को राजकीय आवासीय बालिका विद्यालय का पता चला, जहाँ सरकारी दर पर करीब-करीब नि:शुल्क शिक्षा ही थी। भावीनगर छात्रावास उसे छोड़ने माँ भी गयीं। बिछोह का दुख क्या होता है, तब समझ में आया था। उससे बड़ी

असुरक्षा की भावना ने माँ-बेटी को ऐसा जकड़ा कि घंटो दोनों गले मिलकर रोते रहे पर पिता जी का दिल नहीं पसीजा। दस साल की कच्ची उम्र में मुझे छात्रावास छोड़ना एक तरह से मेरी जिम्मेदारियों से मुक्त होना ही था। अपने बचपन को मैं आज भी नहीं भुला पायी थी, जाने कब आँखें बरस पड़ीं! माँ ने सीने से सटा कर बुदबुदा कर कहा था, 'जा बेटा, अपने को इतना मजबूत कर ले कि किसी के सहारे की जरूरत न पड़े। अपनी माँ को निर्मम न समझना। समय के साथ सब समझ जाएगी तू।' तब से आज तक समय की हर चोट के निशान मेरे दिलो दिमाग पर अंकित हैं। भारी कदमों से मैंने गेस्ट हाउस का रुख किया। मनोहरपुर बहुत बदल गया था, फॉरेस्ट विभाग का गेस्ट हाउस उसी मैदान में बना था जहाँ शाम को बच्चे खेला करते थे, लेकिन कदम थे जो अपनी मनमर्जी किए जा रहे थे। गेस्ट हाउस न जाकर मैं पिछवाड़े की उस विशाल चट्टान तक आ गयी जहाँ अक्सर अपनी सहेलियों के साथ लुका-छिपी खेला करती थी। बरसात में छप-छप करते इसी चट्टान पर सब दोस्त मिलकर खेलते, घोघो रानी, कितना पानी या फिर तोहर पनिया में छुपुक-छैयाँ। याद करते-करते ही मैं ठहठहा कर हँस पड़ी। याद करने को तो बहुत कुछ था लेकिन जिन्हें भूलने में मैंने उम्र गुजार दी, उनका विस्मृत होना ही ठीक था। विद्यालय की प्राचार्या कमला रानी ने पहले दिन ही समझ लिया था कि यह लड़की अपने लड़की होने का दंश भोग रही है। उसे उस पर बहुत प्यार आ रहा था। उसने उसी दिन से उसे अपनी बेटी बना लिया। कुछ महीने उसके माँ-बाप छात्रावास उससे मिलने लगातार आते, बहने भी आतीं लेकिन एक दिन माँ ने कह दिया, मन बड़ा भारी हो जाता है, कोमल से अलग होते समय। अब मैं नहीं आऊँगी। पिताजी को तो जैसे मुँह-माँगा इनाम मिल गया। छुट्टियों में छात्रावास खाली कराया जाता तो मुझमें घर जाने का उत्साह भर जाता लेकिन दो-तीन बार घर जाकर देखा कि मेरे आने से पापा को कोई खुशी नहीं होती बल्कि मेरे वापस जाने के दिन गिनते रहते। जब यह बात प्राचार्या कमला दी को पता चली तो उन्होंने प्यार की झप्पी लगाते हुए मुझे आदेश दे दिया, 'अब तुम मेरे साथ ही अपनी छुट्टियाँ बिताओगी। जहाँ तुम्हारी पूछ नहीं होती, वहाँ मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी। जब तुम्हारा मन करे अपने घर जाने का, कहना, मैं भेज दूँगी।' कमला रानी का बचपन भी ऐसा ही था। हालात की नजदीकियों ने उन्हें एक-दूसरे के करीब ला दिया। कमला दी मेरे बिना खाना नहीं खातीं थीं। उन्हें शाम के समय हॉकी के मैदान में मुझमें एक विशेष प्रतिभा का पता चला, मैं पक्षियों की बोली निकाल लेती थी और इशारे से उन्हें अपने पास बुला लेती। और तो और, गीली मिट्टी से छोटी-छोटी मूर्तियों का निर्माण बड़ी आसानी से कर लेती। कदाचित मेरी टेढ़ी-मेढ़ी अंगुलियाँ इस कार्य के लिए एक वरदान थीं। कमला दी को मेरे जीवन का उद्देश्य मिल गया था। पढ़ाई में औसत होते हुए भी कला के क्षेत्र में स्कूल का नाम खूब रोशन किया। जब कमला दी का तबादला बिलासपुर हुआ तो मैं भी उनके साथ वहाँ आ गयी। विद्यालय परिसर में एक पंछी बाड़े का निर्माण कराने के लिए मैंने बहुत मेहनत की। जब किसी घायल पंछी की मरहम-पट्टी करती और पक्षी को नवजीवन मिलता, तो लगता मानो अपने ही जख्मों पर मरहम-पट्टी कर ली हो। धीरे-धीरे मेरी बनाई मूर्तियों की मांग होने लगी। विद्यालय के अंदर-बाहर मुख्य स्थानों पर मेरी बनाई कई मूर्तियाँ सजी हुई थीं। निरीक्षक साहब जब भी आते इन मूर्तियों की भूरि-भूरि प्रशंसा करते। मुझे इसके लिए अवॉर्ड भी मिला। मैंने फाइन आर्ट्स में ही खुद को आगे बढ़ाया और बाद में फाइन आर्ट कॉलेज सुल्तानपुर की प्राचार्या बनी। इस बीच कमला दी की तबियत खराब रहने लगी थी। उन्होंने रिटायरमेंट के पहले ही नौकरी छोड़ने का मन बना लिया,तो फिर मैंने उन्हें अपने पास सुल्तानपुर बुला लिया। वह ज्यादा दिन जीवित नहीं रहीं। दीदी की सेवा-सुश्रुषा से मुक्त होने के बाद मूर्ति कला का प्रशिक्षण देने मैं दूर-दूर जाती। इस व्यस्तता में मुझे अपने अतीत पर आँसू बहाने का भी वक्त नहीं मिला। एक दिन अचानक एक चिट्ठी मिली, सो यहां मनोहरपुर आना पड़ा। चिट्ठी राजेश की थी। प्रिय दीदी, तुम्हें पता नहीं होगा, तुम्हारे हॉस्टल जाने के तीन साल बाद मेरा जन्म हुआ। रंग-रूप बिलकुल तुम-सा। जब मोहल्ले वाले कहते कि मैं तो कोमल का जेरोक्स कापी हूँ तब तुम्हारे बारे में माँ ने बताया। अगर मैं कहूँ कि तुम्हें याद करके माँ-पापा बहुत उदास हो जाते थे, तो शायद तुम्हें यकीन नहीं होगा। लेकिन यह सच है। पापा तो तुम्हें त्यागने के अपराध बोझ को झेल नहीं पाए और तनाव में रहते-रहते गुजर गए। माँ ग्लानि से भरी हुई थीं। कमला दी के तबादले के बाद यह पता

पृष्ठ सं. 37 पर शेष भाग

अभिशप्त जीवन

पुष्पा विवेक
मो. 9278944156

यह कहानी आज से पचास-पचपन साल पहले की घटना पर आधारित है जब उत्पीड़ित समाज में खासतौर से महिलाओं के लिए न तो शिक्षा को जरूरी समझा जाता था और न ही शिक्षा के प्रति अछूतों का कोई रुझान था। देश आजाद हो गया था लेकिन महिलाओं को इतनी आजादी नहीं थी कि घर से बाहर क्या घर की देहरी पर भी बैठ सकें। शादीशुदा महिलाएं घूँघट में रहतीं थी उन्हें ससुराल में अपने बड़ों के सामने बोलने की इजाजत नहीं थी। रोजगार के नाम पर पैतृक काम ही विरासत में मिलते थे या अंग्रेजों की फौज में लड़ने के लिए भेज दिया जाता था। कारखाने और फैक्ट्रियां भी आज की तरह बशुमार नहीं थीं। घरों में ही छोटे-छोटे लघु उद्योगों से जुड़कर अपनी आय अर्जित करते थे। इसी कड़ी में चुन्नी लाल का परिवार भी आता है। वे अनुसूचित जाति से संबंध रखते थे। परिवार में माता-पिता के अलावा बड़ा भाई कंचन, बीच वाला भाई मंगल और चुन्नी लाल परिवार में सबसे छोटा था। बड़े भाई की पढ़ने में रुचि थी लेकिन चुन्नी की पढ़ने में कोई रुचि नहीं थी, पिता राज मिस्त्री का काम करते थे लेकिन अस्थमा की बीमारी होने के कारण ज्यादातर घर में ही रहते इसीलिए रामबती ने उन्हें पान-बीड़ी की दुकान खोल कर दे दी। बड़ा भाई कंचन परिवार की मजबूरी समझता था और पढ़ने में भी होशियार था इसलिए उन्होंने एक मिशनरी स्कूल में दाखिला ले लिया। पढ़ाई के साथ-साथ वे घर में परिवार की मदद भी करते, कभी अपने पिता के पास पान-बीड़ी की दुकान पर जा बैठते कभी माँ मंडी से सब्जी लाकर बेचती, कभी गेंहू का चालीस पचास किलो का पोटला सिर पर रखकर अंग्रेजी सेना से बचते बचाते लाकर बस्ती में बेचती। माँ रामबती के साथ कंचन उनकी मदद करते, दूसरे नंबर का मंगल पागल, दोनों हाथों से अपाहिज और गूंगा था, जिसकी खाना खिलाने से लेकर नहलाने-धुलाने तक की सारी जिम्मेदारी रामबती की थी। इसी माहौल में चुन्नी लाल की परवरिश हुई। सबसे छोटा, लाड़ला, पिता बीमार, माँ का घर के कामों के साथ-साथ आर्थिक उपार्जन के लिए व्यस्त रहने के कारण चुन्नी लाल बस्ती के दूसरे बच्चों के साथ कंचे खेलना, गुल्ली डंडा, कसरत जैसे शौक उसकी दिनचर्या का हिस्सा थे और कंचन अपनी और परिवार की

जिम्मेदारियों को बखूबी समझते थे। कभी-कभी तो खाने के लिए रोटी न होने पर चने खाकर ही गुजारा करना पड़ता था। कभी पढ़ाई के साथ-साथ हाथ की कमानी-बरमा से लकड़ी की फंटी में छेद कर ब्रुश बनाने के लिए तैयार करते। इन्हीं परिस्थितियों से जूझते हुए कंचन ने हाई स्कूल की परीक्षा पास की।

हाई स्कूल करते ही माँ को बेटे की शादी की चिंता सताने लगी। कंचन ने मना भी किया, 'अम्मा अभी मोए पढ़ नोएं, जब मैं काम पे जाबे लगूंगो तभी शादी करूंगों। तब तक घर में कछु सामान सट्टो भी जुड़ जायगो। रामबती मईया मैं काम पे जातुं पीछे तै घर समारवे वारो ता कोई होए। तैरो ब्याओ है जायेगो तो मोउए कछु सहारो है जायेगो। बहु आइके घर संभाल लैगी तो मौऊए कछु राहत मिल जायेगी। अपनी जिम्मेदारिन ते मैं बेफिकर है के बाहर जा सकत हूं।' लेकिन कंचन अभी और पढ़ना चाहते थे और जब तक आमदनी का कोई जरिया नहीं बनता, वह शादी करने के लिए तैयार नहीं था, लेकिन रामबती भी कहां मानने वाली थी। वह बार-बार कंचन को टोकती रहती, 'भईया तेरे बाप बीमार रहतएं उनके सामने तैरो ब्या है जायेगो तो उनकी आत्मा कूं भी चैन मिल जायेगो, मैं काम के चक्कर में ज्यादातर घर तै भार रहतं, बऊ आ जायेगी तो मोउए कछु सहारो हे जायेगो।' रामबती ने अपना तीर छोड़ा, कंचन ने माँ की मजबूरी समझी और इस पर विचार किया तो शादी के लिए हाँ कर दी और कहा मैं तभी करूंगों जब शादी के बाद मोये पढने दियो जायेगो और इस प्रकार कंचन की शादी हो गई। शादी के बाद कंचन ने इंजीनियरिंग डिप्लोमा में दाखिला ले आगे की पढ़ाई की। तीन बच्चे होने तक कंचन की कहीं नौकरी नहीं लगी। परिवार बढ़ने के साथ-साथ खर्चे भी बढ़े। हालात और भी खराब हो गये। बीमार पिता, बूढ़ी माँ, एक अपाहिज भाई, दूसरा बेकार, आमदनी का कोई जरिया नहीं था। सारी जिम्मेदारी रामबती की थी। कभी-कभी कंचन को नक्शे बनाने का काम मिल जाता तो कुछ पैसे मिल जाते तो कभी नहीं मिलता जैसे-तैसे जिंदगी की गाड़ी के दिन विकट गरीबी में दिन गुजर रहे थे, लेकिन कंचन ने हार नहीं मानी और नौकरी के लिए फार्म भरता रहा।

तीन बच्चों के बाद कंचन को सरकारी नौकरी मिली। घर में उम्मीदों के बादल मंड़राने लगे। सभी लोग बड़े खुश थे रामबती की खुशी का ठिकाना न था, उधार लेकर पूरी बस्ती में लड्डू बांट दिये, 'भईया की नौकरी लग गईये। अब तो हमारै दिन फिर जांगें।' कंचन को नौकरी के लिए दूसरे शहर जाना था इससे माँ का मन उदास हो गया। पहली बार बेटा घर से दूर जायेगा माँ चिंतित हो गई, मन में विचार उठने लगे, 'केसी जगह होयगी, केसे लोग हौंगें माँपे, रोटी टैम पे मिलेगी के नाए, वहाँ रोटी को बना के दैगो।' रामबती बेटे से बिछड़ने की सोचकर ही रोने लगी, तब कंचन ने समझाया, 'अम्मा मैं नौकरी पे जा रोंउ, कंऊ लाम पे ना जारो मैं, जो तू रोरई, ए नौकरी पे जा रोऊ।' कंचन दूसरे शहर जाकर नौकरी करने लगे लेकिन तनख्वाह इतनी नहीं थी कि अकेले कंचन के दम पे घर चलने लगे, सभी की जरूरतें पूरी की जा सकें। कंचन की नौकरी लगते ही रामबती ने अब चुन्नी की ब्याह की टेर लगा दी और उसके लिए लड़की देखने लगी, सबने मना भी किया कि अभी चुन्नी कुछ कमाता-धमाता तो है नहीं, शादी के बाद अपनी बहू को क्या खिलाएगा।' रामबती जल्दी से जल्दी श्बाादी करके अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होना चाहती थी। सो रामबती की खोज विद्या पर जाकर खत्म हुई।

विद्या अपने परिवार में पाँच बहनों में दूसरे नंबर पर थी। पिता की मृत्यु बचपन में ही हो इसलिए पूरे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी का बोझ माँ केलासो पर था। यहाँ भी गरीबी ने डेरा डाल रखा था। विद्या पढ़ी-लिखी भी नहीं थी, लेकिन सुंदर, गोरी और लंबी खूब थी। माँ कैलासो लकड़ी कोयले की टाल लगाती थी। उसकी आमदनी से परिवार का गुजारा भी मुश्किल से होता था। विद्या की बड़ी बहन अँगूरी भी अपने पति रामप्रसाद के साथ वहीं माँ के घर आकर रहने लगी थी। इस प्रकार खर्चे भी ज्यादा बढ़ गये थे। बड़ी होतीं बेटियों को देख केलासो जल्दी से जल्दी उनकी शादी कर अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त होना चाहती थी। उसने विद्या के लिए लड़के की तलाश शुरू कर दी। वैसे भी गांव-देहात में पिता-भाई का न होना भी बेटियों के लिए अभिशाप माना जाता है, जिसके कारण विद्या की शादी में विलम्ब हो रहा था। गरीबी, एकली महिला और पाँच बेटियों का भविष्य माँ केलासो के लिए चिंता का सबब बना हुआ था वह जल्दी से जल्दी विद्या के हाथ पीले कर अपने घर विदा कर देना चाहती थी ताकि दूसरी बेटियों के बारे में भी सोच सके।

अट्ठारह-उन्नीस साल की विद्या का यौवन पूरे निखार पर था। केलासों।

वर की तलाश में चिंतित थी क्योंकि दलित समाज में अशिक्षा, अज्ञानता, बेरोजगारी, अस्पृश्यता, युवा वर्ग की बेबसी बन उन्हें शराब व अन्य नशे की ओर धकेल देती है जिसका खामियाजा ज्यादातर परिवार में पत्नी और बच्चों को भुगतना पड़ता है। विद्या के साथ भी ऐसा ही हुआ, चुन्नी बुरी संगत और परिवार में किसी के ध्यान न देने के कारण शराब, जुआ व अन्य तरह की बुरी आदतों का शिकार हो गया। वैसे भी पहले परिवार देखकर ही शादी कर दिया करते थे। विद्या की माँ केलासो ने भी केवल चुन्नी लाल का परिवार देखा और देखकर ही बेटी की शादी कर दी। शादी के बाद कैसे रहती है ये उसका नसीब। केलासो ने दस-पंद्रह लोगों की बारात बुला कर विद्या की शादी चुन्नी लाल से कर अपने घर से विदा कर दिया। साथ ही माँ ने बेटी को नसीहत भी दे दी, 'लाली अब तो तेरो बोई घरए, यां तो अब तू मेहमानन की तरह आयेगी और फिर सासरे चली जायेगी, सासरे में काई कोई जवाब मत दईओ, सबको आदर भाव करीयो, मायके की नाक मत कटवईयो।' और माँ की नसीहतों की गठरी बांध विद्या अपने सासरे आ गई, जहाँ उसकी मुलाकात सास रामबती, ससुर कुंदन लाल, जेठ कंचन, जेठानी संतोष, बड़ी बेटी पारो और उसके छोटे बहन-भाई से हुई। पारो उस समय केवल 4-5 साल की थी।

रंगीन, सुनहरे सपनों के साथ विद्या ने चुन्नी लाल की जीवन संगिनी के रूप में अपने उज्ज्वल भविष्य की कामना के साथ अपने जीवन की शुरुआत की। परिवार के साथ घर के खर्च भी बढ़े। चुन्नी बेरोजगार था। बूढ़े माँ-बाप या कंचन चुन्नी के परिवार को कब तक चला पाते। खर्च को लेकर घर में झगड़े होने लगे लेकिन विद्या कभी बीच में नहीं बोली। जुबान होते हुए भी जैसे गूंगी हो कभी उसकी आवाज नहीं सुनी। पति को बोलती होगी तो अंदर कमरे में, सबके सामने कभी जवाब नहीं दिया। माँ रामबती ने कुंदन लाल के कहने पर उसे हरबिलास के पास लेकर गई, उसने प्रार्थना की, 'भईया हमारे चुन्नी कूं अपने पास बैठा के, जाए भी जूता बनानो सिखा देओ। जाते जे अपने बच्चन ने पाल सके।' हरबिलास जूते बनाने का काम करता था और चुन्नी हरबिलास के पास जूते बनाने का काम सीखने लगा लेकिन वहाँ से उसे कोई खर्चा पानी नहीं मिलता था। कंचन जब छुट्टियों में घर आया तो उसने चुन्नी से अपनी दुकान खोलकर देने की बात की। चुन्नी अपनी दुकान खोलने के लिए राजी हो गया। कंचन ने दो अपर सीने करने के लिए लेकर दे दिये लेकिन चुन्नी काम शुरू करने से पहले अपने उस्ताद हरबिलास को सम्मान देने के लिए उस्तादी शागिर्दी करना चाहता था। सबने मना किया कि पहले दुकान चल जाए, 'तो उस्तादी कर लेना। चुन्नी अड़ गया, 'नहीं मैं तो पेले अपने उस्ताद की काम सीखने की खुशी में उस्तादी-सागिर्दी करूंगो, फिर काम शुरू करूंगों।' उस्तादी-सागिर्दी करने के लिए साहूकार से ब्याज पर उधार लिया। कुछ विद्या के गहने बेचे। विद्या ने भी कोई विरोध नहीं किया और मूक बनी रही। इसी आशा में शायद पति का काम चल जायेगा तो गहने तो बाद में भी बन जायेंगें। सबके विरोध के बावजूद चुन्नी ने उस्तादी शागिर्दी में पूरी बस्ती को न्योता दिया। पंडित जी को बुलाकर दुकान में यज्ञ-हवन करवाया। उस्ताद के लिए चार आने भर की अंगूठी बनवाई, पांचों कपड़े, हरबिलास की पत्नी के लिए साड़ी, और भोज में पंचमेल मिठाई सब लोग बहुत खुश हुए, सबने बहुत तारीफ की, 'भईया ऐसी उस्तादी सार्गिदी कऊं नई देखी होगी। चुन्नी ने तो कमाल कर दो। आखिर बाको भईया सरकारी नौकरी में जोए।' उस्ताद और बस्ती वालों ने चुन्नी को पानी पर रख दिया। इससे चुन्नी लाल झूठी शान के चक्कर में साहूकार अनोखे लाल के कर्जदार हो गए।

काम शुरू किया दुकान पर बैठे लेकिन काम में मन कैसे लगे। दो-चार दिन में एकाध जोड़ी बनती उसे बेच कर बादशाह बन जाते और फिर दोस्तों संग दारू और मीट की दावत चलती, दुकान का माल खत्म होने लगा। अब और माल खरीदने के लिए पैसे कहां से आएं? दोस्तों की संगत छूटती नहीं। दुकान ठप्प हो गई। नशे ने चुन्नी लाल को जकड़ लिया। डर के मारे घर आना बंद कर दिया। डर लगता, सोचते, 'अगर भाई ने पूछ लिया तो क्या जवाब दूंगा।' आते तो देर रात, जब सब सो जाते। अपनी जिम्मेदारियों से मुँह छुपाने लगे। विद्या कभी बच्चों का वास्ता देती, कभी घर के खर्च के लिए पैसे माँगती, 'बच्चा भूकेंएं, आटो खत्म है गयो।' नशे में धुत्त, चुन्नी लड़ाई करता-मारता लेकिन विद्या की आवाज कभी कमरे से बाहर सुनाई नहीं पड़ी। बस रोती रहती, बाहर से रामबती चिल्लाती, 'नाशपीटे एक तो मूत पीके आयोए, ऊपर ते बा गऊए मार रयोए, तोए सरम तो आतनाएं, बच्चा के दिना ते भूंकेंएं, इनैं को पा लेगो।' लेकिन विद्या

की आवाज कभी नहीं सुनी जैसे उसके मुँह में जुबान ही न हो। हाँ उसकी सूजी हुई और लाल-लाल आंखे जरूर अगली सुबह चुगली करती-सी दिखती कि उसके पति ने रात भर उसके साथ कितना जुल्म किया है। कभी-कभी उसके बुदबुदाते होंठ उसके दुखों को बयां कर जाते। इन्हीं परिस्थितियों में रहते-रहते विद्या पांच बच्चों की माँ बन गई थी। घर में अब खाने के लाले पड़े थे। घर के काम से फुर्सत पाकर विद्या घर में ही लोहे के तार के ब्रुश बनाने का काम करने लगी, जिसमें उसे साइज के हिसाब से चार आने, आठ आने, बारह आने प्रत्येक एक दर्जन के हिसाब से मिलते। पूरी बस्ती यही काम करती, तो विद्या भी यही काम करने लगी। यह काम घर में बैठे-बैठे ही हो जाता था इसके लिए कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता। कई बार तार खींचते हाथ की उंगलियाँ कट जातीं, तार की छीजन पैरों में चुभने पर जख्म तक बन जाते। बारिश में घर की छत से जगह-जगह पानी टपकता, जिससे ओढ़ने-बिछाने के सभी कपड़े गीले हो जाते। टपकते पानी के नीचे कहीं बाल्टी लगाते, कहीं भगोना तो कहीं लोटा तो कहीं पीपा जिनमें भर-भर कर पानी बाहर उलीचते। ऐसे ही हालातों में विद्या और चुन्नी की गृहस्थी की गाड़ी चल रही थी लेकिन उस छोटी-सी आमदनी में विद्या अपने बच्चों को पेट भर खाना भी नहीं खिला पाती थी। कभी-कभी तो विद्या पारो के हाथ पर चार आने रख कर कहती, 'लाली बाजार ते चार आना की सूजी ला दै आज रोटी बनावे कूं आटो नाए खत्म है गयो ए' और चार आने की सूजी नमक के पानी में घोल कर बच्चों को पिलाकर सुला देती। कभी खाली नमक की रोटी भी मिल जाती तो कहती, 'आज तो नौन रोटी मिल गई।' उन्हें लगता जैसे दावत गई। चुन्नी लाल इन सबसे बेखबर रहता। घर में क्या हो रहा है। किस चीज की जरूरत है। कोई मतलब नहीं था। खर्चे के लिए पैसे माँगने पर मार-पिटाई और क्लेश रोज की दिनचर्या का हिस्सा बन गया था। नशे में उसे खुद के खाने का भी होश नहीं रहता था। पूरी-पूरी रात दारू के नशे में सड़कों पर घूमना, शोर मचाना, गाली बकते हुए चलना, पीछे-पीछे बूढ़ी माँ रामबती बेटे को घर लाने के लिए धक्के खाती घूमती, 'बेटा घर चल! रात जादा है गई। बऊ घर में तेरी बाट देख रईए।' कभी किसी से झगड़ाकर थाने में बैठा होने की खबर पर, भागी थाने जाती और पुलिस के सामने हाथ जोड़ती, गिड़गिड़ाती, 'बाऊ जी जाए छोड़ दैओ, अब नयी करैगो। साब मैं जाए समझा दऊंगीं। साब जाके छोटे-छोटे बच्चाएं। साब गरीब आदमीएं।' और पुलिसवाले माँ को हिदायत देकर उसे छोड़ देते।

गरीबी-तंगी और पति की अनदेखी से बदहाल जिंदगी से विद्या के जीवन में घुन लगा दिया। विद्या बीमार रहने लगी, बच्चे भी कुपोषण के शिकार हो गये। सूखा शरीर, बड़ा-सा पेट, सारा दिन सुस्ती में पड़े रहते। इन हालातों में किसी भी बच्चे ने शिक्षा नहीं पाई हालांकि पारो ने जो उस समय स्वयं दस बारह साल की होगी, उन्हें सरकारी स्कूल में ले जाकर दाखिला करवाया। उन्हें घर में भी पढ़ाने के लिए लेकर बैठती, उनकी देखभाल करती, तीज-त्योहार पर उनके स्वयं कपड़े सिलकर पहनाती, क्योंकि उसके मम्मी-पापा केवल होली दीवाली पर ही घर आते थे, तो वह अपने पाँच बहन-भाईयों की भी देखभाल की जिम्मेदारी भी पारो की ही थी, इसलिए अपनी पढ़ाई के साथ-साथ पारो घर के कामों में दादी की मदद भी करती थी।

माँ-बाप की अज्ञानता, शिक्षा के प्रति असंवेदनशीलता और अभाव से भरी जिंदगी, पहले पेट भरने के साधन तलाशती है और यही विद्या के साथ भी हुआ। बच्चों की पढ़ाई में कोई रुचि नहीं बनी। विद्या की बीमारी ने धीरे-धीरे टी.बी. का रूप ले लिया। न दवा, न इलाज और न समय पर भरपेट खाना। विद्या तिल-तिलकर मौत की ओर बढ़ रही थी। कंचन जब छुट्टियों में घर आया तो उसने बच्चों की हालत देखी और चुन्नी के लिए एक बार फिर काम पर लगाने का प्रयास किया। उसे सरकारी दूध के बूथ पर नौकरी लगाने के लिए कहा, चुन्नी से उसके लिए साफ मना कर दिया, 'हैं! मैं, जै काम करूंगो। मोए ना करनो जै काम।' कंचन ने उससे ऑटो रिक्शा चलाने के लिए कहा और कंचन ने कुछ अपनी जमा पूंजी से कुछ उधार लेकर किश्तों पर चुन्नी को ऑटो रिक्शा लेकर दे दिया, ताकि चुन्नी अपने बच्चों का भरण-पोषण कर सके। चुन्नी को नशे की इतनी लत्त लग चुकी थी कि वह बिना नशे के रह ही नहीं सकता था। शराब की लत जिसको लग जाती है उसे बर्बाद करके ही छोड़ती है। ऐसा ही चुन्नी लाल के साथ भी हुआ। चुन्नी जब भी ऑटो लेकर निकलता, तभी या तो कोई एक्सीडेंट हो जाता या पुलिस चालान करके आता। चुन्नी लाल कभी उसकी एक भी किश्त न चुका पाया और कहने लगा, 'मोए ना लोयौ फलो नाए मेरे लिए तो जै पनोती बन गयोए, रोज रोज गाड़ी कऊं ना कऊं लग जातए,

मेरे सबरे हात पांम उटूट गए।' कंचन भी रोज-रोज के एक्सीडेंट, पुलिस चालान, और गाड़ी जप्ती से परेशान हो गया था। गाड़ी कंचन के नाम थी, इसलिए एक साल के अंदर-अंदर गाड़ी को बेचना पड़ा और चुन्नी एक बार फिर बेरोजगार हो गया। अब वह बाबाओं की टोली में जाने लगा और वहाँ अन्य तरह के नशे सुलफा, गांजा, चरस, जैसे नशे भी करने लगा। विद्या बच्चों की भूख से विकल हो जाती और अपनी किस्मत को कोसती, काल्पनिक भगवान को गालियाँ देती, 'नासपीटे ने मोए निकम्में आदमी के पल्ले बांध दयोऐ, जो न भरपेट रोटी दै सकत, ना चैन की जिंदगी। जीन देत रोजिना की मेरी जान कूं कलेस और करे हैए। भगवान अगर तू कऊं है तो मोए मौत दे दे। रोजिना के कलेस तै मैं भौत तंग आ गई ऊं।' विद्या की आँख में आँसुओं से भर जाती। विद्या अब ज्यादा बीमार रहने लगी थी। घर में जो ब्रुश बनाने का काम करती थी, वह भी अब उससे नहीं होता था, जिससे दो वक्त की रोटी का जुगाड़ हो सके। पारो कंचन की बेटी, जो अब तेरह-चौदह साल की हो गई थी, अपने स्कूल जाने के तांगे के लिए मिलने वाले पैसे जोड़कर कभी राशन भरवा देती, कभी बच्चों के लिए कपड़ा लाकर उन्हें सिलकर पहना देती। कभी विद्या के साथ जाकर दवाई दिलवा लाती। कभी-कभी तो अपने हिस्से की रोटी दुपट्टे में छुपाकर लाती और चुपचाप चाची की झोली में डाल जाती ताकि विद्या बच्चों को कुछ खिला सके। चोरी पकड़े जाने पर पारो अपनी माँ से मार भी खाती थी, लेकिन ऐसा कब तक चलता। न ही इससे विद्या और बच्चों का जीवन बसर होता, न ही इससे जरूरत पूरी हो पाती। विद्या चुन्नी से पैसे माँगती, 'आज ऑटो नाए बच्चा भूंकेएं पईसा दै दैओ तो मैं सौदा सट्टों ले आऊं।' लेकिन चुन्नी के पास पैसे हों तो दे, गुस्सा और आ जाता, मार पिटाई और झगड़ा कर अपनी खीज विद्या पर उतारता। विद्या भी रोज-रोज की पिटाई और भुखमरी से इतनी आहत हो गई थी कि सावन में त्योहार के बहाने से मायके चली गई और वचन भर के गई कि जब तक बो मोए कमा के नयी दिगें और घर का खर्च चलाने के काबिल नाए होत, तब तक मैं मायके ते वापिस नहीं आऊंगी। विद्या मायके चली गई। इसी उहापोह में बच्चों का स्कूल भी छूट गया। नानी के घर भी ना भरपेट खाने को, ना उन्हें स्कूल भेज कर पढ़ाने में किसी को रुचि। एक कहावत है ना—आसमान से गिरा, खजूर में अटका। विद्या की माँ के घर की स्थिति भी अच्छी नहीं थी। वहाँ भी फाके पड़े रहते। जहाँ विद्या के अलावा चार और बहनें थी। विद्या के पाँच बच्चे। छोटी-सी कोठरी और इतना बड़ा परिवार, उसमें समा नहीं पाते, इसलिए विद्या अपने बच्चों के साथ लकड़ी कोयले की टाल में ही पड़ी रहने लगी। टाल का सारा काम माल लाना, बेचना, खरीदना, पैसों का लेन देन, खर्चा, सब विद्या की बड़ी बहन अंगूरी के हाथ में था। परिवार पर उसी का वर्चस्व था, क्योंकि विद्या की कोई आमदनी नहीं थी, इसलिए वहाँ भी विद्या से कोई ढ़ंग से बात तक नहीं करता था। सभी बहनें कोसतीं, 'अपने आदमीएं छोड के यां पड़ी, पिल्लन नै ले के, यां इन्हें बैठार के को खबायेगो।' मजबूरी में विद्या चुपचाप सबकी सुनती रहती। ऐसे तानों के बीच उसका घर जाने का भी मन नहीं करता और अपने बच्चों के साथ टाल पर ही पड़ी रहती। वहाँ भी वह भूख और बीमारी से जूझती-कुढ़ती रही। स्वाभिमानी विद्या ना तो स्वयं पति के पास वापस आई और ना ही चुन्नी उसे लेने के लिए गया। चुन्नी का विद्या को अपने पास लाने का मतलब था परिवार की जिम्मेदारियों को उठाना जिसमें सक्षम नहीं था। माँ रामबती ने कई-बार कहा भी, 'चुन्नी जाके बऊए लिवा ला बच्चन की पढ़ाई मारी जा रईए।' चुन्नी अपनी जिम्मेदारियों से भागता रहा। नशे का आदी चुन्नी लाल नशे में इतना धुत्त रहता कि उसे अपना ही होश न रहता। विद्या टाल पर रहती थी, जहाँ उसके बच्चों के अलावा कोई न होता था, जहाँ केवल लकड़ी की बास और कोयले की कालिख के साथ एक चारपाई के नाम पर एक तख्त था, जिसे पर एक गुदड़ी-सी पड़ी थी, वही उसका बिछावन और औढ़ना था, जिसपर बैठकर दिन में दुकानदारी होती थी, वही रात में विद्या और उसके बच्चों का बिस्तर। विद्या की स्थिति ऐसी भी नहीं थी कि घर जाकर खाना-पीना खा आती। वहीं पर अगर उसे कुछ भेज देता तो खा लिया, वरना भूखे ही पड़ी रहती। खुद्दारी उसे वहाँ जाने से रोकती रही। उसने कभी किसी से कोई शिकायत न थी, न ही किसी से कभी कुछ माँग। उसे परिस्थितियों से जूझना मंजूर था, लेकिन झुकना नहीं। अभाव में भी वह न तो चुन्नी लाल के आगे झुकी, न ही अपनी बहनों से कोई मदद माँगी, जो मिल गया, उसी में सबर करना, उसकी मजबूरी थी। अभावग्रस्त जीवन और बीमारी से वह अकेली विद्या कब तक जूझती, आखिर एक दिन उसी लकड़ी व कोयल की टाल में विद्या जीवन की

जंग हार गई और न जाने रात के कौन-सी पहर में सोते हुए विद्या ने कब अपने प्राण त्याग दिये। यह भी किसी को नहीं पता चला। अगली सुबह जब विद्या की माँ केलासो खाना लेकर आई तो दुकान खोलने पर पता चला कि वहाँ विद्या नहीं, विद्या की लाश पड़ी थी। विद्या मर चुकी थी और मरी हुई विद्या के स्तनों से उसका छह महीने का बेटा उसके स्तनों से चिपका अपनी भूख मिटाने का प्रयास कर रहा था। केलासो ने यह देखा तो विद्या को हिला -ढुलाकर, उसे जगाने का प्रयास किया। शायद विद्या गहरी नींद में हो। माँ का मन यकीन करने को तैयार न था, वह आवाज लगा रही थी, 'विद्या! ओ विद्या! उठ! लाला कूं भूंक लगीए जाए, रोटी खबा दे।' लेकिन वहाँ कोई हरकत न हुई। वहाँ तो केवल विद्या का बेजान शरीर था, जिससे उसका बेटा चिपका हुआ, जो भूख के साथ-साथ मासूम आँखों से अपनी माँ को तलाश रहा था, जो अब वहाँ नहीं। नानी केलासों ने उसे स्तनों से छुड़ाकर अलग किया। अभागी विद्या को तन के साथ-साथ मन की जिम्मेदारियों से भी मुक्ति मिल गई। बेपरवाह रहने वाला चुन्नी, पत्नी की मौत से टूट गया। अब उसे अपने बच्चों का भविष्य की चिंता होने लगी क्योंकि अब विद्या तो रही नहीं। बेटी के साथ-साथ बच्चों के प्रति नानी की जिम्मेदारी भी खत्म हो गई।

चुन्नी लाल बच्चों को लेकर दिल्ली आ गया, जहाँ बच्चों को संभालने की सारी जिम्मेदारी चुन्नी की 70 साल की माँ रामबती पर आ गई, अभावपूर्ण अभिशप्त जीवन से मुक्ति न मिली। विद्या अपने बच्चों को उसी मोड़ पर छोड़ गई, जहाँ से उसने स्वयं की जिंदगी की शुरुआत की थी।

आखिर गरीबी, अशिक्षा और नशे की लत्त, परिवार को समय से पहले ही खत्म कर देती है। अशिक्षा व अज्ञानता के अभाव में व्यक्ति इतना कुंठित हो जाता है कि वह अपनी जिम्मेदारियों से भी भागने लगता है। अगर चुन्नी ने समय रहते शिक्षा के महत्व को समझा होता और अपने भाई कंचन के द्वारा समय-समय पर की गई मदद का लाभ उठाया होता, तो आज बच्चों और परिवार को अच्छा और खुशहाल जीवन दे सकता था। चुन्नी लाल ने कभी कोशिश ही नहीं की। पारो दादी के साथ मिल कर बच्चों की परवरिश में मदद करती रही और अपनी पढ़ाई के साथ-साथ पाँच बहन-भाई अपने और पाँच चुन्नी और विद्या के बच्चे जिनकी जिम्मेदारी घर में केवल दादी रामबती और पोती पारो की थी। क्योंकि पारो के मम्मी-पापा भी काम के चक्कर में दूसरे शहर में रहते थे। चाची के मरने के बाद चाचा संन्यासी हो गये थे। कई-कई दिनों तक घर नहीं आना, बाबाओं के साथ कभी बदरी नाथ, कभी केदारनाथ, कभी किसी मंदिर, कभी किसी में, वहीं रहना, वहीं खाना, कभी मन किया तो किसी दिन कमा कर ले आया, कभी नहीं। दादी रात-रात भर ब्रुश बनाने का काम करती, 'लाली आज इतनै दर्जन ब्रुश बनानै हैं तो कछु पईसा मिल जांगे तो रासन ले आऊंगी।' पारो भी दादी की मदद में लग जाती और जल्दी से जल्दी काम को पूरा करने का प्रयत्न करतीं जबकि आर्थिक उपार्जन करना चुन्नी की जिम्मेदारी थी। शराब और अन्य प्रकार के नशे ने उन्हें इसके प्रति कभी सचेत ही नहीं रहने दिया और यह नशा एक दिन उन्हें भी खा गया। आर्थिक स्थिति वहीं की वहीं रही। अभावों से जूझते हुए अगली पीढ़ी भी उसी प्रकार की परिस्थितियों में अपना जीवन गुजारती रही। चुन्नी ने अपनी अगली पीढ़ी को विरासत में वही सौगात दी, उनका जीवन भी उसी राह पर चल पड़ा जिस पर चलकर चुन्नी का जीवन बर्बाद हुआ था।❑

उन्नसवी सदी में सावित्री बाई कहती कहती है

मूल मराठी पाठ

स्वातंत्र्य मिळे न सोपे, ज्ञानाविण गती नाही।
शुद्रातिशुद्र अज्ञानी, दु:खाचे डोंगर पाही।।
विद्या मिळवा आता, कष्ट सोसावे लागती।
शूद्रांच्या उद्धारासाठी, ज्ञानाचीच गती।।
उठा, जागे व्हा, कंबर कसा।
आता हातात लेखणी धरा, अज्ञान दूर करा।।

हिंदी अनुवाद

स्वतंत्रता इतनी आसान नहीं, ज्ञान के बिना कोई प्रगति नहीं।
शूद्र और अति-शूद्र अज्ञानी रह गए, इसीलिए दुखों का पहाड़ सहा है।।
अब विद्या प्राप्त करो, चाहे इसके लिए कष्ट सहने पड़ें।
शूद्रों के उद्धार के लिए, ज्ञान ही एकमात्र रास्ता है।।
उठो, जागो और कमर कस लो।
अब हाथ में कलम थाम लो, और अज्ञानता को दूर भगाओ।।

उजाले की ओर

सुमा टी आर
मो. 8088545787

कर्नाटक राज्य के सवदत्ति शहर की रौनक देखते ही बनती थी। हजारों की तादाद में लोग यानी भक्तगण येलम्मा देवी (रेणुका देवी) के मंदिर में देवदासी प्रथा के आचरण को देखने के लिए एकत्रित हुए थे। सभी की आंखों में चमक थी। इस तरह छोटी-छोटी बच्चियों को देवदासी यानी देवी-देवताओं की दासी बनाया जा रहा था। आज एक छोटे से गांव का रमेश अपनी पत्नी के साथ अपनी इकलौती बेटी कमली को लेकर आया था। वह भी अपनी बेटी को देवदासी बनाने जा रहा था। उसके चेहरे पर खुशी थी कि उसने येलम्मा देवी से किए वादे को पूरा करने जा रहा है।

पत्नी ने पति को देखकर कहा- 'आज आप बहुत खुश दिखाई दे रहे है?'

पति ने खुशी से कहा, 'लक्ष्मी सचमुच आज मैं बहुत खुश हूं, तुम तो जानती हो कमली जब छोटी थी तो उसे एक दिन ऐसा बुखार चढ़ा कि उतरने का नाम नहीं ले रहा था। डॉक्टर ने भी इंकार कर दिया था। तब मैंने येलम्मा देवी से हाथ जोड़कर प्रार्थना की थी कि हे देवी अगर मेरी बेटी को प्राणदान दोगी, तो मैं उसे आपकी दासी बनाऊंगा। आज वह खुशी की घड़ी आ गई है।'

'पत्नी बोली, 'सच मैं भी बहुत खुश हूँ कि मेरी बेटी देवदासी बनने जा रही है।'

माता-पिता की खुशी देख कमली भी खुश हो रही थी। उसे लग रहा था कि देवदासी बनने के बाद उसके पास बहुत पैसे आएंगे। खाने के लिए स्वादिष्ट भोजन मिलेगा। कमली अभी बारह साल की बच्ची थी, उसे इस बात का अंदाजा नहीं था कि जिस जीवन को वह अपनाने जा रही है, वह एक मृगतृष्णा जैसा था। देवदासी बनने का सपना देखना, अलग बात थी, देवदासी बनकर जीना, किसी नरक से कम नहीं था। धीरे-धीरे समय गुजरने के साथ देवदासी जीवन की हकीकत सामने आने लगती है।

देवदासी बनकर कमली आज बहुत खुश थी। इतनी सारी भीड़ के बीच उसके शरीर को नीम के पत्तों से ढक कर नहलाया गया। देवी से उसकी शादी भी कर दी गई। अब वह दुल्हन जैसी लगने लगी थी। उसी के गाँव के

जमींदार का बेटा कमली के सौंदर्य को देखकर दिल हार गया था, उसे मालूम था कमली दलित कन्या के साथ-साथ देवदासी भी है। जब कमली देवदासी बन गई तो जमींदार के बेटे शिवशंकर ने उसे अपनी रखैल बनाकर रखा। यह समाज की विडम्बना है कि देवदासी के नाम पर उसका यौन शोषण ही होता है यह बात उसे कई सालों के बाद पता चली। शिवशंकर के साथ उसने पत्नी जैसा रिश्ता निभाया और आगे चलकर उसकी एक बेटी भी हुई जिसका नाम पवित्रा रखा गया। शिवशंकर उसे उपयोग कर रहा था, बेटी से उसको कोई लगाव नहीं था।

एक दिन कमली ने शिवशंकर से कहा, 'आपको पता है, आपकी बेटी अब बड़ी हो गई है। उसे स्कूल में दाखिला दिलाना है।'

शिवशंकर, 'अच्छी बात है तुम जाकर सरकारी स्कूल में दाखिला दिला दो'

कमली, 'वह तो ठीक है पर आपको जाना चाहिए फॉर्म भरने के लिए आपकी जरूरत है।'

शिवशंकर, 'मुझे बहुत काम हैं, तुम्हीं जाकर दाखिला करा दो।' यह कहकर वह आँखें चुराने लगा क्योंकि अब कमली से उसका दिल भर गया था और घर में उसके रिश्ते की बात एक बड़े जमींदार की बेटी से चल रही थी। इसलिए कमली से वह पीछा छुड़ाना चाहता था। दिन गुजरते गए पर शिवशंकर ने दुबारा मुड़कर नहीं देखा।

कमली आँखों में उम्मीद की किरण जलाए बैठी थी कि वह जरूर आएगा। लेकिन शिवशंकर ने कभी उसे अपना माना ही नहीं था वह तो केवल कमली को अपनी हवस को मिटाने का एक जरिया समझता था। वह अपने बाल-बच्चों के साथ हंसी खुशी जिंदगी बिता रहा था। कमली का घर उसके पैसों से चलता था अब वह आता नहीं, न ही पैसों से मदद करता। कमली के माँ-बाप बूढ़े हो चुके थे, वे खेतों में काम भी नहीं कर सकते थे। कमली की अपनी बेटी भी थी। इन लोगों को वह भूखा-प्यासा तड़पते नहीं देख सकती थी। हिम्मत करके वह जमींदार की कोठरी पर गई ताकि शिवशंकर का दिल पिघले वह दुबारा घर आ जाए।

कमली बड़ी उम्मीद लिए जमींदार के कोठरी के पास खड़ी थी, शिवशंकर ने पहले ही उसे देख लिया था और उसने नौकरों से कहा, 'देवदासी कमली को किसी भी हालत में अन्दर मत आने देना, उसके आने से हमारी कोठरी अपवित्र हो जाएगी।'

नौकर, 'हम उसे आने नहीं देंगे, अगर आई तो उसे धक्का मारकर निकाल देंगे।'

कमली बार-बार मिन्नतें करने लगी कि एक बार मुझे मिलने दो। लेकिन किसी ने उसे अंदर जाने नहीं दिया। शोर-शराबा सुनकर शिवशंकर की पत्नी सपना बाहर आयी और कमली को देखकर बोली, 'कौन हो तुम जमींदार से क्यों मिलना चाहती हो?'

कमली, 'मैं देवदासी हूँ, जमींदार से...'

तभी जमींदार बाहर आये और सपना की ओर मुख करके बोले, 'अरे सपना यह देवदासी है, भीख माँगने आयी है बेचारी, कुछ पैसे हैं तो देकर दफा कर दो।'

कमली ने कुछ नहीं कहा और दिल पर पत्थर रखकर वापस आ गई। घर चलाने के लिए उसे कुछ-न-कुछ काम तो करना था। उसने अन्य देवदासी से सुना था कि मुंबई में अच्छा काम मिलता है। अंत में अपनी बेटी को माता-पिता के पास छोड़कर कमली मुंबई चली गई। मुंबई में काम यानी वेश्यावृत्ति में लग गई। अन्य औरतों को काम पर जाते देखती तो सोचती काश मेरे माता पिता ने मुझे देवदासी न बनाकर पढ़ाया होता तो आज मैं यहाँ नहीं होती लेकिन मैं अपनी बेटी को जरूर पढ़ाऊंगी।

कमली को मुंबई में काम करते पंद्रह साल हो गए थे। उसने अपनी जिंदगी दाँव पर लगाकर बेटी को कर्नाटक विश्वविद्यालय धारवाड़ में दाखिला दिला दिया। बेटी को हमेशा कहती, 'अच्छे से पढ़ोगी तो राजा जैसी जिंदगी जियोगी।

पवित्रा, 'माँ मैं भी आप की तरह मुंबई आकर काम करूंगी।'

बेटी के मुँह से यह शब्द सुनकर उसका रोम-रोम काँप उठा और बेटी को गले लगाते हुए कहा, 'फिर कभी ऐसी बात मत कहना, तुम्हें पढ़ना और बहुत अच्छी जिंदगी जीना है।' यह कहकर बेटी को गले लगाकर रो पड़ी। पवित्रा माँ के इस बर्ताव को समझ नहीं पायी पर उसने पक्का मन बना लिया वह खूब पढ़ेगी और माँ का सपना पूरा करेगी।

पवित्रा ने एलएलबी की पढ़ाई पूरी की, इसी बीच उसकी मुलाकात मोहन से हुई, मोहन उससे एक साल छोटा था पर वह पवित्रा की सादगी पर मर मिटा था। दोनों एक ही गाँव के थे इसलिए दोनों में नजदीकियां बढ़ने लगी

और एक दूसरे के प्यार में बंध गए। इसी बीच पवित्रा को नाना का टेलीग्राम आया कि 'तुम्हारी माँ बहुत बीमार है और तुम जल्दी चली आओ।' टेलीग्राम देख पवित्रा घबरा गई और शाम की बस से वापस गाँव लौट आई। गाँव आकर देखा माँ बहुत कमजोर हो गई थी और खाँसी रुकने का नाम नहीं ले रही थी। माँ को इस हालत में देख उसे बहुत दु:ख हुआ और वह दिन-रात माँ की सेवा करने लगी।

गाँव आने के बाद उसे पता चला उसकी जाति क्या है, उसकी माँ कौन-सा काम करती है इस वजह से माँ को एड्स जैसी जानलेवा बीमारी हो गई। उसकी नजरों में माँ की प्रति आदर और श्रद्धा ओर ज्यादा बढ़ गई। एक दिन जब वह अपनी माँ को दिखाने सरकारी अस्पताल जा रही थी तो एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति आकर उसकी माँ से बातें करने लगा। तुम कब आई मुंबई से, कैसी हो? क्या यह तुम्हारी बेटी है?'

कमली, 'हाँ यह हमारी बेटी है।' उसकी आँखों में खुशी की आंसू निकल आए क्योंकि इतने दिनों बाद शिवशंकर उसका हालचाल पूछ रहा था। उसने अपनी बेटी से पाँव छूने के लिए कहा। कमली की ओर देखकर शिवशंकर ने कहा, 'कमली तुम्हारी बेटी तो बिल्कुल तुम पर गई है, जवानी के दिनों में तुम भी ऐसी ही दिखाई देती थी। खैर छोड़ो-अब कैसी हो? दवा दारू की जरूरत हो तो मुझसे मांग लेना।' इतना कहकर उसने कमली के हाथों में कुछ पैसे थमा दिए। पवित्रा को इतना तो पता चला कि इस व्यक्ति और माँ के बीच कोई संबंध तो है। घर आने पर माँ ने विस्तार से बताया तो पवित्रा ने भी अनमने मन से उसे पिता स्वीकार कर लिया। वह व्यक्ति हर रात चोरी छिपे दलितों की गली में कमली से मिलने आ जाता। उसका चोरी छुपे यूँ आना उसे अखरता था पर माँ की खुशी देखकर वह चुप हो जाती।

इधर मोहन पवित्रा से मिलने बेताब था और एक दिन वह भी रात के अंधेरे में पवित्रा से मिलता है। कई दिनों के बाद दोनों मिल रहे थे और शिकवे- शिकायत कर रहे थे। इस तरह दोनों का रात के अंधेरे में मिलना जारी था। एक ऐसी ही रात थी दोनों बातें कर रहे थे तभी माँ के कमरे से चीखने-चिल्लाने की आवाज आ रही थी।

कमली, 'आपने यह कैसे सोचा वो आपकी बेटी है? समाज में आपने उसको बेटी नहीं माना पर बायोलॉजिकली वह आपकी बेटी है। कैसे उसे अपनी रखैल बना सकते हो?'

शिवशंकर भारी और क्रोधित आवाज में-'किसकी बेटी, कैसी बेटी, वह तो एक देवदासी की बेटी है। देवदासी और उसकी बेटी को सभी उपयोग कर सकते है। वैसे भी तुम्हारे घर को चलाने के लिए तुम्हारी बेटी एक अच्छा जरिया बन सकती है।' कमली की आँखों के आगे अंधेरा छा गया और हिम्मत जुटाकर बोली, 'मेरे जीते जी यह नहीं हो सकता।' थोड़ी देर में चीखना-चिल्लाना कम हो गया तो पवित्रा ने धीरे से कहा, 'मोहन तुम चले जाओ फिर मिलते हैं।' मोहन चला तो गया पर उस व्यक्ति की भारी भरकम आवाज उसको बेचैन करती रही।

सुबह का सूरज एक मनहूस खबर लेकर आया देवदासी कमला नहीं रही, कल रात ही उसकी मृत्यु हो गई। मोहन का दिल टूट-सा गया उसको पवित्रा की चिंता सता रही थी। वह उस मौके के इंतजार में था कि पवित्रा की माँ से उसकी बेटी का रिश्ता मांगे लेकिन अचानक ये सब इतनी जल्दी हो गया वह समझ नहीं पा रहा था आगे क्या करे। दूसरी ओर उस भारी भरकम व्यक्ति की आवाज भी कानों में गूँज रही थी। उसने इतना घटिया आदमी अपनी जिंदगी में नहीं देखा था। अपनी सोच से जल्दी बाहर आया और सोचा चलो पवित्रा की माता के अन्तिम क्रिया में जाते है।

कमली को दुल्हन की तरह सजाया गया था क्योंकि वह देवदासी थी लेकिन उसने गृहस्थ जीवन भी बिताया था इसलिए परंपरा थी कि उसे दुल्हन के जोड़े में विदा करें। दूल्हा के रूप वहीं अधेड़ उम्र का व्यक्ति बैठा था। पवित्रा का तन-मन जल रहा था, पर समाज के रीति रिवाजों के सामने उसने चुप्पी साध ली। इधर मोहन की नजर जैसे ही उस अधेड़ व्यक्ति पर पड़ी उसका सारा वजूद ही कांप गया क्योंकि वह अधेड़ व्यक्ति और कोई नहीं उसका जन्मदाता यानी पिता थे। मोहन को सारी दुनिया घूमती नजर आयी वह अपने घर चला आया। रात-दिन उसे यही बात सता रही थी कि उसके पिता इतने बुरे आदमी है। समाज के सामने अच्छे बनने का ढोंग करते है और अंदर खूंखार भेड़िया है जो अपनी ही बच्ची को अपने हवस का शिकार बनाना चाहता है। वह पवित्रा को मुँह दिखाने काबिल नहीं रहा और इसी द्वंद्व में उसने अपनी जिंदगी खत्म कर ली। मोहन का मरना पवित्रा के लिए दूसरा

सदमा था और वह पूरी तरह टूट गई। उसे पहली बार पंजाबी कवि 'पाश' की कविता याद आयी, 'कितना बुरा होता है आदमी के सपनों का मर जाना।'

जमींदार शिवशंकर अपने इकलौते बेटे को खोकर पागल-सा हो गया। मोहन ने मरने से पहले पिता को पत्र लिखा था, 'आपकी वजह से मैं इस दुनिया को छोड़ रहा हूँ। अगर आप पश्चाताप करना चाहते है तो पवित्रा को बेटी के रूप में अपनाओ।' पवित्रा को जब इसकी जानकारी मिली तो उसे समाज के इन रीति रिवाजों और जमींदार की काली करतूत से नफरत हो गई। जमींदार ने माफी माँगते हुए उसे बेटी का दर्जा देना चाहा पर पवित्रा ने साफ-साफ इनकार कर दिया।

पवित्रा एलएलबी की विद्यार्थी थी उसने सोच समझकर डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर के मार्ग पर चलने का निर्णय लिया। आज वह कितनी बेसहारा लड़कियों का सहारा बनकर छात्रावास चला रही है। अब उसके पास एक ही मकसद है कोई भी सामाजिक रूढ़ियों का शिकार न हो। दिन भर की दौड़-धूप के बाद वह थक-सी जाती है और शाम के समय बौद्ध मठ से आनेवाले यह शब्द उसे सुकून देते हैं।

बुद्धम् शरणम् गच्छामि।
धम्म् शरणम् गच्छामि।
संघम् शरणम् गच्छामि।❑

पृष्ठ सं. 27 का शेष भाग

चला कि तुम भी बिलासपुर चली गयी हो, लेकिन उसके बाद कहाँ हो, यह नहीं पता चला। बीमारी की अवस्था में तुमसे मिलने की अंतिम इच्छा लिए माँ भी चल बसीं। पिता जी ने तुम्हारे नाम कुछ फिक्स्ड डिपॉजिट किए थे जो मेरे पास हैं। कुछ महीने पहले अखबार में तुम्हें राष्ट्रपति अवार्ड मिलने की सूचना पढ़ी। साथ में तुम्हारे जीवन से जुड़ी वह सभी बातें, जिसे मां-पिताजी कभी-कभी बताया करते थे। तुम्हारी पथ-प्रदर्शक में कमला दी का नाम देख कर यह जानकारी पुख्ता हो गई कि तुम ही मेरी दीदी हो। तुम्हारी तस्वीर देखकर मेरी पत्नी ने कहा, 'इनका चेहरा आपसे मिलता है।' अब शक की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। तुम मनोहरपुर आने की सूचना दो, मैं भी वहीं आता हूं।

तुम्हारा भाई
राजेश

पापाजी ने जीते जी अगर थोड़ा भी इस प्रेम को दिखाया होता तो शायद सारी उपेक्षा मैं भूल जाती और छुट्टियों में भी घर जाने की ललक बनी रहती, लेकिन ऐसा नहीं हुआ और सम्भवत: मेरी लम्बी अनुपस्थितियों ने उन्हें विचलित कर दिया। गेस्ट हाउस के कमरे में चाय पीते-पीते पुन: मुझे अपने उस परिवार की याद आ गयी। तभी सेवक ने सूचना दी कि कोई मुझसे मिलने आया है। बैठक में देखा, मेरा भाई राजेश दोनों बाहें फैलाए मेरी ओर आ रहा था। खून के रिश्ते की गरमाहट क्या होती है, आज महसूस किया। राजेश ने बहुत देर तक सबके बारे में बताया, बहनों की शादी-ब्याह, उनका पता आदि।

पापा द्वारा मेरे लिए रखे फिक्स्ड डिपॉजिट का चेक मुझे सौंपते हुए राजेश ने कहा, 'दीदी, माँ की बहुत इच्छा थी कि तुम घर वापस आ जाती। अब चलो, मेरे बच्चे भी तुम्हारा साथ चाहते हैं।' मैंने उसके आँसू पोंछते हुए कहा, 'मेरा परिवार बहुत बृहद है, भाई। हजारों विद्यार्थी हैं, अनेक पशु-पक्षी। स्वावलम्बन की राह पर चलने वाली अनेक उपेक्षित बहनों की मैं आशा हूँ। मेरे आशियाने का नाम भी गुलमोहर है, जिसकी छाया में हर थका-माँदा प्राणी आराम पाता है। तुम जाओ और अपना खयाल रखना। हाँ, तुम्हें कभी किसी चीज की जरूरत हो तो बेहिचक मेरे पास आ जाना।' राजेश के जाने के बाद मैंने आईने के सामने खुद को देखा। धूसर रंग, बालों की चाँदी, आँखों के नीचे की कालिमा। बहुत कुछ बदल गया था। जो नहीं बदला था, वह मेरा पोलियो ग्रस्त हाथ और टेढ़ी अंगुलियाँ। मेरी कमजोरी ही मेरी ताकत बन गई थी। उसके एवज में मिला देशवासियों का प्यार मेरी कमाई थी। जीवन की आपाधापी में यादें विस्मृत होती गयीं लेकिन माँ का वह अमर वाक्य अब भी जहन में था, 'जा बेटी, अपने को इतना मजबूत कर ले कि किसी के सहारे की जरूरत न पड़े।' पापा के चेक को दूसरे दिन ही भुनाने के लिए बैंक भेज दिया। मेरे नाम के वो सारे रुपए कॉलेज की दान-पेटी में डालते हुए उन्हें कृतज्ञतापूर्ण प्रणाम किया।❑

तथागत बुद्ध कहते हैं

एक पल, एक दिन को बदल सकता है, एक दिन एक जीवन को बदल सकता है, एक जीवन इस दुनिया को बदल सकता है।

तीसरी कसम

अनीता भारती
मो. 9899700767

'माँ, **मैं** स्कूल नहीं जाऊँगी।' मीनू ने रोते हुए कहा।

'क्यों, क्यों स्कूल नहीं जाएगी?' ..रमैनी ने गुस्से से कहा।

'माँ वो मुझे कभी आगे नहीं बैठने देते, कहते हैं तू सबसे पीछे बैठ, मेरी मास्टरनी भी कहती है, हमारी बस्ती के बच्चे गंदे होते हैं।' ...मीनू ने सुबकते हुए कहा।

मीनू की बात सुन रमैनी को अपना अतीत याद आ गया। ऐसे ही एक दिन वह भी अपने बापू से बोली थी 'बापू, मैं स्कूल नहीं जाऊँगी।'

राधे ने हैरानी से पूछा था, 'क्यों बेटी?'

'बापू, वो मुझे सबसे पीछे बैठाते हैं, पीछे बैठकर मेरा पढ़ने में मन नहीं लगता, बहिनजी भी मुझे गोबर गणेश कहती हैं, बच्चे मुझे देखकर हँसते हैं, कहते हैं, अरी ओ रमैनी नौटंकिया, नौटंकी दिखा।'

रमैनी को समझाते हुए राधे बोला, 'बेटी, बच्चे तो एक दूसरे को चिढ़ाते ही हैं तू भी उनको चिढ़ा दे। मेरी बेटी झलकारी बाई की तरह बहादुर है। किसी से डरती थोड़े ही है।' फिर बापू ने प्यार से रमैनी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'पढ़ने से मत रुकियो, बेटी।' पर रमैनी का गुस्सा शांत नहीं हुआ। वह गुस्से से बोली, 'बस मैंने कह दिया अब मैं स्कूल नहीं जाऊँगी। मेरे लिए जीजी से कहकर एक हारमोनियम मँगा दो। मैं भी गाना सीखूँगी।'

बाप-बेटी की बात सुन दुःख में डूब गया। वह जिस जात से है, वहाँ के बच्चे पढ़ क्यों नहीं पाते, यह छोटी-सी बात उसकी बुद्धि से परे थी। वह रात-दिन कोल्हू के बैल की तरह जुतकर अपनी थोड़ी-सी खेतीबाड़ी से घर का खर्चा चला रहा था। घर भी क्या था, एक टूटी चारपाई, एक मैला कुचैला तकिया, तार-तार हो चुका चिथड़े-सा बिछौना। पूरे कमरे में अंधेरे के साम्राज्य से लड़ती धुआँ छोड़ती ढिबरी और कोने में रखी छोटी-सी मटकी। कहते हैं—बिन घरनी, घर भूत का डेरा। घरवाली लक्ष्मी के मरते ही राधे का मन और घर दोनों उजड़ गए। घर-घर न लगकर गरीबी, अभाव और गंदगी की पाठशाला लगने लगा। लक्ष्मी के मर जाने के बाद राधे ने दोनों बेटियों को छाती से लगाकर पाला था। बड़ी लड़की सोना की शादी होने पर वह रुक-रुककर रोया था। सोना की शादी के बाद यह छोटी लड़की रमैनी ही उसका सहारा है।

यह गाँव कुँआरी वधुओं के नाम से प्रसिद्ध है। इस गाँव को यह संबोधन कब मिला। राधे को याद नहीं। आँखें खोलते ही उसने अपनी माँ सुनारो को देखा, जो गाने-बजाने के धंधे में थी। सुनारो को राधे के बापू रमेश से बहुत प्यार था। वह हमेशा उन्हें चंपा के बापू कहती। चंपा राधे की बड़ी बहन थी। देखने में दुबली-पतली साँवले सलौने रूप वाली। सुनारो मन से बहुत भोली थी। सुनारो अपने आप को कलाकार कहती थी, जब भी कोई उसे नाचने-गाने वाली कहता तो वह तड़प उठती और रमेश से कहती, 'चंपा के बापू! हम कलाकार हैं, नाचना-गाना हमारी कला है। इसी से हमारी पहचान है। हम कोई व्यापार नहीं करते, चोरी नहीं करते।' रमेश सुनारो की विद्वता भरी बातें सुन उस पर रीझ जाता। वह सुनारो को प्यार भरी झिड़की देते हुए कहता, 'अरी पगली हम थोड़े ही कलाकार हैं, कलाकार तो वे हैं जो बड़े-बड़े मंच पर नाचते-गाते हैं, जिन्हें देखने-सुनने बड़े-बड़े लोग आते हैं। उनकी तरफ कोई टेढ़ी नजर नहीं देख सकता। और एक हम हैं कि हमारी औरतों को हर कोई छूना-चखना चाहता है। भला हम काहे के कलाकार।'

सुनारो रमेश की बातों का दर्द अपनी छाती में उठता महसूस करती। सुनारो रमेश से कहती, 'चंपा के बापू मेरा मन कहता है कि मैं बस तुम्हारे लिए ही गाऊँ।' कहते-कहते सुनारो की आँखों में चमक आ जाती। फिर वह ऊँची तान छेड़ देती,

'...अमवा की छाँह तले
आजा मेरे बालम प्यारे...
बिन तेरी सूरत देखे मेरे प्राण हारे
हो-जी-हो...'

तान छेड़ते समय उसकी ताल-लय पर उठती गिरती साँसें, झुकी पलके पूरे माहौल को मदहोशी से भर देतीं। पक्षी तक चहकना भूल जाते। उस समय सुनारो की भाव-भंगिमा देख लगता, जैसे किसी विरहणी के प्यासे प्राण उसके अंदर समा गए हों। यह गाना सुनारो केवल रमेश के लिए गाती थी। उस गाने को सुन रमेश मदहोश हो, सुनारो के गालों को चूमते हुए कहता 'सुनारो, आज तो तूने गाने में प्राण उड़ेल दिए, अरी मेरी लाडो! तुझे मेरे घर में नहीं। किसी ऊँचे घराने में होना चाहिए था। और अगर मैं धनवान होता तो सारी दुनिया की खुशियाँ तेरे कदमों में डाल देता।' पति के प्यार से तप्त सुनारो लज्जा से कहती 'मेरी नजर में तुमसे ऊँचा और कोई नहीं है, मेरी कला के असली पारखी तो तुम ही हो, बाकी तो सब खरीदार हैं।'

ऐसे ही एक दिन सुनारो ने चंपा के बापू से कहा 'सुनो जी, क्या हम शहर जा कर नहीं रह सकते, वहाँ मैं अपने बच्चों को पढ़ा-लिखा कर इंसान बनाऊँगी, तुम ये तबला बजाना छोड़कर मजदूरी करना, और जब तुम थककर लौटोगे तो मैं तुम्हें ढेर सारा प्यार करूँगी, और अपना घर संभालूँगी।' सुनारो में जहाँ भावुकता थी रमेश में वहीं व्यावहारिकता। रमेश कहता 'पगली, यहाँ तो हमारा गाँव है, नाते-रिश्तेदार हैं, सगे संबंधी हैं, भला वहाँ कौन होगा। वहाँ हम भूखों मर भी जाएँ तो हमें कौन देखने वाला है। शहर हमें अजगर की तरह निगल जाएगा। मैं थोड़े और ग्राहक जुटाकर पैसा इकट्ठा कर लूँगा। फिर उसी से थोड़ा-थोड़ा इकट्ठा कर एक दुकान खोल लूँगा।' रमेश की बातें सुनारो की आँखों में सतरंगी सपने जगा देतीं।

माँ के इसी गाने-बजाने से राधे और उसकी बड़ी बहन चंपा का पेट पलता। बापू माँ का हाथ बँटाता था और लोगों को जुटा कर लाता था। जब वह तीन-चार बरस की ही होगी, उसे याद है घर में पंडित बदरीनारायण का खूब आना जाना बढ़ गया। पंडित बदरीनारायण डील-डौल से ऊँचे तगड़े थे। माँ उनके सामने निरीह-सी चिड़िया लगती। बदरीनारायण माँ बापू को धर्म शास्त्र की खूब पट्टी पढ़ाते। उनकी बातों में विद्वता का रौब होता। बापू भी उन्हीं दिनों न जाने कहाँ गायब हो गए चारों तरफ लोगों को खोजने भेजा, कुछ पता नहीं चला। बाद में किसी से पता चला। आखिरी बार लोगों ने बापू को पंडित बदरीनारायण के साथ देखा था। उसने माँ की बेबसी देखी। खामोश पीली होती आँखे देखीं। लोग माँ का गाना सुनने आते। नोट लुटाते। बदरीनारायण सब नोट बटोर कर रख लेता। जब माँ के सामने अधेड़ बदरीनारायण बड़ी होती चंपा जीजी के गाल पर हाथ फेरता तब माँ तड़प उठती। उस समय उसे बापू की बहुत याद आती। वह उसकी याद में रो पड़ती, उसकी करूण पुकार चारों ओर गूँज उठती

अमवाँ की छहियाँ तले आजा मेरे बालम प्यारे
बिन सूरत देखे तेरी मेरे प्राण विकल बेचारे
हो-जी-हो-ओ...
दिल में जो घाव दिए तूने बेदर्दी
दिखाने में सदियाँ बीत जाए
मन तो खाली मटके सा
उलटूँ तो सबरा रीता जाए।
हो-जी-हो-ओ...

माँ का गान जितना करुण था रोना उतना ही मार्मिक। माँ को तिलतिल मरते देख राधे की आँख में आँसू आ जाते। बापू के जाने के बाद माँ लगातार सूखती गई और एक दिन वह भी बापू के पास चली गई। जाते-जाते राधे का हाथ चंपा को पकड़ा गई। चंपा पर हल चलाकर छोटे भाई को पालना चाहती

थी। पर ऐसा नहीं हो सका, पूरी बिरादरी आगे आकर खड़ी हो गई। नाते-रिश्तेदारों ने कहा जब घर में लड़का है तो लड़की क्यों हल चलाएगी। चंपा ने लाख बार कहा कि राधे अभी बहुत छोटा है वह हल केसे चलाएगा। पर बिरादरी के आगे उसकी एक ना चली, बिरादरी वालों का तर्क था कि चंपा को वही करना चाहिए जो हमारी जाति की औरतें करती हैं।

आखिर चंपा कब तक घर में भूखी रहती, वह खुद तो भूखी रह सकती थी पर अपने भाई को कैसे भूख से तड़पता देखती। आखिर में उसे नौटंकीवाली बनना ही पड़ा। माँ ने मरते वक्त राधे से कसम ली थी कि वह नौटंकी कला को कभी घर में नहीं घुसने देगा। राधे ने सोच लिया था कि चाहे इसे कोई कला कहे या पेट भरने का साधन वह इस नौटंकी कला को घर में नहीं घुसने देगा।

चंपा जीजी को सबके सामने नाचने-गाने से वह रोक नहीं पाया, पर जब राधे की बड़ी लड़की सोना की शादी के बाद उसका पति सूरज यह कहकर छोड़ गया कि 'यह गाना-बजाना नहीं करेगी तो मेरे किस काम की।' शुरू-शुरू में सोना ने सूरज का विरोध किया था पर उसका यह विरोध ज्यादा दिन तक नहीं चल सका और वह अपने पति के पास लौट गई। सोना के गाने-बजाने की बात सुन वह अंदर तक टूट गया था। अब भी उसके पास एक आस बची थी उसकी छोटी बेटी रमैनी, वह रमैनी को पढ़ा-लिखा कर बहिनजी बनाना चाहता था। पर रमैनी की बातें सुनकर आज उसे अपना सपना टूटता दिखाई दिया, दु:ख से राधे ने खाट पकड़ ली, रमैनी के खूब सेवा करने पर भी वह बच न सका, शायद उसके जीवन का सबसे कीमती सपना जो टूटा था। मरा हुआ राधे माँ की एक कसम तो पूरी न कर पाया पर वह अपनी बड़ी बेटी से दूसरी कसम लेता हुआ बोला 'बेटी रमैनी को लेकर गाँव में मत रहना। शहर चली जाना जब तक यह गाँव हैं तब तक यह नाचने बजाने का कोढ़ हमारे माथे पर लगा रहेगा, बेटी इस कोढ़ से मुक्ति पानी है।'

बापू के मरने के बाद रमैनी अकेली रह गई सो सोना जीजी और जीजा खेत बेचकर उसे अपने घर ले गए। सोना जीजी ने उसे पढ़ाना चाहा पर उसने पढ़ने से मना कर दिया। सोना जीजी ने रमैनी को बड़े प्यार से समझाते हुए कहा बापू की बड़ी आस थी कि तू पढ़-लिखकर बहिनजी बने, क्या तेरे लिए इतना भी मुश्किल है। बापू ने हमारे लिए क्या नहीं किया, भरी जवानी में बापू चाहते तो दूसरी शादी कर सकते थे, पर बापू तो हमें देखकर ही जीते रहे। मैं और तेरे जीजा तुझे जी जान से पढ़ाएँगे। पर सोना की बातों का रमैनी पर उलटा असर हुआ और उसने रात-दिन एक ही रट लगाए रखी कि मुझे पढ़ाई नहीं करनी, मुझे भी तुम्हारी तरह गाना-बजाना सीखना है। हार कर जीजी ने उसके लिए एक संगीत-मास्टर रख दिया। मास्टर चुन्नीलाल ने इस बस्ती की कई लड़कियों को नाचना-गाना सिखाया था। सोना जीजी भी उनमें से एक थीं। उनका बस्ती के सभी घरों में आना-जाना था। वह भरोसे के आदमी थे। रमैनी बचपन से ही गाने-बजाने की शौकीन होने के कारण पूरे मनोयोग से संगीत सीखने लगी। संगीत सीखते-सीखते रमैनी ने महसूस किया कि आजकल मास्टर चुन्नी उसे गहरी ललचाई नजरों से देखता है,एक दिन जब जीजी-जीजा बाहर गए तो चुन्नी ने रमैनी से कहा रमैनी आज मैं तुम्हें एक नया गाना सिखाऊँगा। जरा तुम ध्यान से सुनना। चुन्नी गला खखार कर गाने लगे... निर्दयी तुझे दिल में बसाया क्यों अपना सुख-चैन गँवाया क्यों मेरी कादारी की हर पल परीक्षा ली तूने अपनी बेवफाई को हर पल छुपाया तूने गाना गाते-गाते मास्टर चुन्नी का चेहरा तन गया, आँखे लाल हो गईं, वह रमैनी को अपने पास खींचते हुए बोला रमैनी, मैं तुम्हारे लिए कितना पागल हूँ। मैं तुम्हें कैसे बताऊँ। मैं तुम्हें नाचने गाने वालियों में रानी बना दूँगा, तुम्हारे दाम बढ़ जाएँगे, नोटों की बरसात हो जाएगी। बस एक बार मेरी हो जाओ, रमैनी की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। उसे मास्टर के रूप में भेड़िया नजर आया। रमैनी मास्टर को धक्का मार एक ओर खड़ी हो गई और चिल्लाकर बोली क्या करते हो मास्टरजी। मैं तो आपकी बेटी के बराबर हूँ, मास्टर अपना वार उलटा जाते देख गुस्से से बेकाबू होकर बोला 'साली, हरामजादी, नखरे दिखाती है। बेटियाँ, तेरे जैसी थोड़े ही होती हैं। तेरे जैसी तो बस रंडी होती है। आज नहीं तो कल तुझे रंडी बनना ही है तो मुझसे ही रिश्ता क्यों नहीं बना लेती। किसी को पता भी नहीं चलेगा। वासना में अंधे गुरुजी ने रमैनी को झपट्टा मार नीचे गिरा लिया। अपने पैने पंजों से रमैनी की देह लहुलुहान कर दी। आखिरकार बाज अपने मकसद में कामयाब हो ही गया।

मास्टर चुन्नी शरीर के साथ उसके मन पर भी घाव छोड़ गया। उसी दिन से रमैनी का नया जन्म हो गया। उसने अपने औरत होने के डर को जीत लिया, अब उसके सामने कैसा भी आदमी आए, वह नहीं डरती थी, बल्कि वह परिणाम को जानती थी कि क्या होगा।

रमैनी पूरे पाँच दिन बिन खाए-पिए चारपाई पर आँसू बहाती रही। अंत में दृढ़ निश्चय के साथ सोना जीजी से बोली, 'जीजी, अब हमारा कमरा ठीक करा दो। हम अलग काम करेंगे। रमैनी अब रमैनी देवी बन गई। जल्दी ही उसके रूप, आवाज और नैन-सैन का डंका चारों ओर बजने लगा। वह आँखों में सुरमा डालकर, पान मुँह में दबाकर जब अपनी पिनक में गाती, 'का से इनायत से चोट लगती है, बिखरा फूल हूँ हवा से चोट लगती है।

तो लोग उस पर नोटों की बरसात करने लगते, उसकी आवाज की कटार लोगों के दिल को छेद देती। ऐसे ही उसके रूप और आवाज की कटार उसके एक ग्राहक रामअवतार ठाकुर के दिल में उतर गई। पतला-दुबला रामअवतार अपने दोस्त के साथ रमैनी के गाने की तारीफ सुनकर आया था। पर रमैनी का रूप रंग, आवाज पर मुग्ध हो वहीं रुक गया। रमैनी को भी अच्छा लगा कि कोई उसके सिर पर है, रमैनी का गाना केवल रामावतार के लिए ही रह गया, रमैनी को लगा यही जीवन अच्छा है। रमैनी रामअवतार के साथ घर बसाने के सपने देखने लगी। जब रामअवतार ने रमैनी से एक दिन विवाह का प्रस्ताव रखा तो रमैनी को अपने जीवन की सार्थकता नजर आने लगी। अपने मनोभावों को दबाते हुए उसने कहा–'ठीक है हमें शादी तो करनी ही है तो तुमसे ही क्यों ना करे तुम हमारी पहली पसंद हो, पर हमारी एक शर्त है, हम तुम्हारे माँ बाप के घर जाकर रहेंगे। उनकी बहू और तुम्हारी पत्नी बनकर, रखैल बनकर नहीं।' रामअवतार रमैनी के इस रूप से वाकिफ नहीं था। वह उसकी शर्त सुन चिंता में पड़ गया, उसे डर था रमैनी को गाँव ले जाने से उसके पुरखों की इज्जत मिट्टी में मिल जाएगी, उसकी थू-थू हो जाएगी। ठाकुर पर रमैनी को पाने का भूत सवार था इसलिए उसने अपने शादी-शुदा होने की बात भी छुपाई थी। रामअवतार के भीतर बैठे डर और भीरुता ने उसके अंदर सोए पुरुषत्व को जगा दिया। उसने हिम्मत बटोरते हुए रमैनी को कहा-'गाँव में हमारी पत्नी है, हमारे माता-पिता है। क्या तुम उन के साथ रह सकोगी? रह सकोगी तो चलो? नहीं तो हम तुम्हें यहाँ कोई कमी नहीं रहने देगे।' रमैनी तो जैसे आसमान से जमीन पर गिरी। अगर रामवतार शादीशुदा है तो पहले क्यों नहीं बताया। उसने कभी नहीं चाहा था कि वह ऐसे आदमी के साथ रहे जो पहले से शादीशुदा हो। उसके साथ बड़ा धोखा हुआ है। पर अब वह क्या करे। रमैनी के लिए इधर कुआँ उधर खाई वाली स्थिति थी। वह कुएँ से बचती तो खाई में गिरती। मरना दोनों ही स्थिति में था। उसने मन में सोचा जब ओखली में सिर दिया तो मूसल से क्या डर. दृढ़ निश्चय से वह रामअवतार से बोली–'तो ठीक है हम गाँव जरूर चलेंगे पर हमारी एक शर्त है। जितने बच्चे तुम्हारे ठकुराइन से होंगे, उतने ही हमसे भी होंगे, जितनी जमीन ठकुराइन के बच्चों की होगी, उतनी ही मेरे बच्चों की भी। अगर तुम्हें ये शर्त मंजूर है तो मैं चलने को तैयार हूँ. और जैसा तुम कहोगे वैसा ही करूँगी।' रामअवतार किसी तरह रमैनी को खोना नहीं चाहता था, इसलिए उसने रमैनी की सभी शर्ते मंजूर कर ली।

रामवतार ने रमैनी को सामान बाँध ने को कहा। गाँव पास आते ही रामअवतार ने रमैनी को घूँघट काढ़ने को कहा। गाँव पहुँचते ही शोर मच गया रामवतार नौटंकियाँ वाली को ब्याह लाया है। जिसने जहाँ जिस अवस्था में सुना वहीं से भागा चला आया। घर के सामने हुजूम लग गया। माँ-बाप ने रामअवतार से सारे संबंध तोड़ लिए। धीरे-धीरे दिन बीतने लगे. हवेली उसे बंद कोठरी के समान लगने लगी। हवेली में ठकुराइन का व्यवहार बड़ा अजीब था, वह ठाकुर से बात न करती थी। रमैनी से तो वह बोलती-बतियाती, हँसती-खिलखिलाती पर ठाकुर को पास न आने देती। रमैनी के लाख पूछने पर भी वह अपने मन की थाह ना लेने देती। ठकुराइन का रहस्यमयी व्यक्तित्व रमैनी की समझ से परे था। एक दिन तो हद हो गई, उसने रमैनी को ठाकुर के कमरे मे घुसा दिया। वह रात-दिन इसी उधेड़ बुन मे रहती आखिर ठकुराइन ठाकुर से बात क्यों नहीं करती? साल दर साल बीत गए। रमैनी की गोद दो बच्चों से भर गई। गाँव में होली का गुल-गुपाड़ा मचा था, ठाकुर का भी पूरा परिवार आया, उसके तीनों के तीनों भाई आए. ठकुराइन बड़ी थी। देवर भाभी के पैरों में गुलाल डालते रहे है, यह क्या बीच वाले ने भाभी के पैरो में गुलाल क्यों नहीं डाला। इसी सोच में रमैनी चूल्हा जलाने के लिए लकड़ी लेने घर के पीछे की कोठरी में गई। ये क्या कोठरी में देवर भाभी। ठकुराइन अचानक रमैनी को कोठरी में आया देख घबरा गई। ठकुराइन के इस रूप को देख रमैनी ने घृणा से मुँह फेर लिया। उफ् तो ये है अपने को बड़ी बिरादरी कहने वालों के चरित्र। वह कोठरी से बाहर निकलने के लिए उठी, तभी ठकुराइन रमैनी की बाजू पकड़ बोली-'तुम जानना चाहती थीं ना, मैं ठाकुर से क्यों नहीं बात करती तो सुनो मेरी पसंद ठाकुर का छोटा भाई सुखबीर था, जो तुम्हारे सामने खड़ा है। पर ठाकुर को मैं पसंद थी।

ठाकुर ने मेरे गरीब माँ-बाप को रुपयों की थैली दिखाकर खरीद लिया। सबकुछ जानते हुए भी निर्दयी ने हमारा प्यार तोड़ दिया। मुझसे जबरदस्ती शादी कर ली। अग्नि साथ फेरे लेते समय मैंने कसम खाई थी कि आज से मैं इसके घर रहूँगी, मगर पत्नी बनकर नहीं, बल्कि दासी की तरह। प्राण जाने तक अपना तन और मन ठाकुर को कभी नहीं दूँगी। यह कहते-कहते ठकुराईन की आँखों से आँसू आ गए। वर्षों से जमा दुख आज मौका पाते ही मोम की तरह पिघलने लगा।

अब ठाकुर का असली रूप उसके सामने था। आज उसकी समझ में आया ठकुराइन क्यों ठाकुर से बचती है। क्यों उसके कमरे में ठाकुर को भेज कुंडी लगा देती है... कि ठाकुर का प्रेम उसके लिए बस एक मजबूरी था, सब कुछ एक नाटक भर था। रमैनी को यह सोचते ही रुलाई आ गई कि वह उसकी वासनापूर्ति के लिए शिकार बनी थी। उस दिन से रमैनी का मन ठाकुर के घर से उठ गया वह अनमनी-सी रहने लगी। एक दिन उसने ठाकुर को कहा, 'अब मैं इस घर में नहीं रहूँगी। मुझे जीजी के पास छोड़ दे।'

ठाकुर ने लाख मनाने की कोशिश की पर वह शहर आ ही गई। उसने ठाकुर को कहा चिंता मत करो हम तुम्हारे ही नाम की ही माँग भरेंगे तुम हमें खर्च भेज दिया करो। एक साल तक ठाकुर का आना-जाना रहा, फिर उसका आना-जाना बंद हो गया। पहली लड़की पाँच साल की, दूसरा लड़का तीन साल का और तीसरा एक साल का। खर्च केसे चले, गहने बेचकर घर का खर्च चल रहा था। आज ठाकुर फिर घर आया है शराब पीकर। छोटे बच्चे को बुखार है। ठाकुर बार-बार नशे में चिल्ला रहा है ये मेरा नहीं है, साली रंडी ये किसका पाप है, बोल ये किसका पाप है? रमैनी ठाकुर के इस रूप को देखकर क्षुब्ध है, ठाकुर बच्चे को रमैनी के हाथ से छीनकर फेंकना चाहता है, अब उसके अंदर ठाकुर के अत्याचार सहने की सीमा समाप्त हो रही थी। वह गुस्से से थर्रा उठी, वह ठाकुर से गरजकर बोली, 'खबरदार अगर मेरे बच्चे को हाथ लगाया तो तेरा खून कर दूँगी, मुझे रंडी कहने वाले तू कितना बड़ा भड़वा है अपने आप से पूछ।' रमैनी का गुस्सा सातवें आसमान पर था। वह रामअवतार की छाती पर चढ़ बैठी और गुस्से में उसे गाली देते हुए तड़ातड़ थप्पड़ों से पीटने लगी। उस दिन ठाकुर की बड़ी बेइज्जती हुई। उसने फिर कभी लौटकर मुँह नहीं दिखाया। अब अकेली रमैनी नाच-गा अपने बच्चे पाल रही है। आज जब लड़की ने कहा कि मैं स्कूल नहीं जाऊँगी, तो रमैनी क्रोध से भर उठी। उसने मन में कसम खाई कि वह अपने बच्चों को पढ़ा कर रहेगी चाहे जो भी बाधा आए। वह मीनू का हाथ खींचते हुए बोली, 'चल दिखा मुझे, कौन है वो टीचर जो तुझे पीछे बैठाएगी, गोबर गणेश कहेगी उसे अब मैं देखूँगी।'

रमैनी मीनू का हाथ पकड़े स्कूल की तरफ जा रही थी अपनी तीसरी कसम पूरी करने।❑

तथागत बुद्ध का महिलाओं के लिए दृष्टिकोण*

अजान सुजातो के अनुसार, प्राचीन ग्रंथों में गरुधम्मों में सबसे कठोर गरुधम्म, जिसमें प्रत्येक भिक्षुणी को प्रत्येक भिक्षु को प्रणाम करना अनिवार्य है, को बुद्ध ने उस समय की प्रथा के कारण स्थापित किया था। आधुनिक विद्वान इस बात पर संदेह करते हैं कि यह नियम वास्तव में बुद्ध के समय का है भी या नहीं। उनका मानना है कि यह नियम बाद में बनाया गया होगा। यह एक संभावित तर्क हो सकता है क्योंकि ये नियम तभी लिखे गए जब लोग साक्षर होने लगे थे। प्राचीन काल में, हम जानते हैं कि पुरुष सबसे पहले साक्षर हुए थे। महिलाओं को यह अवसर बहुत बाद में मिला। इसलिए, यह संभव है कि ये नियम पुरुष प्रधान समाज द्वारा लिखे गए हों। हम मान सकते हैं कि सत्ता में रहने वाला व्यक्ति निश्चित रूप से ऐसे नियम लिखेगा जो उसके हित में हों। पुरुषों ने महिलाओं की तुलना में अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए ये नियम लिखे होंगे। इसके अलावा, जैन धर्म में भी ऐसा ही एक नियम मिलता है। गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के अभिलेख पाली ग्रंथ के अगन्ना-सूत्र के कुछ टीकाकार इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि यह मानव जाति के पतन के लिए महिलाओं को जिम्मेदार ठहराता है। यह दृष्टिकोण एक लंबी चर्चा का विषय हो सकता है। मेरा मानना है कि यह महिलाओं की नहीं बल्कि पुरुषों की इच्छाएं हैं जिनके कारण ऐसा पतन हुआ है। मेरा दृष्टिकोण बौद्ध व्याख्या में भी अपनी जगह पाता है क्योंकि यह भी महिलाओं के बजाय सामान्य रूप से वासना को पतन का कारण बताता है।

https://doi.org/10.4236/oalib.1103578

*अर्चना पौडेल और क्यून डोंग.(साउथईस्ट यूनिवर्सिटी, ननजिंग, चीन)बौद्ध धर्म में महिलाओं के साथ होने वाला भेदभाव : एक नैतिक विश्लेषण, ओपेन एक्सेस लाइब्रेरी जर्नल, खंड 4, अंक 4, अप्रैल 26, 2017

दंश

सुमित्रा मेहरोल
मो. 9650466938

'बहारों फूल बरसाओ मेरा महबूब आया है' बैंड बाजों की धुन के साथ बजती इस मधुर स्वर लहरी के कारण मालती की आँख खुल गई। भोर होने को थी, उसने खिड़की से बाहर देखा बाहर अभी धुंधलका ही था। सूर्य महाराज ने अपनी रश्मियों को उतरने का आदेश अभी नहीं दिया था।

बगल में पति गहरी नींद में सोए थे। घर के अन्य सदस्यों के इतने सवेरे उठने का तो सवाल ही नहीं उठता या क्या पता बैंड बाजों की आवाज से उनकी भी नींद खुल गई हो। वैसे इतवार है आज, किसी को ऑफिस तो जाना नहीं जाग भी गए होंगे तो करवट बदल फिर सो जाएंगे। एक ही दिन तो मिलता है बेचारे बच्चों को कुछ आराम का, वरना रोज तो जो सुबह के निकलते हैं फिर आने की कुछ खबर नहीं होती। किसी दिन जल्दी आ भी जाएं तो यह मरे फोन घर को भी ऑफिस में तब्दील कर देते हैं वही टारगेट, क्लाइंट, प्रोजेक्ट की बातें, अब प्राइवेट नौकरी में यही सब होगा। सरकारी नौकरी जैसा चैन थोड़े ही है, सरकारी में तो सुबह टाइम पर आए शाम को समय पर ही बैग उठा घर जाने के लिए स्वतंत्र हो। यह सब सोचते -सोचते काफी देर हो गई। सूरज के सुहावने प्रकाश से धीमे-धीमे घर जगमगाने लगा।

बैंड बाजों के स्वर अब थम गए थे, शायद दुल्हन का घर में प्रवेश हो गया होगा। कल उनके पड़ोस में रहने वाले शर्मा जी के बेटे पवन का विवाह था। बारात पास के ही बैंक्विट हॉल में गई थी। शर्मा जी ने साफ-साफ कह दिया था लड़की वालों से कि वह बस में ढोकर बारातियों को अन्यत्र कहीं नहीं ले जाएंगे। जब पास में ही इतना अच्छा बैंक्वेट हाल है तो तुक भी क्या है दूर जाने की, हां थोड़ा महंगा जरूर है पर भाई शादी तो जिंदगी में एक ही बार होनी है सो महंगा सस्ता सब चलता है। पड़ोस के नाते विवाह का न्योता उन्हें भी मिला था पर घुटनों के दर्द के मारे वह तो बारात में जा ना सकी थी और दोनों बेटों को अपने ऑफिस के झंझटों से ही छुटकारा ना था। उनके पति ही बारात में शामिल हुए थे और द्वाराचार के बाद खाना खाकर रात लगभग बारह बजे घर लौट आए थे।

मालती पलंग से उठ खड़ी हुई, पैरों में चप्पल डाल रसोई तक गई। दो गिलास पानी पिया और ड्राइंग रूम का दरवाजा खोल बरामदे में आ गई फिर मुख्य गेट खोल बाहर गली में झांकने लगी। थर्माकोल की जूठी प्लेटों के अंबार, बुझी हुई भट्टी, कटी हुई सब्जियों और फलों के छिलकों के ढेर उनके घर के बिल्कुल सामने स्थान-स्थान पर फैले थे। जूठन पर गली के कुत्ते मुँह मार रहे थे। जूठन के अंबारों से उठती बदबू के भभके ने सुबह की शीतल वायु में जहर घोल दिया।

उनका घर गली के बिल्कुल आखिर में था। उसके बाद गली बंद थी। आसपास किसी के घर कोई भी आयोजन होता तो हलवाई की भट्टी उनके घर के सामने ही लग जाती थी। ऐसे में दिन भर तरह-तरह के व्यंजनों के पकने की खुशबू से उनका घर महक उठता। पहलोपहल मेजबान घर की महिलाओं के भट्टी पूजने की स्वर लहरियों से पूरा माहौल उत्सवमय हो जाता। उन्हें अच्छा लगता यह सब, लगता उन्हीं के घर यह सब आयोजन हो रहा है, पर कार्यक्रम खत्म होने के बाद हलवाई द्वारा छोड़े गए कूड़े कचरे के ढेर, प्याज अदरक लहसुन व तरह-तरह की सब्जियों के छिलके, तेल घी के निशान, जूठे कप गिलास और भी ना जाने क्या-क्या, कई-कई दिन तक उनके द्वार पर पड़े उनकी मुश्किलों में इजाफा करते रहते। गर्मियों में तो कचरे और गंदगी से उठती बदबू और मक्खी मच्छरों से उनकी जान सांसत में आ जाती। अजीब स्थिति होती थी तब, ना उगला जाता था ना निगला। पड़ोसी से कुछ कहने में संकोच होता था कि वह यह ना सोचने लगें कि पड़ोस का इन्हें जरा लिहाज नहीं है शादी ब्याह में यह सब अव्यवस्थाएं तो होती ही रहती हैं, जरा सब्र नहीं है इनको, अरे एक-दो दिन बाद कचरा उठाने वाली आएगी तो ले जाएगी यह सब पर वह एक-दो दिन उनके लिए दूभर हो जाते। कैसे कोई घर के बिल्कुल सामने पड़ी गंदगी और बदबू को बर्दाश्त करे, कई दिन तक बदबू और मच्छरों को सहना असह्य था। बहुत बार किसी को रुपए देकर उन्होंने खुद अपने द्वार पर पड़ी गंदगी उठवाई है, और फिर महरी से द्वार के सामने वाली जगह पर खूब सारा पानी डालकर धुलवाया है।

उसने गली में झांका, कुछ दूर लगे टेंट में बैंड बाजे वाले बैठकर चाय पी रहे थे। शादी वाले घर में आए कुछ रिश्तेदार भी वहां मौजूद थे।

घर के लोग दुल्हन को भीतर ले जा चुके थे। दुल्हन की मुँह - दिखाई के लिए उन्हें भी जाना होगा। घुटनों में दर्द के कारण बारात में चाहे वह जा ना पाई हों पर दुल्हन को आशीर्वाद और शगुन देने तो उन्हें जाना ही चाहिए। पड़ोस का मामला है और दूल्हा पवन कौन पराया है उनके बेटे समान ही तो है। उनके सामने ही तो छोटे से बड़ा हुआ है और अब अपने गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर रहा है।

आज तो दुल्हन शायद पग फेरे की रस्म के लिए मायके जाए सो कल दिन में किसी समय वह शर्मा जी के घर हो आएगी, यह सोच मुख्य फाटक की कुंडी लगा वो घर में आ गई। तब तक उनके पति उठ चुके थे और वॉश बेसिन के सामने खड़े दांत साफ कर रहे थे। उनके बाद मालती ने भी ब्रश कर मुंह धोया, रसोई में जाके चाय बनाई और ट्रे में रखकर ड्राइंग रूम में पति के पास आ बैठी।

'रात तो तुमने बताया नहीं कैसी रही शादी।' प्याला पति की ओर बढ़ाते हुए मालती ने पूछा?

'बहुत शानदार'

'कुछ ना पूछो'

'पंडितों ने दिल खोलकर पैसा लगाया है। क्या तो सजावट थी और खाने की तो इतनी वैरायटी कि चीजों को देखकर ही मन भर जाए।'

चाय की चुस्की लेते हुए उनके पति ने कहा, 'अच्छा और दुल्हन कैसी है?'

'बढ़िया है, बहुत सुंदर, जोड़ी अच्छी है। पवन कौन कम गबरू जवान है।'

'चलो अच्छा है, कल दिन में, मैं भी बहू देख आऊंगी।' मालती ने कहा।

'अरे सुनो।'

'तुम किसी को पकड़कर सबसे पहले घर के सामने पड़ा कचरा उठवाओ। गर्मी का मौसम है, मारे बदबू के चैन नहीं पड़ रहा। ब्याह वाले घर के लोगों की अकल पर तो पत्थर पड़ गए हैं शायद दूसरे के द्वार पर पड़ी गंदगी जैसे उन्हें दिखती ही नहीं। वैसे दिखावे में लाखों रुपए लुटा देंगे पर पड़ोसी के द्वार पर फैलाई गंदगी को उठवाते जोर पड़े हैं इन्हें, अंधे हो जावे हैं शायद,' भुनभुनाते हुए मालती ने कहा।

'दिन तो ठीक से चढ़ने दो, फिर देखता हूं।' कह उनके पति फिर अखबार में गुम हो गए।

इतने में महरी आ गई। मालती उसके साथ व्यस्त हो गई। बच्चों के उठने पर उनसे बतियाते, खाते-पीते कैसे दिन बीत गया पता ही ना चला।

बेटे उनके लाखों में एक थे। मालती का परिवार जाति व्यवस्था के अनुसार निम्नतर पड़ता था।

अगले दिन उठते के साथ मालती जल्दी-जल्दी घर के काम निबटाने लगी। ग्यारह बजे सुबह तक घर के कामों से निबट, तैयार हो, वह बहू को शगुन दे आएगी। मन ही मन उन्होंने तय किया था।

पति बच्चों को आज ऑफिस जाना था तो जल्दी-जल्दी उनके टिफिन और नाश्ता बना वह महरी की राह तकने लगीं। नियत समय पर वो आई।

नहा तो मालती पहले ही चुकी थीं, जब तक यह काम कर रही है तब तक मैं तैयार हो लूं, यह सोच वह बाल संवारने लगी। फिर चेहरे पर क्रीम मली, आंखों में काजल लगाया, माथे पर बिंदी चिपका वह साड़ी बदलने लगीं। शगुन के पैसे लिफाफे में रख छोटे पर्स में डाल वह महरी के काम खत्म होने का इंतजार करने लगीं। इतनी देर में वो बर्तन धो, झाड़ू लगा चुकी थी और अब कमरों में पौंछा लगा रही थी।

'मिथिलेश पंखा चला ले, जल्दी सूख जाएगा!'

'अच्छा बीवी जी' कह मिथिलेश ने पंखे चल दिए।

मिथिलेश के जाते ही मालती ने मुख्य द्वार पर ताला जड़ा और पर्स हाथ में लिए शर्मा जी के घर की ओर चल दी। शर्मा जी का घर गली में दो घर छोड़कर ही था।

शादी वाले घर की गहमागहमी और उल्लास पूरे घर में व्याप्त था। दूर से आए मेहमान अभी विदा नहीं हुए थे। मर्द बैठक में मंडली जमाए थे और वहीं चाय के दौर चल रहे थे। फल के टोकरे, मिठाइयों के डिब्बे इधर-उधर रखे थे। भीतर वाले कमरे में बहू को घेरे हुए स्त्रियों का जमघट था। दूर पास की रिश्तेदारी की स्त्रियां और उनके मोहल्ले की भी चार-पांच पड़ोसिनें भीतर वाले कमरे में मौजूद थीं। उनके कमरे में प्रवेश करते ही सबकी नजरें एक बारगी उन पर पड़ी। पड़ोसिनों ने उन्हें देख हल्की-सी मुस्कान से उनका स्वागत किया। कमरे के बाहर चप्पल उतार वह पड़ोसिनों के ग्रुप में शामिल हो गई।

तभी शर्मा जी की पत्नी ने कमरे में आई।

'बहन जी, बेटे का ब्याह बहुत-बहुत मुबारक हो।'

गर्मजोशी से मालती ने शरमाइन को बधाई दी। अति व्यस्त शरमाइन ने उन्हें देखकर भी अनदेखा-सा किया और अलमारी की ओर बढ़ गई और उसे खोलकर जल्दी-जल्दी कुछ खोजने लगीं !

उनकी बेरुखी से मालती का मन तनिक बुझ-सा गया पर फिर उन्होंने मन को समझाया शादी के इंतजामों और थकान के कारण मेजबान को प्राय: ऐसा हो जाता है।

दुल्हन भारी साड़ी और गहने पहने सजी-धजी बैठी थी। लड़की खासी सुंदर थी। झीनी साड़ी का छोटा-सा घूंघट दुल्हन के मुख पर पड़ा था पड़ोसिनें शगुन का लिफाफा दुल्हन को देने लगीं, उनकी देखा देखी मालती ने भी लिफाफा दुल्हन को पकड़ा दिया और 'दूधो नहाओ पूतो फलों' का आशीर्वाद दिया।

शगुन के बाद अन्य पड़ोसिनों के साथ उसने भी शर्माइन से जाने की इजाजत मांगी तब सास के इशारे पर बहू उठी और मोहल्ले की स्त्रियों के चरण स्पर्श करने लगी। उन समेत मोहल्ले की पांच स्त्रियां वहां मौजूद थी। निकट खड़ी सास की मौजूदगी में दुल्हन बारी-बारी सब स्त्रियों के पैर छूकर आशीर्वाद ले रही थी। मालती के साथ खड़ी गुप्ताइन का पैर छूने के बाद जैसे ही दुल्हन उनके पैर छूने की खातिर उनकी और बढ़ी सामने खड़ी शर्माइन ने आंखों ही आंखों में दुल्हन को उनके पैर न छूने का इशारा किया।

चरण स्पर्श के लिए उनकी ओर बढ़ते दुल्हन के कदम एक पल को ठिठक गए फिर दूसरी ओर खड़ी महिला की ओर बढ़ गए। उसके पैर छू वह अपनी पायल छनकाती और साड़ी संभालती अपने स्थान पर जा बैठी। सन्न खड़ी मालती के शुभ आशीष मालती के कंठ में ही अटके रह गए। एक पल को वह अवाक रह गई पर अगले ही पल सब माजरा समझ गई। इस बीच साथ खड़ी पड़ोसिनों के चेहरे अर्थपूर्ण मुस्कानों से खिल गए। मालती अपमान से दग्ध हो उठी।

'क्या हुआ अनुज की मम्मी, कल तुम बारात में ना दिखाई दीं भाई साहब तो थे पर तुम क्यों नहीं आई।' दूसरी गली में रहने वाली एक स्त्री उन्हें समीप पा पूछ रही थी।

'मेरे घुटनों में बहुत दर्द था इसलिए ना आ सकी बंटी की मम्मी, और बच्चों को छुट्टी ना मिली, पर पड़ोस का मामला था सो बारात में शामिल होने के लिए अनुज के पापा को मैंने भेज दिया था। अब सोचा बेटे के ब्याह की बधाई भी दे आऊं और बहू भी

देख आऊं।' मालती ने जवाब दिया '–बहुत अच्छा किया बहन जी और नहीं तो क्या पड़ोस में तो आना-जाना ही चाहिए।'

मालती उस स्त्री से औपचारिक बातचीत तो कर रहीं थी पर मन उनका हाल के घटनाक्रम से बहुत क्षुब्ध था।

हंगामा खड़ा करने का उनका कोई मकसद न था किंतु एकदम चुप्पी साधना भी उन्हें अनुचित लग रहा था। शर्माइन के दोगले व्यवहार का उसे एहसास कराना जरूरी था और कुछ देर बाद उन्हें मौका भी मिल गया।

कुछ सामान निकालने के लिए शर्माइन स्टोर की ओर जाती हुई दिखी उसे पता था कि इस घर का स्टोर पीछे की तरफ कुछ आड़ में है वह भी शर्माइन के पीछे हो लीं! शर्माइन अपनी धुन में इतनी व्यस्त थी कि उनके आने का उसे तनिक भी आभास ना हुआ।

स्टोर में पहुंचते ही मालती तनिक रोष से बोली, 'क्यों बहन जी, मुझ में के कांटे लगे थे जो मेरे पैर छूने से बहू को तुमने रोक दिया। चार लोगों में म्हारी बेज्यती करके तुम्हें क्या मिला।'

मालती की तिलमिलाहट चरम पर थी, शर्माइन को इस अप्रत्याशित वार की अपेक्षा न थी। उसे कुछ न सूझा कि क्या कहे सो अनजान बनने का नाटक करती हुई हकला कर बोली, 'अरे क्या हुआ? क्यों नाराज हो रही हो इतना?'

किंतु उसका फक पड़ा हुआ चेहरा और लड़खड़ाती जुबान सारा भेद खोल दे रही थी।,'सब जानती हो, सब पता है तुम्हें कि क्या हुआ है!' 'घर बुलाकर बेज्जती करना क्या अच्छी बात है।'

इतना कह मालती अपने घर लौट आई, पर आते-आते उसके मन का गुब्बार फूट ही पड़ा, वह बोली, 'जो कूड़ा और गंदगी तुमने मेरे द्वार पर बिखेरी है उसे इसी दम उठवाओ वरना पुलिस और नगर निगम में फोन कराती हूं।

'हलवाई मेरे द्वार के सामने बिठाते तो ध्यान ना आया होगा कि किसका घर है और बहू से पैर छुवाते...।' कहकर मालती जा चुकी थी, पर पीछे रह गई शर्माइन को एक नई चिंता दे गई, उसे कुछ ना सूझा कि क्या जवाब दें। कहीं यह शैतान की खाला सच में ही पुलिस ना बुला ले। लड़कों से कहती हूँ, जल्दी से कूड़ा उठवाने की व्यवस्था करें। बेटे के ब्याह के अवसर पर घर-गाँव से आए रिश्तेदारों के बीच उन्हें कोई बखेड़ा नहीं पैदा करना।❑

पृष्ठ सं. 19 का शेष भाग

हुआ।'

मैंने हैरत के साथ कहा, 'सर आपने ऊपर रूम नंबर सात में आकर नहीं देखा कि मैं क्लास ले रही हूँ। बिना देखे आप कैसे कह रहे हैं कि मैंने क्लास नहीं लिया? मैंने समय पर क्लास में जाकर पीरियड लिया।

सर अपनी बात रखने के लिए कहने लगे, 'आप रोज ही लेट आती हो, आपका क्लास नहीं होता है।' फिर तो मुझे बहुत गुस्सा आ गया , मैं भूल गई कि वे अधिकारी है, मैं गुस्से में जोर से बोली, 'सर आप हमेशा मुझे ऐसा कहते हैं, प्राचार्य जी से मेरी झूठी शिकायत करते हैं। आप मेरे साथ ही ऐसा क्यों करते हैं? आप मेरे साथ भेदभाव करते हैं, मेरे साथ जातिभेद मानते हैं। मुझे जानबूझकर परेशान करते हैं?'

जब बोलना शुरू किया तो आवेश बढ़ता गया, मगर होशोहवास दुरुस्त थे। मैंने सोचा जब इतना बोल ही दिया है तो बाकी का भी बोल देना चाहिए, जो होगा, देखा जायेगा, आफिस के चपरासी बाबू प्राध्यापक सभी की भीड़ लग गई थी। सभी पूछ रहे थे, 'क्या हुआ? क्या हुआ?' सर को गुस्से के साथ देखते हुए मैंने जोर से कहा, 'सर! ये आपका कॉलेज नहीं है, आप यहाँ के मालिक नहीं हो। आपसे बड़े भी कोई हैं। मैं उनके पास जाऊंगी। उनके पास जाकर आपकी शिकायत करूंगी कि आप मेरे साथ भेदभाव, जातिभेद करते हैं। मैं प्रिंसिपल से कहूंगी। मैं मैनेजमेंट से जाकर कहूंगी कि आप यहाँ मेरे साथ अन्याय करते हैं। मुझे जानबूझकर परेशान करते हैं।' ऑफिस में सारे लोग चुप थे, सुपरवायजर सर बगलें झांकने लगे थे। मैंने अपनी बात खत्म की और ऊपर स्टाफ रूम में आ गई।

तबसे सुपरवायजर सर मेरे साथ बहुत अच्छा व्यवहार करने लगे थे। वे मेरे साथ हमेशा सम्मान के साथ बातें करते। मेरे घर परिवार के विषय में कुशलक्षेम पूछते रहते थे। मगर आज कुटिलतावश वे पुनः वैसी ही बातें कर रहे थे।

सर ने अपनी बात दोहराते हुए, एक बार फिर कहा, 'मैडम देखना, एक दिन लोग जातपांत को भूल जायेंगे।' यह सुनते ही मैंने ऊंची आवाज में कहा, 'सर, कार रुकवाइए।' उनकी इन बातों को सुनकर मुझे फिर से गुस्सा आने लगा। उनके चेहरे पर मुझे वही पुरानी कुटिल मुस्कान दिखाई दी। कार धीरे-धीरे पेट्रोल पंप के पास जाकर रुकी।❑

कसक

डॉ. पूनम तुषामड़
9278944156

जब छोटी थी तो, अम्मा (दादी)को अक्सर कहते सुना 'लड़कियां तै आटे की लोई बरगी हों सै, जै बाहर रखो तो चील कव्वों का डर, अर जै भीतर रखो तो चूहों का डर' पर न जाने क्यों दादी की इस कहावत पर कभी कान नहीं धरे। कभी उनसे इस का अर्थ नहीं पूछा। युवा हुई तो खुद ही इस कहावत का अर्थ दादी की रोक-टोक के रूप में ले लिया।

जब इस कहावत के मायने समझ में आए तो स्त्री रूप में मेरा समूचा अस्तित्व जैसे किसी अनजान असुरक्षा बोध से सिहर उठा, किंतु फिर से कुसुम अपने आत्मविश्वास को जुटाकर आगे बढ़ती रही।

मैं अक्सर अपने आस-पास की बस्तियों में आती-जाती रहती हूं। जिस समाज या परिवेश में पल कर बड़ी हुई हूँ। उससे मेरा रिश्ता अंतस से जुड़ा है, इसलिए वहां के लोग उनका जीवन, औरतें, बच्चे, बुजुर्ग सब के दुख-सुख साझा करने जब तब पहुंच ही जाती हूँ। बहाना कोई भी हो, उद्देश्य एक ही होता है उनके जीवन के अनदेखे-अनकहे को सुनना, समझना, और जो बन पड़े, सो करना। इतना ही नहीं कई बार तो अपनी लेखनी को उनकी जुबानी कहना भी।

इस बार जब गई तो अकेली नहीं थी मेरे साथ मेरे कई साथी भी थे। हम महिलाओं के साथ होने वाली शारीरिक हिंसा, उत्पीड़न और बलात्कार जैसी घटनाओं पर वहाँ के लोगों के बीच चर्चा कर ही रहे थे। मेरी नजर महिलाओं के समूह के पीछे आकर खड़ी हुई लड़की पर पड़ी। मुझे वह लड़की अत्यंत बेचैन, उलझी-सी और बेहद घबराई सी महसूस हुई। मैंने आँखों के इशारे से उसे भी वहाँ बैठकर बात सुनने को कहा किंतु वह नहीं बैठी।

वहीं दरी पर बैठी उसकी सहेली जो उसकी हम उम्र भी थी, ने भी उससे वहीं बैठ जाने का आग्रह किया पर वह फिर भी खड़ी रही। एक-दो पास ही बैठी महिलाओं ने भी जब उसे कुछ डांटते हुए, बैठकर बात सुनने को कहा तो वह चिड़चिड़ा कर दूर हटते हुए कहने लगी, 'इस सब से क्या होगा? मुझे नहीं बैठना यहाँ।' उसके ये वाक्य मेरे अंतर्मन में कहीं बिजली से कौंध गए। मैंने उसी क्षण उसे बेहद गौर से देखा तो उसकी आंखों में अजीब

सा खौफ तैरता-सा महसूस किया। उसके चेहरे पर अजीब तरह के भाव आ-जा रहे थे, जैसे अपने भीतर की परेशानी, गुस्से, तनाव व बेबसी को वह बलपूर्वक रोकना भी चाहती हो और कहना भी। उसके भीतर का द्वंद्व उसकी झपकती आँखों और एक दूसरे पर बेवजह मसले जा रहे हाथों पर साफ तौर पर देखा जा सकता था।

मैंने अपने स्थान पर बैठे हुए ही आवाज देकर उसे अपने पास बुलाते हुए कहा, 'सुनो! क्या बात है, इधर आओ मेरे पास।' उसने उसी तनाव भरी नजरों से मेरी ओर देखा और कुछ सोचकर अपनी सहेली के पास ही बैठ गई। मेरी नजरें अब भी उसी पर टिकी थीं। न जाने क्यों पर अब मेरी नजर रह रह कर उस पंद्रह-सोलह साल की युवती पर अटक गई थी। गौरा रंग, सुनहरे बाल, सामान्य कद, स्वस्थ सामान्य देह, न अधिक पतली न अधिक मोटी। सामान्य नयन नक्श। सलीके से काढ़े बाल, इस्त्री किये हुए सलवार कमीज के ऊपर मैचिंग दुपट्टा लिए हुए वह देखने पर कोई पढ़ी-लिखी समझदार लड़की लग रही थी, जो वहां बैठी सभी महिलाओं और युवतियों में बिल्कुल अलग दिख रही थी।

मैं उसी क्षण अपनी जगह से उठी और उसके पास जाकर बैठ गई। मैंने उसके कंधे पर आत्मीयता से हाथ रखते हुए पूछा, 'क्या नाम है तुम्हारा?'

उसने अपने उसी चिड़चिड़े अंदाज में जवाब दिया, 'नाम बता कर क्या होगा?'

पास बैठी उसकी सहेली ने कहा, 'नाम तो बता दे।'

उसने उसको भी धीरे-से झिड़क दिया। फिर भी उस लड़की ने उसका नाम बताया 'कुसुम'।

मैं चूंकि अब उसके बिल्कुल नजदीक बैठी थी तो उसकी भीतर और बाहर की बेचैनी को महसूस कर पा रही थी। उसके एक-दूसरे मैंने उलझे कांपते हांथो पर अपना हाथ रखते हुए जब उसके चेहरे की ओर देखा तो न जाने क्या था उन आँखों में कि मैं अंदर से हिल गई।

कुसुम के दोनों हाथ अपने हाथों में लेते हुए मैंने उसे विश्वास दिलाने की कोशिश की कि मैं तुम्हारे साथ हूँ। तुम्हें किसी से भी डरने-घबराने की जरूरत नहीं है।

कुसुम, 'मैं कहां घबरा रही हूं? मैं क्यों घबराऊँ?'

मैंने उससे बड़े प्यार से पूछा, 'कुसुम तुमने अभी ये क्यों कहा कि इस सब से कुछ नहीं होने वाला।'

कुसुम थोड़ा घबड़ाते हुए ही बोली, 'नहीं-नहीं, कुछ नहीं कहा मैंने, मेरे मम्मी-पापा भी कहते हैं। मेरा दिमाग चल गया है, कुछ भी बोलती हूँ। गले में बंधे तावीज को पकड़ कर कहने लगी, 'देखो मैं बहुत बीमार हुई तो मम्मी ने गांव से ये तावीज मंगा कर बांधा है।'

उसके इस अजीब से व्यवहार से मैं थोड़ी परेशान हो उठी। फिर भी मैंने दोबारा उसी अपनत्व के साथ उससे पूछा, 'अच्छा बताओ कुसुम तुम्हें क्यों लगता है, इस सब से कुछ नहीं होगा?'

कुसुम मुझसे थोड़ा झेंपते हुए, 'हाँ तो क्या गलत कहा, आप लोग आज बात करके, भाषण देके चले जाओगे। क्या तुम किसी का कुछ बिगाड़ सकते हो। जब अपने ही दुश्मन हो जाएंगे तो तुम क्या कर लोगे, मैं या कोई क्या कर लेंगे।'

अब मुझे उसकी बातों से सचमुच खौफ नजर आने लगा। पास बैठी महिलाओं ने भी उसकी बातें सुनकर उसकी हिम्मत बढ़ाने के लिए कह दिया, 'बेटी घबराओ नहीं बेटी, अगर कोई बात है तो दीदी को बता दो। वे तुम्हारी मदद जरूर करेंगी।'

कुसुम, फिर साथ बैठी महिला की ओर देखकर कहने लगी, 'आंटी मेरी मम्मी को कुछ मत बताना वर्ना वो फिर मुझे गाँव भेज देगी। मुझे गांव नहीं जाना।'

मैंने वहां बैठी महिला जिसे वह आंटी कह रही थी पूछा, 'क्या बात है? क्या ये लड़की आपकी पड़ोसी है? आखिर ऐसी क्या बात है। जिसकी वजह से ये बहुत परेशान लग रही है। मुझे लग रहा है कि कोई तो बात है जिसे ये बताना भी चाहती है और छुपाना भी।'

उस महिला ने थोड़ा परेशान होते हुए बताया, 'ज्यादा तो पता नहीं है, हमें पर इसके घर में रोज ही लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। इसके माँ बाप दो-तीन साल से यहां किराये पर रहते हैं। मां फैक्ट्री में जाती है। बाप जाने क्या करे है। जब देखो नशे में धुत रहवे। इससे छोटा एक भाई और एक बहन भी हैं। पहले तो वे बालक ही माँ-बाप के साथ रहते थे। ये तो अभी सात-आठ महीने पहले ही गांव से आई है। जब से ये आई है, तब से इसकी माँ ज्यादा किसी से बात नहीं करने देती। कहती है बीमार है।

मैंने जब कुसुम को दोबारा इस दृष्टि से निहारा कि वह कहां से बीमार

दिखती है। तो मुझे असमंजस मे पड़ा देख कर उसी स्त्री ने धीरे से कहा, 'कोई ऊपरी चक्कर है।'

उस स्त्री के इस वाक्य ने मुझे खिन्न कर दिया। मैंने थोडी झुंझलाहट के साथ कुसुम की ओर देखा जो वहां उपस्थित मेरी दूसरी महिला साथी द्वारा बताई गई महिला उत्पीड़न की बातों को गौर से सुन रही थी। फिर न जाने क्या हुआ कि वह वहां बैठी अपनी सहेली को हाथ पकड़कर नीचे से उठाने लगी। मैंने थोड़ा पास आकर पूछा, 'क्या हुआ? उसे कहां ले जा रही हो तुम भी बैठ जाओ और सुनो।'

वह तुनक कर बोली 'इस सब से क्या होगा? ये सब हमें पता है। पुलिस भी ऐसे लोगों को कुछ नहीं करेगी।'

अब मेरा धैर्य डगमगाने लगा मस्तिष्क किसी अनहोनी की ओर संकेत करता महसूस हुआ। मैंने अपनी मित्र को पास बुला कर कहा, 'नीलम इस बच्ची के साथ कुछ तो समस्या है, न जाने क्यों मुझे लग रहा है, कुछ ठीक नहीं है। सो तुम आज की चर्चा को संभालो। मुझे इस बच्ची से बात करनी है।'

नीलम ने धीरे से कहा, 'तुम फिक्र मत करो। मैं सम्भाल लूंगी। तुम जाओ उससे बात करो। यहां सविता दी हैं मेरे साथ।'

मैं वापस मुड़ी तो देखा, 'कुसुम और वह लड़की अपनी जगह से उठ कर कुछ दूर खड़े हैं। कुसुम के साथ गई वह लड़की उस पर नाराज हो रही है। कुसुम से अपना हाथ छुड़ा कर वह वापस वही आकर बैठ गई।

मैंने महसूस किया कि कुसुम अब भी उसी जगह पर जस की तस खड़ी है। इस बार उसके चेहरे पर अजीब-सी विवशता है। मैंने उसके पास जाकर धीरे से पूछा, 'क्या हुआ, गई नहीं तुम? तुम तो घर जा रही थी ना?' उसने थोड़ा झिझकते हुए कहा, 'नहीं गई।'

मैंने फिर पूछा, 'लेकिन क्यों?'

कुसुम मेरे सवाल से झुंझला कर बोली, 'क्योंकि वो नहीं जा रही।'

मैंने उससे कहा, 'वो नहीं जाना चाहती तो तुम भी बैठ जाओ।'

कुसुम की झुंझलाहट उसके चेहरे पर ठहर गई थी, मेरे अनुरोध पर उसने कहा, 'मुझे नहीं बैठना यहां।'

मैं दरअसल उसे जानने का प्रयास कर रही थी, फिर भी मैंने कहा, 'अरे! तुम चली जाओ। वो थोड़ी देर में आ जाएगी।'

कुसुम थोड़ी घबड़ाते हुए अपने हाथों और पैरों को एक-दूसरे पर मसलते हुए बोली, 'मैं अकेली घर नहीं जा सकती। मुझे डर लगता है।'

मैंने थोड़ा सतर्क होते हुए पूछा, 'डर! किससे डर लगता है तुम्हें, दिन के समय में?'

कुसुम संकुचलता हुए बोली, 'किसी से नहीं।'

मैंने उसके दोनो हाथों को मजबूती से अपने हाथों में थामकर कहा, 'देखो कुसुम मैं चलती हूं तुम्हारे साथ, तुम बिल्कुल मत घबराओ। मुझे बताओ, किस से डर लगता है तुम्हें।

कुसुम ने थोड़ा लड़खड़ाते हुए कहा, 'वो घर पर पापा है न, उसने शराब पी रखी है। मुझे देखते ही गंदी गंदी गाली देता है। मम्मी घर पर नहीं है न। काम पर गई है। मेरे बहन-भाई भी स्कूल गए हैं मम्मी मना करके जाती है कि जब तेरा बाप घर पर हो, तू घर में मत जाना।' फिर उसने अपनी उसी सहेली की ओर इशारा करके कहा, 'जब तक मेरे भाई-बहन स्कूल से नहीं आते मैं उसके ही घर रहती हूं। ये भी स्कूल नहीं जाती। इसकी मां भी उसी फैक्टरी में काम करती है। इसका भी एक छोटा भाई है।' कहते हुए उसने मेरी ओर जैसे ही देखा। न जाने क्या था, उसके मासूम और विवश चेहरे में कि मैंने उसे बाहों के घेरे में ले लिया और कहा, 'चलो! तुम यहां नहीं बैठना चाहती तो हम कहीं ओर चलते हैं। मैंने उसे अपने साथ, वहां चल रहे कार्यक्रम से बहुत दूर पार्क में ले आई और एक बैंच पर इत्मीनान से बैठाया। फिर बेहद आत्मीयता और स्नेह से उसे विश्वास में लेकर कहा, 'कुसुम तुम बहुत प्यारी हो बिल्कुल अपने नाम की तरह। तुम तो बहुत बहादुर भी हो। समझदार भी। फिर तुम्हारी मम्मी क्यों तुम्हें मना करती हैं और तुम क्यों डरती हो अपने बाबा से उन्हें जोर से डांट दिया करो। खबरदार! जो मुझे गाली दी।'

कुसुम ने घबराते हुए कहा, 'नहीं नहीं! पापा बहुत गंदा आदमी है। वो मुझे मेरे मा..मामा को लेकर गालियां देता है। मम्मी से भी झगड़ता है। मां को और हमें मारता है।'

जब कुसुम ये बात कह रही थी, मैं उसे गौर से निहार रही थी। तभी मैंने देखा, मामा कहते हुए, उसके चेहरे के भाव बदल गए थे। अत्यंत घृणा से भरे भाव थे उसके चेहरे पर।

मैंने उसके चेहरे को प्यार से सहलाया उसके कंधे को प्यार से थप थपाते हुए एक हाथ से अपनी साथी को फोन करके कहा, 'हम कार्यक्रम में बांटने के लिए जो सामग्री लाए है

(फ्रूटी, छोटी पानी की बोतल और स्नैक्स के पैकेट) वे कुसुम के लिए किसी के हाथ भिजवाए शीघ्र।

साथी ने फोन पर कहा, 'ठीक है।' फिर तुरंत एक बच्चे के हाथ जहाँ हम बैठे थे, सामग्री भिजवा दी।

कुसुम को थोड़ा नॉर्मल करते हुए मैंने कुसुम से कहा, 'कुसुम लो पहले पानी पी लो और ये फ्रूटी और स्नेक्स भी तुम्हारे लिए हैं। ये खा लो।

कुसुम थोड़ा झिझकते बोली, 'नहीं मैं ये नहीं खाऊंगी।'

मैंने उसे थोड़े और प्यार से कहा, 'खा लो ये तुम्हारे लिए ही है।'

इस बार उसने मेरे हाथ से वह सामग्री ले ली और धीरे-धीरे पहले पानी पिया, फिर स्नेक्स का पैकेट खोलकर देखा और उसमें से चिप्स निकाल कर खाने लगी। फिर फ्रूटी भी खोली और उसमें स्ट्रा डालकर धीरे-धीरे पीने लगी। उसे थोड़ा नॉर्मल होते देख, मैंने पूछा, 'कुसुम तुम अपने बहन भाई से प्यार करती हो।'

कुसुम धीरे से फ्रूटी का सीप लेते हुए और नजरे नीचे गड़ाए हुए केवल, 'हम्मम' कहती है।

मैंने पूछा, 'और तुम्हारे भाई-बहन?

वह थोड़ा रुकी फिर कुछ सोचकर बोली, 'पता नहीं।' कभी-कभी लड़ पड़ते हैं और कहते हैं, वापस जा वही गांव में।'

मैंने उसे खुलते हुए देख आगे पूछना शुरू किया, 'और तुम्हारी मम्मी?' इस बार उसने अपने हाथ में पकड़ी फ्रूटी और स्नैक्स का पैकेट बेंच पर रख दिया और मेरी ओर फिर उसी प्रकार के भय से देखते हुए पूछने लगी, 'आप किसी को भी नहीं बताएंगी ना। मम्मी मेरी वजह से बहुत परेशान रहती है। कभी मुझे प्यार करती है कभी बहुत गुस्सा करती है। वो...।' कुसुम कहते-कहते फिर रुक गई।

मैंने उसके सिर पर प्यार से हाथ फिराते हुए पूछा, 'क्या हुआ?'

कुसुम उसके मन का संकोच भी खत्म नहीं हुआ था, वह बहुत संभल कर बोल रही थी, 'कुछ नहीं। वो मम्मी कहती है, मेरा दिमाग ठीक नहीं है न। कुछ भी बोलती हूं। टाइम कितना हुआ है, मुझे घर जाना है। मेरे भाई-बहन आ गए होंगे स्कूल से।'

मैंने उसे परेशान देख कर मोबाइल में टाइम देखा और कहा, 'अभी दोपहर के बारह बजे हैं। कुसुम अभी तो टाइम है।' वह थोड़ी निश्चिंत हुई।

मैंने फिर से कुसुम से जानने की कोशिश की और पूछा, 'अच्छा बताओ! तुम तो छोटेपन से नानी के घर रही हों। फिर वापस यहाँ क्यों आ गई। तुम्हारा मन करता है वापस जाने का।'

कुसुम अबकी बार मेरे प्रश्न पर जैसे बौखला गई। उसका स्वर तेज हो गया, उसने कहा, 'नहीं! बिल्कुल नहीं।'

मैंने उसके चेहरे पर क्रोध और खौफ के मिश्रित भाव देखें। उसका चेहरा जैसे तमतमा गया था और वह गुस्से से कांप रही थी। मैंने उसे बहुत प्यार के साथ अपने करीब बैठाया और उसके कंधे पर प्यार से हाथ रखते हुए पूछा, 'अच्छा! अच्छा तुम डरो नहीं। कुसुम मुझे बताओ, मैं तुम्हारे साथ हूं। तुम मेरी बेटी जैसी हो।'

कुसुम ने मेरे चेहरे को कुछ पलों के लिए गौर से निहारा, जैसे सोच रही हो कि मुझपर विश्वास करें या नहीं। उसका भरोसा मुझपर जमने लगा था और अब उसने धीरे-धीरे बताना शुरू किया, 'वो मेरे बहन-भाई है न, वे जुड़वां हैं। नानी कहती थी, तेरे नशेड़ी बाप ने मेरी बेटी की जिंदगी खराब कर दी। तेरे होने के बाद बस दो-तीन साल थोड़ी सुखी रही, फिर ये तेरे जुड़वां भाई-बहन उसकी जान को आ गए। नानी पापा को बहुत गालियां देती और कहती थी, नासपीटा काम का, न काज का, दुश्मन अनाज का। मेरी बेटी काम करके घर चलाती कि तुम तीन-तीन को पालती। वो भी किराए के मकान में रहकर, इसलिए तुझे मेरे पास छोड़ गई। वे दोनों तो छोटे थे। नानी ने वैसे मुझे बहुत प्यार किया। वो मुझे मां से मिलाने को भी लाती थी। मां भी बीच-बीच में गांव आती थी। नानी ने मेरा गांव के स्कूल में दाखिला भी कराया। जहाँ मैं पांचवीं तक खुशी से पढ़ी। तब तक सब ठीक था।' कहकर वह चुप हो गई।

मैंने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर सहलाते हुए उसकी ओर देखकर पूछा, 'फिर? उसके बाद क्या हुआ कुसुम मुझे बताओ, घबराओ मत। मैं तुम्हारे साथ हूं।'

उसने नजरे नीची किए हुए ही बताया, 'पांचवीं के बाद उसका दाखिला गांव के ही दूसरे बड़े स्कूल में करवा दिया जो घर से थोड़ा दूर था। जहाँ मेरा बीच वाला मामा भी पढ़ता था।' कह कर वह फिर चुप हो गई।

मैंने मन में उठ रही किसी वीभत्स आशंका के वशीभूत होकर पूछा, 'बीच वाला मामा? मतलब कितने मामा हैं तुम्हारे।

उसने निराश आंखों से मेरी ओर देख कर कहा, 'तीन हैं। बड़े मामा की

तो शादी हो गई। ज्यादा नहीं पढ़े। ये वाला मामा तब नौवीं में फेल हुआ था। वही मुझे स्कूल साथ लेकर आता-जाता था।'

मैंने फिर पूछा, 'और छोटा मामा?

कुसुम ने आगे बताया, 'वह तब आठवीं में ही था।' कुसुम ने थोड़ा रुक कर कहना शुरू किया, 'पहले सब कुछ ठीक था। नानी और तीनों मामा मुझे बहुत प्यार करते थे। धीरे-धीरे सब कुछ बदलने लगा। स्कूल में एक दिन बीच वाले मामा को दौरा पड़ गया। मास्टर जी ने घर पर नानी को खबर भिजवाई। पहले भी एक-दो बार मामा को ऐसे दौरा पड़ता था। मैं समझ नहीं पाती थी। थोड़ी देर बाद वो बिल्कुल ठीक हो जाते थे।'

मैंने गहरी सांस भर कर पूछा, 'फिर?'

उसने इस बार मेरी ओर देखते हुए बेहद घृणा से कहा, 'अच्छा होता कि उसको दौरा कभी ठीक ही न होता। वो मर जाता।'

मैंने उसे और नजदीक करके बिठाते हुए पूछा, 'ऐसा क्यों कह रही हो?'

कुसुम ने बताया, 'क्योंकि वो बहुत गंदा इंसान है। बल्कि इंसान नहीं जानवर है।'

मैंने उसे प्यार से दुलारते हुए पूछा, 'ऐसा क्या हुआ कुसुम।' इस बार उसकी आंखों में आंसू थे। उसने सिसकते हुए कहा, 'मैडम उसने मुझे खराब किया। मेरा रेप किया।' कहकर वह सिसक-सिसक कर रो पड़ी।

मैंने उठकर जल्दी से उसे अपनी आगोश में ले लिया। मामा? सगा मामा... मेरे अंदर जैसे बहुत-कुछ टूटकर बिखर गया। मेरी आँखें से खुद ब खुद आंसू बहने लगे। मैंने उसे अपने बहुपाश में ऐसे जकड़ रखा था, जैसे में अपनी बेटी को बाहर के भेड़ियों से बचाना चाहती हूं। मैंने उसे तब तक ऐसे रखा, जब तक वह थोड़ा सामान्य नहीं हुई।

मैंने धीरे से उसका चेहरा साफ किया और पूछा, 'कुसुम तुम्हारे साथ ये सब कब हुआ? और तुमने किसी को बताया क्यों नहीं।'

कुसुम ने बताया, 'मैंने बताया था मैडम। मैं सातवीं में थी जब मेरे पहली बार पीरियड हुआ तो मुझे कुछ नहीं पता था। मैं स्कूल में थी, पेट में बहुत दर्द हो रहा था। कपड़े खराब देखकर टीचर ने मामा को बुलाकर कहा कि इसे जल्दी घर ले जाओ। उस दिन वही मुझे घर लाया और बड़ी मामी को उसने कहा था कि इसके कपड़े बदलवा दो और दर्द की गोली दे दो। मामी मुझे देखकर थोड़ी परेशान भी हुई।

फिर मामी ने मुझे समझा-बुझाकर, कपड़े बदलवा दिए और गोली भी दे दी। उस दिन नानी के काम से लौट आने तक में मामी के पास ही सोती रही।

अगले दिन सुबह भी मेरा मन स्कूल जाने का नहीं था। नानी मुझे सोता छोड़ काम पर चली गई। छोटा मामा भी स्कूल चला गया। बस वही नहीं गया। वह पहली बार था, जब उसने मुझे डरा धमकाकर, ये सब किया। तबसे मुझे उससे डर लगने लगा। मेरे इस डर का उसने और फायदा उठाया। मां जब भी आती अपना रोना-रोती थी नानी के आगे। मैं साथ चलने की जिद करती तो डांट कर चुप कर देती। कहती, 'वहां तेरा बाप कसाई शराबी तुझे न पढ़ने देगा, न कुछ करने देगा। मैं जब भी किसी को कुछ बताने को होती, वह मुझे सामने खड़ा होकर घूरता। मां की मजबूरी देखकर मैं हमेशा उससे बचती रहती। ज्यादातर दिन में मामी के पास रहती। अब उसे मौका नहीं मिलता था। मैं आठवीं में आ गई जब उसने एक बार कोशिश करनी चाही तो छोटा मामा आ गया और वह कुछ बहाना करके बाहर चला गया।

अब उसके साथ स्कूल भी नहीं जाती। छोटे मामा के साथ जाती और वापस आती। छोटा मामा कई बार पूछता कि मैं अशोक के साथ साइकल पर क्यों नहीं जाती। मैं बहाना बनाती कि मुझे उसके दोस्त अच्छे नहीं लगते।'

मैंने कुसुम से पूछा, 'फिर तुमने किसे बताया।' उसने बताया, 'मामी को।' मेरे मुंह से निकला, 'मामी को?'

कुसुम ने बताया, 'हां। मामी को कुछ शक हो रहा था। उसने एक दिन स्कूल से आने के बाद मुझसे पूछा था कि सच सच बता कुसुम क्या बात है। अशोक से इतना क्यों डरती है। तू पहले तो नहीं डरती थी। कही स्कूल में तेरा कोई चक्कर तो नहीं चल रहा जिसका पता उसे चल गया है। मैं मामी का मुंह हैरानी से देखती रही। फिर मामी ने सख्ती से मुझसे कहा था कि मैं कुछ पूछ रही हूं। तब मैंने रोते-रोते उन्हें बताया कि मेरा कोई चक्कर नहीं चल रहा मामी किसी से, बल्कि मुझे तो.. कहते-कहते मैं सहम गई थी! मामी ने मुझसे पूछना जारी रखा था। उन्होंने पूछा था कि तुझे तो क्या? देख मुझे सच-सच बताना। झूठ मत बोलना मैं तुझे कुछ नहीं कहूंगी और किसी से नहीं कहूंगी।'

कुसुम ने आगे बताया, ' मैडम मैंने

मामी को रोते-रोते सब सच-सच बता दिया। मामी को तो जैसे मेरी बात ने सदमे में ही डाल दिया। वह मेरी माँ को नानी को और मामाओं को सबको बुरी-बुरी गालियां देने लगी। परेशान होकर इधर-उधर फिरने लगी। मुझसे कहने लगी कि देख कुसुम इस बार अपनी मां के साथ चली जइयो चाहे कुछ हो जाए और इस हरामखोर की पुलिस में रिपोर्ट करके जइयो जरूर। आने दे तेरे बड़े मामा और तेरी नानी को आज। तू बिल्कुल मत घबराना। शाम को जैसे ही मामा और नानी आए, मामी ने उन्हें सब कुछ सच-सच बता दिया।

नानी हक्की-बक्की-सी मुझे देखती रही। फिर अशोक मामा को गंदी-गंदी गालियां देने लगी। बड़े मामा और छोटे मामा दोनो गुस्से से पागल हो गए। जैसे ही वह (अशोक) घर में आया। दोनों भाइयों ने उसपर ताबड़-तोड़ लात घूंसे बरसा दिए। बड़े मामा तो बहुत गुस्से में थे, हटते ही नहीं थे। मामी और नानी ने मुश्किल से छुड़ाया। फिर उस दिन उसे फिर दौरा पड़ गया। लड़ाई-झगड़े की सुन कर पुलिस भी आ गई। मैं बहुत रो रही थी। पुलिस वाले ने मुझे देखा तो मुझसे पूछने लगा कि यहां क्या हुआ है। मैं कुछ बोलती उससे पहले नानी आ गई। पुलिस वाले से कहने लगी कि भाई-भाई की आपस की लड़ाई है। मेरे लड़के को दौरा पड़ा है। बच्ची है, घबरा गई है। नानी मुझे डांट कर चुप कर रही थी। फिर मुझे अंदर ले जाकर कहने लगी ..देख छोरी पुलिस के सामने ये सब मत कहना, हमारे साथ-साथ तेरी भी खूब बदनामी होगी। फिर बाहर जाकर पुलिस को जाने क्या कहा और पुलिस वापस चली गई। मामी गुस्से में पैर पटकती हुई वापस अपने कमरे में चली गई। जैसे-तैसे रात कटी। अगले दिन नानी ने मां को बुला लिया और गुस्से में बड़बड़ाते हुए कहा कि ले जा इसको यहां से। मां भी नानी और अपने भाइयों से खूब लड़ी, उन्हें खूब गलियां दी और मुझे लेकर वापस दिल्ली आ गई। फिर कुछ दिन पहले किसी बाबा जी के पास भी लेकर गई थी। जिसने मुझे बीमार बताया है और ये जो ताबीज बंधा है न, ये भी उन्हीं ने दिया है अपने गले में बंधे हुए, काले रंग के धागे को पकड़ते हुए उसने बताया। जब वह बोल रही थी, मैं उसे गौर से देख रही थी। उसके चेहरे पर आने वाले भावों से ये अंदाजा साफ लगाया जा सकता था कि उसे खुद किसी बाबा की बात पर यकीन नहीं है। फिर भी न जाने किस अनजाने भय से उसने मुझे यकीन दिलाना चाहा कि वह किसी प्रेत छाया के प्रभाव में है अथवा मानसिक रूप से बीमार है।

कुसुम की बातों का असर मुझपर ऐसे हुआ जैसे किसी शांत पर्वत की छाती में दर्द से कई ज्वालामुखी एक साथ फट पड़ना चाहते हों। रोम-रोम चीत्कार करता-सा महसूस हुआ।

मैंने उसका हाथ जोर से पकड़ लिया। रोज ब रोज टी. वी. अखबारों, सोशल मीडिया में देखी पढ़ी जाने वाली न जाने कितने ही मासूम बच्चों के चेहरे मेरे इर्द गिर्द मंडराने लगे।

कुसुम ने आगे मुझसे कहा, 'आप मेरी मम्मी को कुछ मत बताना मेंम। उसने किसी से मेरे रिश्ते की बात की है। वह मुझे बहुत मारेगी।' अपने को किसी तरह संयत करके मैंने अपनी साथी को फोन कर धीरे से कहा, 'सविता दी आप जल्दी से यहां आ जाओ।'

मेरी साथी दूसरे साथियों को काम सौंप कर तुरंत ही मेरे पास आ गई। मेरी ओर देखते ही वह समझ गई कि कुछ बहुत बुरा घटा है, उस बच्ची के साथ। फिर भी मैंने जैसे ही उसे कुसुम के बारे में बताया, वह गुस्से से कांपते हुए बोली चलो इसकी मां आ गई होगी तो उससे बात करते हैं और यहां के पुलिस स्टेशन में उस जानवर की रिपोर्ट भी दर्ज करवाते हैं। मैं भी यही चाहती थी किंतु जैसे ही कुसुम ने यह सब सुना, वह बुरी तरह से घबराकर बोली, 'नहीं..! नहीं! आप दोनो रुक जाओ। मुझे नहीं जाना पुलिस स्टेशन। मुझे कुछ नहीं कहना किसी से।' वह लगभग रो पड़ी, 'दीदी प्लीज, मैडम प्लीज मेरी मम्मी बहुत गुस्सा होगी। मेरी बहुत बदनामी होगी। मां कहती है, मेरा मामा तो पागल है। उसका इलाज चल रहा है। पुलिस भी यही कहती है। मैं भी बीमार हूं। मेरा भी इलाज चल रहा है। अगर मैं ऐसे ही उल्टी-सीधी बातें करती रही तो वे मुझे पागलखाने भिजवा देंगी। मुझे नहीं जाना पागल खाने। मुझे कहीं नहीं जाना। फिर मेरी शादी भी नहीं होगी। नहीं। आप किसी को कुछ नहीं कहो। प्लीज मेम। मैंने क्यों ही बताया आपको...। मम्मी सही कहती है मै हूं ही पागल।'

मैंने उसे शांत करते हुए और ढांढस बढ़ाते हुए कहा, 'देखो कुसुम अगर तुम उसके खिलाफ रिपोर्ट नहीं करोगी तो वो फिर किसी के साथ ऐसा कर सकता है।'

कुसुम ने फिर गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'नहीं मेम! अब नहीं करेगा। अब नहीं कर सकता। अब उसकी शादी हो गई है न और मैं तो अब कभी जाऊंगी नहीं वहाँ।

उसकी बात सुनकर और कुछ सोच कर हमने उसे सामान्य किया और कहा, 'अच्छा ठीक है कुसुम तुम परेशान मत हो। हम किसी से कुछ नहीं कहेंगे। लेकिन तुम पागल बिल्कुल भी नहीं हो बल्कि बहुत समझदार और हिम्मत वाली हो।' मैंने एक पेज पर अपना और अपनी साथी का फोन नम्बर लिखकर उसे देते हुए कहा, 'देखो कुसुम तुमने हमें बताकर कुछ गलत नहीं किया। हम पर विश्वास रखो, जब तक तुम नहीं चाहेगी, हम किसी से कुछ नहीं कहेंगे बेटी। तुम निश्चिंत रहो। जाओ अपनी सहेली के पास जाकर आराम से बैठो।'

कुसुम ने फोन नम्बर की पर्ची को मुट्ठी में दबा कर, अपना चेहरा चुन्नी से साफ किया और वहां से धीरे-धीरे जाने लगी। मेरी नजरें सजल हो, उस मासूम को जाते देख रही थी... और महसूस हुआ कि इसी क्षण में और न जाने कितनी कुसुम कहाँ-कहाँ इस पीड़ा से जूझने को विवश हैं। जिनकी दस्ताने शायद अनकही ही रह गई होंगी। या रह जाएंगी।

सविता दी ने मुझसे कहा, 'वह बच्ची तो बहुत डरी हुई है। किंतु उस दरिंदे को ऐसे छोड़ देना क्या ठीक रहेगा। आखिर यही तो होता है हमारे समाज में।'

मैं सविता दी की ओर मुड़ी और अपने भीतर का सारा आक्रोश, दुख और घृणा के मिले-जुले भावों को समेटते हुए कहा, 'दी आपने देखा न, वह कितनी डरी हुई है। जबकि मुझसे ये बात करने से पहले तक वह बहुत मुखर व सामान्य दिख रही थी। वह मुझे बता चुकी है कि उसके मां-बाप के संबंध भी आपस में बहुत खराब हैं। घर का माहौल भी अच्छा नहीं है। ऐसे में परिवार का कोई उसका साथ नहीं देगा। ऐसे में वह बच्ची कैसे...।' कहते-कहते मेरा गला रूंध ने लगा था शायद। थोड़ा रुक कर मैंने कहा, 'दी हम इसकी मां से बात करेंगे। देखते हैं वह क्या कहती है। सविता दी ने एक गहरी सांस खींची और कहा, 'ठीक है। अभी बाकी साथियों के पास चलो। कार्यक्रम समापन का समय है। दोपहर के तीन बजने वाले हैं। मैंने सहमति में कहा, 'जी।'

उस दिन कुसुम की मां से हम नहीं मिल सके। लोगों से पता चला फैक्ट्री वालों की छुट्टी देर से होती है।

मैं वहां से चली तो आई किंतु, कई दिन तक सामान्य नहीं हो पाई। रातों को मेरी नींद उड़ गई और कभी सोती तो कुसुम जैसी न जाने कितनी मासूम लड़कियाँ रोती, बिलखती मेरे सपनों में आती और मुझे अपनी चाह कर भी कुछ न कर पाने की छटपटाहट पर बेहद गुस्सा आता।

एक दिन कॉलेज से लौटते हुए। कुसुम के बारे में सोचते हुए ही तय किया कि उसकी मां से मिला जाए। शाम के पांच बज रहे थे। मैंने मेट्रो स्टेशन से ऑटो किया और लगभग बीस मिनट में मैं उस गली के सामने थी जिस ओर इशारा करते हुए कुसुम ने बताया था कि वह यहीं रहती है। उस पार्क का एक गेट इस गली के सामने भी खुलता था जिसमें हमने कार्यक्रम किया था।

यह जाता हुआ अक्टूबर था, हल्की ठंडी हवाएं चलने लगी थी। ऐसे मैं इन बस्तियों के लोग दोपहर में पार्क में धूप सेंकते और शाम को चूल्हा या अंगीठी जला उसपर काम करते। कभी-कभी हाथ तापते गली के बाहर और गली में घुसते हुए ऐसे ही कई बच्चों, स्त्रियों ओर पुरुषों ने मुझे पहचान लिया। उनमें से कुछ महिलाएं मेरे पास आकर बड़ी इज्जत से बोली, 'दीदी आप तो वहीं हैं ना।' मैंने हल्की मुस्कान के साथ हॉमी भर दी। उन ही में से किसी ने मेरे इस तरह अकेले आने का कारण पूछा। पहले तो मैं थोड़ा ठिठकी फिर थोड़ा संभल कर कहा, 'देखो जल्द ही हम यहां दूसरी मीटिंग करेंगे, आप सभी के साथ शराब बंदी को लेकर। मुझे आप सब का साथ चाहिए। कुछ ऐसी महिलाओ तथा बच्चों से भी बात करनी है जो शराबी पति या बाप के जुल्म का शिकार हैं। मुझे इस सिलसिले में कुसुम और उसकी मां से मिलना है। उनका घर कौन-सा है।

उन महिलाओं में से एक ने कहा, 'ये दो घर छोड़कर जो तीसरा घर है, उसी के ऊपर वाली मंजिल में रहते हैं वे। मैंने धीरे-से उनसे विदा लेते हुए कहा, 'आपमें से कुछ के फोन नम्बर हैं मेरे पास। जैसे ही सब तय होगा कॉल करके बताऊंगी।' आगे बढ़ते हुए अपनी अंतर्मन को मैंने बेहद बेचैन पाया। कुछ ही कदमों पर मैं कुसुम के घर की सीढ़ियों पर थी।

मैंने जैसे ही आवाज लगाई, 'कुसुम-कुसुम' वह भागकर मेरे सामने आ खड़ी हुई। मुझे देखकर उसके

चेहरे पर फिर वही खौफ साफ दिख रहा था। मैंने उसे शांत करते हुए कहा, 'तुम घबराओ मत। मुझे तुम्हारी मां से बात करनी है–कुछ देर।'

तभी उसकी मां भी आ गई। उसने प्रश्न भरी नजरों से मुझे देखा। मैंने नमस्ते कहकर उनसे विनीत स्वर में कहा, 'मुझे आपसे कुसुम के विषय में कुछ बात करनी है। इतना सुनते ही उन्होंने कुसुम को घूरा और कहा, 'जाओ थोड़ी देर नीचे चली जाओ।' और मुझे जल्दी से उस किराए के कमरे में ले गई। शायद वह समझ गई थी कि मुझे क्या बात करनी है।

उसने मेरे सामने ईश्वर का शुक्र मनाया कि उसका बाप वहां नहीं था। वह बेहद बेचैन दिख रही थी। मैंने कहा, 'देखें कुसुम आप की बेटी है। एक मां और एक स्त्री होने के नाते आप नहीं चाहेंगी कि उसके गुनाहगार को सजा मिले। ये आप भी जानती हैं कि कुसुम झूठ नहीं बोल रही।'

पहले तो वह थोड़ी नाराज हुई। कुसुम को ही भला बुरा कहने लगी, 'ये लड़की पागल है, न जाने क्या-क्या कल्पना करती है। डाक्टर कहता है कि ये मानसिक रोगी है। इस लड़की ने मेरी जिंदगी जहन्नुम बनाकर रख दी है। न मेरा मायका रहा, न ससुराल, सब मुझे ताने देते है। ऊपर से इसका जुआरी-शराबी बाप। मैं क्या करूं, कहां ले जाऊं। मैडम आप जो भी हैं। हम पर दया करो। इस पागल की बातों पर मत जाओ।

दिन भर पता नहीं क्या-क्या सोचती रहती है और कहती है। इसका इलाज चल रहा है। मैंने कई जगह रिश्ते की बात भी की है, जितनी जल्दी हो मुझे इसकी शादी करनी है।' मैंने बीच में टोकते हुए कहा, 'अगर ये पागल है और कोरी कल्पना करती है तो ऐसे में कौन शादी करेगा इससे।' तब वह बड़बड़ाती हुई बोली, 'वह सब आप मुझ पर छोड़ दें। मेरी बेटी है। मैं आप देख लूंगी। आपसे हाथ जोड़कर विनती है। आपसे इसने जो भी कहा आप अपने तक ही रखें...। मेरी तकदीर तो वैसे ही फूटी है। मैं बहुत गरीब हूँ। कोर्ट-कचहरी से जाने दूर ही रखें। चाहे ये बात झूठ है या सच पर मेरी बच्ची बदनाम हो जाएगी। आप जानती हैं न दुनिया को। हमें कुछ नहीं करना। कहीं नहीं जाना। मेरी बेटी का तमाशा मत बनाएं। आप एक गरीब मां की मजबूरी समझें।' कहते-कहते वह रो पड़ी। मुझे उसकी और अपनी विवशता पर बहुत झुंझलाहट और दुख हो रहा था। मैंने कहा, 'देख लो अभी समय है तुम अपनी बेटी को न्याय दिलाने के लिए लड़ सकती थी, उसके पक्ष में खड़ी हो सकती थी। सवाल केवल तुम्हारी बेटी का नहीं है। ऐसी अनेक मासूम बेटियों का है जिनके शिकारी दरिंदे हमारे घरों में ही रिश्तों का खोल पहने हुए पल रहे हैं, उन्हें नोच रहे है और हम सब कुछ जानकर भी शर्म व इज्जत का लबादा ओढ़े अन्याय और अत्याचार से आँखें मूंद लेते है, इसीलिए ये भेड़िए हमारे घर और बाहर दनदनाते फिरते हैं। एक बात बताएं, शर्म हम औरतों को ही क्यों आए। इज्जत और बदनामी का डर हमें ही क्यों...। उन दरिंदो को क्यों नहीं। खैर! कभी आपकी अंतर्मन यदि आपको झकझोरे और आपको लगे कि आप अपनी बेटी पर हुए अन्याय के खिलाफ खड़े होना या लड़ना चाहती हैं तो निस्संकोच मुझे इस नम्बर पर कॉल करें। मैं आपके साथ हूं बल्कि हमारा पूरा संगठन आपके साथ है।'

कुसुम की मां फिर हाथ जोड़कर बोली, 'जी मैडम, बस मेरी बिनती है मेरी बेटी के बारे में आप पुलिस से या किसी से भी कुछ मत कहना। आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।'

मैंने बस इतना कहा, 'कुसुम बहुत अकेली पड़ गई है। बजाए डांटने-फटकारने के उसे अपनी ममता दो। जरूरत पड़े तो उसकी सहेली बनकर उसे विश्वास में लो ताकि वह अपने मन की हर बात तुम्हें बता सके। बजाए किसी ओर के।' कहकर मैं जल्दी से नीचे उतर गई। शाम के सात बज रहे थे। घर और बाहरवाली बत्तियां जल उठी थी। फिर भी मेरे भीतर जैसे बहुत अंधकार घिर आया था। बहुत दिनों तक इंतजार करने पर भी कोई फोन मुझे नहीं आया। बाद में पता चला कुसुम का परिवार वहां से घर खाली कर कहीं ओर चला गया।

मैंने अपनी एक पुलिस अधिकारी मित्र से जब इस विषय में बात की तो उसका कहना था, 'ऐसे हजारों मामले दर्ज ही नहीं होते। ज्यादातर केस में बच्ची के परिवार वाले आरोपी को ही बचा रहे होते हैं। बच्ची की मेडिकल जांच तक नहीं करवाते। अगर किसी तरह मामला पुलिस तक पहुंच जाए तो, इज्जत का ही हवाला देकर पुलिस वालों से भी सांठ-गांठ कर लेते हैं। पीड़ित बच्चियों का बयान तक नहीं लेने देते। तो बताओ पुलिस भी क्या कर सकती है।' कुसुम के लिए कुछ न कर पाने की कसक मुझे आज भी विचलित कर देती है।❑

फिर यहीं आयेंगे वे...

डॉ. राजकुमारी
मो. 8708165299

अचानक से कमरे के दरवाजे पर जोर-जोर से हाथों की थपथपाहट से उत्पन्न ध ड़धड़ाहट की ध्वनि ने मेरे अध्ययन की एकाग्रचित्तता को खंडित कर दिया। मेरा माथा ठनका, ऐसा लग रहा था जैसे वे आवाजें किसी अनहोनी के हो जाने का अंदेशा दे रही हों। मैं फटाफट अपनी गोद में रखी किताब जिसका शीर्षक 'जाति का समूल विनाश' था, को साइड में रख, फुर्ती से तकिए को बिस्तर पर पटकते हुए दरवाजे की ओर नंगे पांव दौड़ पड़ी। मैंने जैसे ही कमरे का दरवाजा खोला, माँ तूफान से भी तेज रफ्तार से कमरे में घुस गई और बिना कुछ बोले ही मेरी किताबों को उलटने-पलटने लगी। तकिए को उठाकर एक तरफ फेंक दिया, बेड पर पड़े कॉलेज बैग को पलंग पर उल्टा दिया और उसके अंदर के पेन, लिप्लोज, कंघी, डायरी सभी को आला डिजाइन के बूटेदार पलंग पोश पर बिखेरकर हड़बड़ाहट में झाड़ने लगी। मैं असमंजस की स्थिति में थी कि वो ऐसा क्यों कर रही हैं? मैंने इस घबराहट का कारण जानने का प्रयास किया जो अभी-अभी मेरे कमरे में प्रवेश कर चुकी थी। 'माँ! क्या हुआ?' मैंने पूछा लेकिन उन्होंने अनसुना कर दिया और पहले की भांति छानबीन में लगी रही।

'आप ऐसा क्यों कर रही हो?' मैंने अपने स्वर को और बढ़ाने का प्रयास किया लेकिन वे अब भी किसी अनमोल चीज को खोजने का प्रयास कर रही हो। जवाब नहीं दिया। उनकी नजरें इधर-उधर ऐसे देखे ही जा रही थीं।

'कोई चीज गुम हो गई क्या? आप बताओ मैं ढूंढती हूँ। मैंने माँ के पास जाकर जोर देकर बोला। वह बेचैन हो गुमसुम-सी कमरे में रखी वस्तुओं को लगातर बिखेरती ही जा रही थीं। टेबल पर बिछे छह प्लास्टिक के फूलदार टेबलपोश को उचकाकर देखने के बाद वे बुक सेल्फ की ओर बढ़ी और किताबों को हटा-हटाकर स्पेस में कुछ खोजने लगीं। मैं उनके पीछे-पीछे अपने सवालों को दोहराते हुए इधर-उधर चक्कर लगा रही थी। मेरे कमरे की इस तरह से तलाशी लेना मुझे नागवार गुजर रहा था और मेरे सब्र का बांध भी टूट चुका था।

'माँ अब बता भी दीजिए न! ऐसे ही आप रूम को अस्त-व्यस्त करती

रहेंगी क्या? कितनी बार पूछ चुकी हूँ?' अब मैं क्रोधित अवस्था में आ चुकी थी कि तभी माँ मेरी दिशा में तेजी से मुड़ी और मेरी पोशाक पर अपने हाथों से कुछ टटोलने की असफल कोशिश में लग गई। मैंने गुस्से में आग बबूला होकर उनके हाथों को झटक दिया और उन पर बरस पड़ी, 'माँ! आपको हुआ क्या है? मैं पागल हूँ क्या? जो इतनी देर से पूछे जा रही हूँ? इस बिहेवियर, इस छानबीन का क्या मतलब है?' मैंने रुआंसे-लड़खड़ाते शब्दों में कहा। मेरी आँखें सजल हो आई।

उन्होंने मेरी तरफ कातर निगाहों से देखा और अपनी मौनावस्था में मेरे हाथ को पकड़ कर अपने सिर पर रखते हुए बोल पड़ी, 'तुझे मेरी कसम है सच बताना! तेरे पास कोई फोन तो नहीं न?'

'नहीं तो।' मैंने सपाट लहजे में जवाब दिया।

'तेरा किसी लड़के के साथ कोई चक्कर तो नहीं चल रहा न?' माँ ने तीर से भी तेज गति में एक और सवाल छोड़ दिया।

'नहीं! पर माँ आप ऐसी अजीबोगरीब सी बातें क्यों कर रही हैं? कुछ बताएंगी या ऐसे ही पहेलियां बुझाती रहेंगी?' मैंने फिर उत्सुकता से पूछा।

माँ ने गहरी सांस छोड़ते हुए गर्दन तान ली और कुछ देर की खामोशी के बाद बोली, 'तू अब रोज शहर पढ़ने नहीं जायेगी। मैं कहीं नहीं भेजने वाली अब। अगर आगे पढ़ना है तो आराम से घर में बैठकर पढ़, नहीं तो चूल्हा-चौका सीख और अपने घर जाने की तैयारी कर ले। जितना पढ़ना था, पढ़ लिया।' वो लगातार बोलते हुए बिस्तर पर बिखरी पुस्तकों को एक-एक करके बंद करने लगी और बाकी सामान को समेटते हुए लट्टू की भांति घूमने लगी। सवाल अब भी वहीं के वहीं खड़ा था कि आखिर हुआ क्या था?

'हुआ क्या है? अब बताएंगी भी या नहीं?' मैंने थोड़े ऊंचे स्वर में झुंझलाते हुए पूछा तो उन्होंने रुक कर मेरी ओर घूरकर ऐसे देखा जैसे मुझे कच्चा चबा जायेंगी। भौंहों को तानकर अंगुली मेरी तरफ कर धमकियाना लहजे में बोली, 'बस्स, कह दिया ना अब चाहे दुनियां इधर से उधर हो जाए, तुम शहर नहीं जाओगी, मतलब, नहीं जाओगी, समझी?'

मैं इस बात को सुनकर हैरान थी। मन ही मन सोच रही थी कि अचानक उन्हें हो क्या गया? जो माँ आज तक शीरे में भिगो-भिगो बातें करती थीं आज जहर उगल रही थीं। इन सब फिजूल की बातों को कहने का मकसद क्या हो सकता था? मैं तो इस फरमान को सुन आवाक रह गई। माँ के शब्दों में चिन्ता और भय दोनों ही समाहित थे। मसला कुछ समझ नहीं आ रहा था। अब हद हो चुकी थी।

'ठीक है मत बताओ, पर मैं तो हर रोज कॉलेज जाऊंगी।' मैंने बात जानने के लिए नया पैंतरा अपनाते हुए घी को निकालने के लिए अंगुली टेढ़ी कर ली थीं। इस बार तीर निशाने पर था। माँ दो सैकेंड चुप रही फिर एकाएक आग बबूला होकर बड़ी-बड़ी आँखों से घूरकर देखते हुए बोली, 'वो अपनी बिरादरी के सतीश जी है ना जो क्लर्क हैं, उनकी लड़की ने अपने ही कस्बे के भंगियों के छोरे से ब्याह कर लिया। सुना है दोनों एक साथ ही दिल्ली शहर में पढ़ते थे। भगवान ऐसी औलाद किसी दुश्मन को भी ना दे। सारे जहान में वही चुहडे का लड़का मिला था उसे? माँ-बाप कहाँ जाकर डूबे? लड़का भी अपने से नीच जात का।' उन्होंने अपने माथे पर हाथ मारते हुए कहा।

'तो क्या हो गया माँ? है तो लड़का ही।' मैंने मासूमियत से जवाब दिया।

'ओह! तो इसलिए आप चोरों की भांति मुझे टटोलकर देख रही थी? मैंने तो कुछ किया भी नहीं।' मैंने मुँह की आकृति बिगाड़कर कंधे उचकाकर अफसोस जताते हुए सिर हिला दिया और गहरी सांस छोड़ दी।

माँ समान समेटते हुए पीठ घुमाएं हुए ही फिर से बोलने लगी, 'शहर की हवा ही खतरनाक है, सीधी-साधी दिखने वाली लड़कियां भी चालाकी, चालबाजी और झूठ बोलना सीख जाती हैं। उन्हें लगता है कि कौन-सा घर वालें उन्हें देख रहे हैं। करो मनमानी खूब धूल झोंको घरवालों की आंखों में।' वो अपने आप ही बड़बड़ाती हुई समान समेटती रही।

'प्रेरणा!' एकाएक पापा की आवाज ने हम दोनों का ध्यान बाहर की तरफ खींच लिया।

'जी! यहीं है प्रेरणा, अपने कमरे में।'

मैं कुछ बोलती उससे पहले ही माँ ने दरवाजे की ओर देखते हुए अंदर से ही सुकून भरा जवाब दे दिया।

बाहर से मर्दाना बुदबुदाहट की आवाजें और पैरों की आहटें धीरे-धीरे कानों के नजदीक आने लगी। मैंने गरदन घुमाई तो देखा पापा और भाई मेरे कमरे में प्रवेश कर रहे थे। हम दोनों सहमे से उनकी ओर देखने लगे। पापा के चेहरे पर गंभीरता पसरी पड़ी

थी और आँखें क्रोध से जल रही थीं। उन्होंने एक दृष्टि मुझ पर डाली और अपने रोबीले अंदाज में बोल पड़े, 'क्यों सारा घर सिर पर उठा रखा है? कुछ लिहाज शर्म है या नहीं? औरतों की आवाजें घर के दरवाजे के बाहर तक सुनाई देना घर की बर्बादी की ओर संकेत होता है। समझी तुम दोनों?'

मम्मी-पापा के इस बर्ताव पर मुझे बेहद गुस्सा आ रहा था। ये तो वही बात हुई कि 'करे कोई, भरे कोई'। मेरा भाई जो मेरी पढ़ाई और आजादी का सबसे बड़ा शत्रु था, भी उनके पास सीना ताने गुस्से में खड़ा मुझे घूर रहा था और तनकर तो ऐसे खड़ा था जैसे वो किसी विजेता सेना का सेनापति था। हम दोनों को तो जैसे सांप सूंघ गया। हम गर्दन झुकाए अपराधी से खड़े थे।

'पापा इन्हें भी साथ लेकर चलते हैं, ताकि ये भी देख लें कि ऐसे कुकर्मों पर बिरादरी वाले कैसे जीना मुहाल कर देते हैं।' उसने मेरी ओर घूर कर कहा। पापा ने भी उसकी बात को तवज्जो दी और हमें भी साथ आने का आदेश दे दिया।

माँ ने मेरी बाजू कसकर पकड़ ली और दाँत भींचकर बोली, 'चल तुझे दिखाती हूँ, गलत कदम उठाने का नतीजा क्या होता है।'

'पर! आ... ह! मुझे क्यों दिखाना है? आह! माँ दर्द हो रहा है छोड़ो।' मैंने कराहते हुए कहा।

'ताकि तू भी ऐसा कदम उठाने से पहले सौ बार सोचे।'

मुझे आज पहली बार अपने ही घर में अपने लोगों के सामने बेइज्जत होना पड़ रहा था और वो भी उस अपराध की आशंका के चलते जिसके होने की कोई संभावना तक नहीं थी। माँ मुझे अपराधी की भांति घसीटती हुई अपने साथ ले जा रही थी।।

जैसे ही हम सब घर से बाहर निकले तो महसूस हुआ कि कस्बाई सभी लोग अफरा-तफरी में एक ही दिशा में बेहताश दौड़े जा रहे थे। हम भी उसी हुजूम का हिस्सा बनकर उस तयशुदा राह की मंजिल पर पहुँच ही गए जहाँ एक इमारत पर मोटे-मोटे अक्षरों में भीमराव आंबेडकर भवन लिखा था। मेन गेट में घुसते ही सामने गौतम बुद्ध एवम् डॉ.भीमराव आंबेडकर की दो प्रतिमाएँ स्थापित थीं। सभी उनके सामने नतमस्तक होकर भवन के भीतर बौखलाहट में प्रवेश कर रहे थे। कुछ ने एक-दूसरे को जयभीम कह कर अभिनंदन किया तो कुछ की आँखें कमजोर लोगों के अधिकारों की आवाज बुलंद करने वालें चुहड़े-चमारों के नेताओं के इंतजार में ठहरी हुई थीं। दोनों खेमों के लोगों का जमावड़ा आमने-सामने बैठा अपने-अपने हितैषी नेताओं की राह तक रहा था। वहाँ एक लकड़ी से बने तख्त था कुछ कुर्सियां खाली पड़ी थीं जो समाज के नेताओं के लिए आरक्षित थीं और बाकी सब लोग फर्श पर बिछी लाल नीले सूत के बने धागों की दरियों पर उकडूं तो कुछ कुल्हे टिकाए बैठे थे। जिनमें महिलाएँ और पुरुषों के भी अलग-अलग समूह थे। मैं भी माँ के पास अपने मोहल्ले की औरतों के साथ जा बैठी। तभी खलबली-सी मची और अनेकों आवाजें एक साथ आई, 'नेता जी आ गए, नेता जी आ गए।'

कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं और अवसरवादी नेताओं का जमावड़ा तो पहले ही लग चुका था। नेता जी के आसनग्रहण करते ही लोग उनकी ओर हसरत भरी दृष्टि से अपलक देखने लगे। सभी के हृदय में आज के निर्णय को लेकर उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। नेता जी अपनी जगह से उठे और 'जय भीम, जय फूले, जय कांशीराम।' के उदघोष के साथ हाथ जोड़ते हुए अपनी बात प्रारंभ की, 'जैसा कि आप सभी जानते हैं इस पंचायत को क्यों बुलाया गया है। दोनों बच्चे जो गैर-बिरादरी से हैं, नासमझी में घर से भागकर शादी कर ली है और दोनों ही परिवार इस शादी के खिलाफ हैं। जैसा कि आप जानते हैं कि ये दोनों बच्चे एक ही कस्बे के हैं और अलग-अलग जात से हैं। तो इस रिश्ते की डोर का कोई वजूद नहीं है। इसलिए आज हम दोनों पक्षों की बातें सुनकर सर्व सम्मति से फैसला लेगें जिसे सबको मानना पड़ेगा। यही पंचायत का अंतिम फैसला होगा। पहले लड़की पक्ष अपनी बात रखे।' नेता जी ने हाथ का इशारा कर अपने सफेद कड़क कुर्ते की झोली के पिछले हिस्से को उठाकर बैठते हुए पंचायती कार्यवाही शुरू की।

पंचायत की पैरवी शुरू हुई तो दोनों पक्षों के लोगों को अपनी-अपनी बात रखने का अवसर दिया गया।

लड़के का पिता सतीश राठी जो एक पढ़ा-लिखा आदमी व सरकारी महकमे में बाबू था, हाथ जोड़कर आँखें जमीन में झुकाए शर्मिंदगी महसूस कर रहा था और पूरे समाज के सामने अपने आप को गुनाहगार समझ रहा था।

'मैं बहुत शर्मिंदा हूँ। मुझे उसे शहर नहीं भेजना चाहिए था, आज समाज में जो मेरी पगड़ी उछली है उसका जिम्मेदार मैं ही हूँ। मैंने ही उसे आजादी दी। आप बिरादरी भाई जो फैसला करेंगे, मुझे मंजूर होगा।' वो शर्मिंदगी से अपनी

बात रखकर जमीन पर बैठ गया और फफक पड़ा।

लड़की की माँ को देखकर वहां बैठी चमारों की औरतों ने तंज कसना शुरू कर दिया।

'हमें तो पहले ही मालूम था यही होगा।' एक महिला ने दूसरी से कहा।

'हाँ! भला लड़कियों को शहर भेजने और इतनी आजादी देने की क्या जरूरत थी।'

'बड़े आधुनिक बनने की होड़ लगी थी कि फलां की लड़की गई है, हमारी क्यों नहीं जा सकती?' तीसरी ने भी अपनी भड़ास निकाली।

'अरे मुझे तो पहले ही पता था ये भागेगी, इनकी नाक तो कटी सो कटी जात-बिरादरी पर कीचड़ उछल रहा वो अलग से।' एक काली मोटी औरत दबी-सी आवाज में कानाफूसी कर मुँह बिचकाते हुए कह रही थी।

'हाँ! लड़कियों को इतनी छूट देना, छोटे-छोटे कपड़े पहनने पर न टोकना कौन-सी अच्छी बात थी?'

'खानदान की नाक कटवा दी इनकी लड़की ने। डूब क्यों नहीं मरी कहीं।'

'हाँ बहन जब छुट्टियों में आती थी पूरा-पूरा दिन टाइट जीन्स पहन के, कानों में लीड ठूंसकर कभी गली में तो कभी छत पर। हँस-हँस नैन मटक्का करते हुए कुल्हे मटकाती फिरती थी।' पीछे की ओर से फिर एक दबी आवाज सुनाई पड़ी। जिस दिशा से भी आवाजें आती मैं उसी दिशा की ओर अपनी गर्दन घूमा लेती और गौर से सुनने लगती।

'पूरी चमार बिरादरी ही नहीं बल्कि भंगी मोहल्ले वाले भी थू-थू कर रहे हैं। अरे भेजा तो इसलिए था पढ़-लिख लेगी। कोई अच्छा रिश्ता मिल जाएगा, पर उसने तो चुहड़ों के काले-कलूटे लड़के में जाने क्या देखा। कर दिया खानदान का बेड़ागर्क।' एक महोतरमा तो यूँ छाती पीट रही थीं मानो उसका तो सुहाग ही उजड़ गया हो।

जहाँ से भी मुझे ये उल-जुलूल बातें सुन रही थी मेरी गर्दन भी उसी ओर घूम रही थी। ये सब बातें सुन-सुनकर मेरा सिर चकरा रहा था। नेताजी ने रामकुमार भंगी को अपनी सफाई में बात रखने का अवसर प्रदान किया जो बदकिस्मती से लड़के का पिता था और दलित एकता मंच का सक्रिय कार्यकर्ता भी था। रामकुमार ने मुँह पर हाथ लगाकर अपनी खांसी को रोकते हुए धीमे स्वर में कहा, 'पंचायत का जो फैसला होगा मुझे भी वही मंजूर होगा।'

इससे पहले कि मामला और अधिक पेचीदा होता दोनों पक्षों के बुजुर्गो, दलित नेताओं और अनुभवी व्यक्तियों ने आपसी मशवरा कर निपटारे का निर्णय ले लिया।

दलित पक्षधर नेताओं में से एक जो चमारों की तरफ से था, उठकर ज्यों ही बोलने लगा, वहां मौजूद सभी लोग बन्द जुबान और आतुर निगाहों से निर्णय की प्रतीक्षा करने लगे।

'हमने अंतिम निर्णय ले लिया है। दोनों बच्चों ने जो शादी की है, उसे सामाजिक, जातीय लिहाज से स्वीकृत नहीं किया जा सकता। ये एक गैरजातीय शादी है जो नहीं मानी जायेगी। बाकी फैसला भाई सुरेंद्र वाल्मीकि जी बताएंगे। उसने हाथ के इशारे से संबोधित किया और बैठ गया।

'जय भीम, जय वाल्मीकि। जैसा कि नेता जी ने बताया कि न तो घरवालों को और न ही समाज को ये रिश्ता मंजूर है। इसलिए पंचायत और समाज ने सर्वसम्मति से ये निर्णय लिया है कि इन दोनों बच्चों रूद्र और अंजलि को जात-बिरादरी से बहिष्कृत किया जाता है। यदि कोई इनसे मिलने की कोशिश करेगा या इनकी सहायता करेगा तो उसका भी बिरादरी से हुक्का पानी बंद कर दिया जाएगा। अगर बच्चे लौटकर आते हैं और अपनी गलती को स्वीकार करते हैं तो पंचायत आप दोनों परिवारों को जल्दी से जल्दी उनकी शादी अपनी बिरादरी में करने का हुकुम भी देती है। हमें लगता है कि आपको इस फैसले पर कोई आपत्ति नहीं होगी।'

नेताजी ने अपनी बात एक साँस में पूरी की और भीड़ को कातर नजरों से देखने लगे। जब कुछ पल तक कोई विरोध की आवाज नहीं उठी तो निर्णय अंतिम हो गया। सभी लोग फैसले से संतुष्ट थे।

लोग, इज्जत का टोकरा उठाकर घूमते लोग। गैरियत बरतते लोग। सजा और सख्ती से सबक देने वाले लोग। जिंदगियों को खत्म करने का फैसला कराने वाले लोग। सामूहिक तौर पर आइंदा ऐसी गलतियां न हों, ये ख्याल कराने वाले लोग। स्वेच्छा से प्रेम संबंधों को इज्जत मिट्टी में मिला देने की उपमा देने वाले लोग। ऐसे बच्चों की तो मार-मारकर खाल उधेड़ देनी चाहिए, जमीन में जिंदा गाड़ देना चाहिए और ऐसी लड़कियों को तो पैदा होने से पहले ही खत्म कर देना चाहिए, ऐसी बातें बुदबुदाने वाले लोग। सब खुश थे। सब लोग। भीड़ अब कानों के पास भिनभिनाती मक्खियों से अधिक कुछ नहीं थी। नेताजी हाथ जोड़कर आंबेडकर

पृष्ठ सं. 75 पर शेष भाग

कितने सपने कितनी हकीकत

सलीमा
मो. 8076225060

वातावरण में, 'जय श्रीराम' के नारे अब तेजी से गूंज रहे थे। भीड़ नारे लगाती हुई नूपुर रोहतगी के आलीशान अपार्टमेंट के नीचे से गुजर रही थी। नूपुर अपनी बालकनी से भीड़ को अपनी तरफ आते हुए देख रही थी और फिर उनके और करीब आने पर, नारों की आवाज बुलंद होते हुए सुन रही थी। वह शांत थी। भीड़ नारे लगाती हुई उसकी बालकनी से गुजर गई और 'श्री राम की जय जयकार', और 'मुल्लो भागो पाकिस्तान' के नारे धीरे-धीरे धीमे होते हुए समाप्त हो गए।

यह नफरत और आक्रामकता से ओत-प्रोत नारे नूपुर में मानो नई ऊर्जा का संचारण कर गए। उसका मन बल्लियों उछल रहा था, अपने अंदर उसने एक नया उत्साह सा महसूस किया। वह अपने कमरे की बालकनी से सीधे अपनी श्रृंगार मेज की तरफ बढ़ी और अपने लंबे-लंबे बाल संवारने लगी ताकि अपने यूट्यूब चैनल के लिए एक और तड़कती-भड़कती वीडियो बना सके।

नूपुर एक बेहद सुंदर चेहरे, बड़ी-बड़ी आंखों और भरे-भरे होंठो की मालकिन थी। उसका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक था।

उसे याद था, जैसे-जैसे वह अपने बालपन को पीछे छोड़कर किशोरावस्था की ओर बढ़ रही थी उसके रिश्तेदार और जाननेवाले उसे एक ही सलाह देते कि, 'बड़े होकर तुम हीरोइन ही बनना।' नूपुर ने पहले तो इस बात पर गौर नहीं किया पर जैसे-जैसे वो बड़ी होती गई उसे अहसास होने लगा कि वह सचमुच बहुत आकर्षक है। फिर चाहे वो रास्ते चलते लोग उसे घूर-घूर कर देखते हों या उसकी साथी लड़कियों या आंटियों की ईर्ष्या भरी नजरे हों, सब उसे एहसास करातीं कि वह बेहद सुंदर है।

अपने आपको शीशे में निहारते हुए वह अपनी उंगलियों से अपने बाल संवार रही थी। साथ में कुछ मुँह में बुदबुदाते हुए अपने यूट्यूब चैनल की अगली वीडियो की रिहर्सल कर रही हो। उसने अपनी नारंगी रंग की लिपिस्टक कुछ और गहरी की जो उसके नारंगी रंग के जैकेट से बिल्कुल मैच कर रही थी।

अपनी घुटनों से ऊपर डेनिम की स्कर्ट थोड़ी खींचकर उसने नीची करी

और तैयार हो गई मौजूदा सरकार की प्रशंसा में अपनी अगली वीडियो बनाने के लिए। अपना वीडियो बनाकर उसे विभिन्न सामाजिक मीडिया पर पोस्ट करके वो अतीत में खो गई। उसे वो दिन याद अभी याद है, जब उसका स्नातक का रिजल्ट आया था। उसी दिन उसने अपने माता-पिता से अपने बॉम्बे जाकर फिल्मों में भाग्य आजमाने की बात कही थी। कुछ नानुकुर करने के बाद उसके अभिभावक उसकी जिद्द के आगे झुक गए।

कुछ महीने बॉम्बे में, अथक प्रयासों से उसे एक बड़ी फिल्म में काम मिल गया। यह बड़ी फिल्म उसे यूं ही नहीं मिली थी। सत्ता के गलियारों से एक सिफारिश आई थी नूपुर के लिए। वह धीरे-धीरे अब फिल्मी पार्टियों से अधिक, राजनीतिक पार्टियों में चर्चा का विषय बन रही थी। उसकी पहली बड़ी फिल्म जिसमें उसके अलावा दर्जनों स्टार कास्ट भरी पड़ी थी और इन सबके बीच वो अपनी छाप छोड़ने में असफल रही और इस तरह वो अपनी पहचान बनाने में असफल रही। फिर कुछ सालों के बाद वह कुछ 'बी ग्रेड' की फिल्मों में काम पाने में सफल रही। कुछ रियल्टी शो और एड फिल्में करने पर भी नूपुर वो स्थान नहीं पा पाई जिसकी उसने कल्पना की थी।

आहिस्ता-आहिस्ता उसका फिल्मी सफर मानो समाप्त हो गया, मगर उसका एक चर्चित राजनेता संग जीवन का सफर शुरू हो गया था। वो उन दिनों बहुत खुश थी और अक्सर पेज 3 पार्टियों का हिस्सा रहती। गुपचुप होती राजनीतिक पार्टियों और रेव पार्टियों में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराती। शायद इसी बीच उसे राजनीति का चस्का लगा। नूपुर का उस राजनेता, मंजुल नाथ से 'लिव इन रिलेशन' कोई छह साल बाद ही समाप्त हो गया।

मगर एक राजनीतिक सफर उसका शुरू हो गया था। फिल्मों में तो उसके कोई खास संबंध नहीं बन पाए पर राजनीतिक संबंध बहुत मजबूत बन गए थे। टिकट पाने की लालसा में यहां भी उसका खूब शोषण हुआ। यह वह समय था जब नूपुर अपने व्यावसायिक और व्यक्तिगत सबसे बुरे दौर से गुजर रही थी। यही वो समय था जब उसने महानगरी बॉम्बे छोड़कर, अपने पैतृक घर काठियावाड़ का रुख किया।

उसका व्यक्तिगत जीवन उसके हाथ में नहीं था पर उसने अपने व्यावसायिक जीवन को सुधारने की ठान ली थी। इसकी शुरुआत उसने अपना एक यूट्यूब चैनल खोलकर किया। इस चैनल पर वो हर सप्ताह अपने एक-दो राजनीतिक विडियोज बनाकर पोस्ट कर देती और साथ ही अपने अन्य सामाजिक मीडिया पर भी साझा कर देती। सनातन सार बाय नूपुर' नामक चैनल को कुछ लाइक्स तो मिल जाते पर सब्सक्राइबर्स नहीं मिल रहे थे। खैर अपने विचार वो एक खास समाज/धर्म के विरुद्ध अपने विडियोज द्वारा रखने लगी। पर, वर्षों तक इस पर भी काम करके उसे कुछ खास सफलता नहीं मिली। देश में इस समय जो वर्तमान सत्तारूढ़ पार्टी जो कि उसी धर्म विशेष के विरुद्ध थे। वह अपनी हर नीति को इस तरह आकृति देती कि उस विशिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग/समुदाय को न सिर्फ मानसिक बल्कि सामाजिक और आर्थिक हानि भी पहुंचे। उस राजनीतिक पार्टी ने भी नूपुर को घास नहीं डाली।

उसकी विडियोज जो केवल जहर उगलती थीं, सनातन धर्म के आदर्शों से उसका दूर का भी नाता न था। पर उसका एक अपना एक दर्शकगण बन गया था और नूपुर के वह विचार सिर्फ वर्चुअल संसार तक ही सीमित थे, वास्तविकता से उसका कोई लेना देना नहीं था। वो धीमे-धीमे अपने इसी आभासीय संसार में धंस रही थी जैसे कुछ वर्ष पहले वो फिल्मी संसार की गर्त में धंस रही थी। ठीक इसी समय भारत की राष्ट्रीय हॉकी टीम का कप्तान उससे संपर्क बनाता हैं। उसके राजनैतिक विचार से एक मत रखता है, अपनी सहमति उस खिलाडी 'शिवान देवा' ने नूपुर की कई विडियोज में दिखाई थी। जल्द ही दोनो अच्छे दोस्त बन गये और यह दोस्ती प्यार मे बदलते देर ना लगी दोनों अब रेस्ट्रॉन, पब और सार्वजिक स्थानों पर मिलने लगे। कभी-कभार दोनो के फैंस उन्हे घेर लेते और उन से उनके रिश्ते की बाबत कई प्रश्न पूछते। करीब सालभर तक वो ऐसे ही मिलते रहे और एक-दूसरे को समझते रहे। अपने अतिव्यस्त कार्यक्रम से समय निकालकर शिवान, नुपूर के साथ समय बिताता। जब उनसे यह लंबी दूरी का रिश्ता नहीं संभला तो नुपूर ने शिवान को कोयंबतूर छोड़कर दिल्ली मे बसने के लिये मना लिया। नुपूर ने काठियावाड और शिवान ने कोयंबतूर छोड़ा और दिल्ली में एक किराए के आवास में स्थानातंरित हो गये। नुपूर अपने विडिओ और ऑडियोज वैसे ही सामाजिक मीडिया

पर पोस्ट कर रही थी, जिसको लेकर एक वर्ग उसकी आलोचना करता था। इन विडियोज के चलते कुछ माध्यमों से उसका अकाउंट्स हटा भी दिया गया था। पर वो ऐसे ही सजधज के उसी उत्साह से एक सच्चे अंधभक्त की तरह वैसे ही नफरती विडियोज पोस्ट किए जा रही थी। इधर शिवान अपने करियर में व्यस्त होता जा रहा था, उससे देश को बहुत आशाएं थीं। ओलिंपिक खेल नजदीक थे और शिवान से देश के लोगों को दूसरे स्वर्ण पदक की अपेक्षाएं थीं। शिवान ने भी खेल के अभ्यास में दिन-रात एक कर रखा था ताकि वो अपनी नूपुर को एक अच्छी जिंदगी दे सके। वह नूपुर से बहुत प्रेम करता था और उससे शादी करना चाहता था। देखते ही देखते उन्हें साथ-साथ रहते आठ वर्ष हो गए थे। इस समय दोनों के घरवालों की तरफ से शादी को लेकर दबाव बन रहा था। न सिर्फ वो दोनों ही बल्कि उनके घरवाले भी उनकी शादी बहुत धूमधाम से करना चाहते थे। जिसके लिए शिवान दिन-रात एक करके पैसा कमा रहा था, ताकि शादी किसी राजमहल में राजसी ठाठ-बाट से हो, हजारों मेहमान आएं, और मेहमानों को रिटर्न गिफ्ट्स भी मिलें, दुनिया भर से बीम आएं और अनगिनत पकवान मेहमानों को परोसे जाएं। यह सारी ख्याली तैयारियां करते-करते दो वर्ष और बीत गए। पर नूपुर क्योंकि पहले भी धोखा खा चुकी थी, तो दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है। उसने सोचा कि शिवान भी काफी समय टाल रहा है, कहीं मंजुल की तरह धोखा न दे दे। 'अगले महीने शादी कर लूंगा', 'अगले साल कर लूंगा', यही सब कहते-कहते कभी उसका एड शूट आ जाता, कभी खेल के अभ्यास की बारी, तो कभी टी.वी, का कोई रियल्टी शूट या फिर कोई अपना नया बिजनेस। वो इन सबमें व्यस्त हो जाता। नूपुर ने इसका एक उपाय निकला। उसने प्री-कॉशन्स लेने छोड़ दिए और अपना पूरा ध्यान अपने मां बनने में लगा दिया। वो अक्सर सोचती कि वह शिवान को जब अपने मां बनने की खुशखबरी देगी तो उसे मजबूरन शादी करनी ही पड़ेगी। इधर नूपुर ने अपनी पूरी ताकत लगा दी, पर हजार कोशिशें करके भी वो गर्भधारण ना कर सकी। उसकी यह मंशा शिवान से भी ना छुपी रह सकी। उसने नूपुर को समझाया और अपने प्यार का भरोसा दिलाया पर इस बार नूपुर न मानी और अपने प्रेमी से लड़ पड़ी कि तुम्हारी भव्य शादी के चक्कर में उसकी जैविक घड़ी बीतती जा रही है। काश वो (जब उनका यह संबंध शुरू ही हुआ था तब एक बार वो गर्भवती हुई थी) तब अपना गर्भपात ना कराती तो आज एक आठ-नौ वर्ष के बच्चे की मां होती। शिवान सब समझता था इसीलिए उसने नूपुर की खातिर उसको शहर की श्रेष्ठ स्त्री रोग विशेषज्ञ को दिखाता है। डॉक्टर ने कुछ दवाइयां दीं, कुछ टेस्ट करवाए फिर उन्हें छह सप्ताह बाद आकर दिखाने को कहा। लेकिन कोई सकारात्मक परिणाम नहीं आया। इलाज अब तीन माह का और बढ़ाया गया। डॉक्टर टीना ने उन्हें तसल्ली दी कि इलाज से सब ठीक हो जाएगा। पर अब नूपुर अपना सब्र खो चुकी थी। वह अपनी नौकरानी के साथ किसी आध्यात्मिक गुरु के पास भी जाने लगी थी। वहां वो झाड़ फूंक के साथ अपना देसी इलाज भी कराने लगी थी, पर कोई आस नजर न आई थी।

होते-होते यह बात दूर गांव में बैठी शिवान की माँ के कानों तक भी पहुंची। उसने शिवान से उसी समय वीडियो कॉलिंग की और स्थिति का जायजा लिया। अभी तक तो केवल नूपुर ही तनाव में थी अब उसकी होनेवाली सास भी तनाव में आ गई।

वो अब शिवान को लगभग रोज ही फोन करके दबाव बनाती कि शिवान उसकी पसंद की लड़की से शादी करके अपना घर बस ले। उन्हें नूपुर पहले से ही पसंद नहीं थी वो केवल शिवान की पसंद के कारण चुप थीं। पर अब वो अपने लाडले बेटे को संतानहीन कैसे देख सकती थीं। कोई भी माँ अपने बच्चे को एक भावी माता या भावी पिता के रूप में देखता है। वो भी शिवान को संतान सुख से परिपूर्ण देखना चाहती थीं। नूपुर को जब माताजी की यह मंशा जान पड़ी तो वह और तनाव में आ गई थी।

शिवान से उसका रिश्ता अब पहले-सा नहीं था। उसे अब अपना भविष्य अंधकारमय दिख रहा था। शिवान नूपुर को दिलोजान से चाहते हुए भी अपने माता-पिता से उचित दूरी नहीं बना पाया। वो अपने परिवार के भी बहुत निकट था, नूपुर को डर था कहीं शिवान अपने माता-पिता की बातों में आकर वापस कोयंबतूर न चला जाए।

इसका भी उसने एक हल जल्दी ही निकाल लिया। अपने उसी यूट्यूब

चैनल और अन्य मीडिया में आकर उसने बड़े भावनात्मक पोस्ट डालने शुरू कर दिए जिनमें उसने शिवान से कहीं अन्यत्र विवाह करने की प्रार्थना की। उसने इन चैनलों पर शिवान से हाथ जोड़कर विनती की कि वह उसको संतान का सुख नहीं दे सकती इसीलिए वो किसी कम उम्र लड़की से ब्याह रचा ले। आगे की विडियोज में उसने शिवान से कहा कि वो भविष्य में उसको बहुत सारे बच्चों का पिता के रूप में देखना चाहती है, और इस तरह उसे हमेशा खुश देखना चाहती है। आँखों में मोटे-मोटे आंसू भरकर वो आगे कहती है, 'मैंने आस छोड़ दी है माँ बनने की पर तुम शादी कर लो' वह आगे हाथ जोड़कर कहती है, 'तुम्हें ढेर सारे बच्चों में से एक को मैं गोद ले लूंगी और उसी के सहारे अपना जीवन काट लूंगी।'

नूपुर ने उन विडियोज में अपनी वफादारी की कसमें खाईं और कहा कि शेष जीवन वो बिना शादी के ही काट लेगी। यह सारी इमोशनल विडियोज शिवान के घरवालों के अलावा उन सभी ने देखें जो जरा-सा भी बॉलीवुड और खेलों में दिलचस्पी रखते थे।

उन दोनों के ही फैंस को नूपुर से सहानभूति हुई और कुछ दिनों में लाइक्स और सब्सक्राइबर्स दोगुने हो गए। यह इमोशनल विडियोज अब वायरल होने लगे। सोशल मीडिया पर चर्चा का विषय बन गए जो चर्चा नूपुर की सहानुभूति से शुरू होकर शिवान की आलोचना पर भी खत्म नहीं होने का नाम ले रही थी। हजारों लाखों फैंस अब शिवान से सवाल पूछ रहे थे कि क्यों वह बच्चे के चलते अपना इतना पुराना प्यार भरा रिश्ता तोड़ रहा है। वजह क्या सिर्फ नूपुर का माँ न बन पाना है? इस पर शिवान बहुत ट्रोल हो रहा था। 'क्या यही है प्यार तुम्हारा?' एक फैन ने पूछा, 'अगर कोई स्त्री माँ नहीं बन पा रही तो इसमें उसका क्या कसूर है?' एक यूजर ने तो कहा, 'नूपुर एक अच्छी बीवी बन सकती है, वो एक अच्छी बहू, भाभी, मामी, चाची, जेठानी, देवरानी सब बन सकती है, यदि वो एक माँ नहीं बन सकती तो इसमें उसका क्या दोष है? 'कुछ लोगों ने उनको आईवीएफ की सलाह भी दे डाली। नूपुर तो इतनी चर्चा में जब भी नहीं आई थी, तब वो बॉलीवुड में थी। वो लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने में कामयाब हो गई।

इस समय शिवान एक चक्रम की भांति हो गया था वो अपने करियर पर भी ध्यान नहीं दे पा रहा था। वह सोचने में असमर्थ था कि अपने बिजनेस को आगे बढ़ाए या अपने माता-पिता पर ध्यान दे या फिर नूपुर के साथ उसके संबंधों को नया आयाम दे।

वो नूपुर को सचमुच नहीं छोड़ना चाहता था पर अपने माता-पिता को भी नाराज नहीं करना चाहता था। इन सबके बीच नूपुर दिल्ली से लगे, गाज़ियाबाद में अपने किसी ज्ञात बंदे के स्पा का उद्घाटन करने गई। जहाँ उसकी मुलाकात सीमा चौधरी नामक लड़की से हुई जो उसी स्पा में कर्मचारी/ ब्यूटीशियन थी। सीमा ने उसकी सुंदरता में कसीदे पढ़े और कहा कि वो नूपुर की बड़ीवाली प्रशंसक है। जल्द ही दोनों की अच्छी बातचीत होने लगी। कई बार नूपुर सीमा को घर पर ही फेशियल और मालिश के लिए बुला लेती। इन्हीं मुलाकातों में सीमा ने नूपुर को सेरोगेसी का सुझाव दिया और अपनी कोख उधार देने की बात की। वो नूपुर की इतनी बड़ी फैन थी कि इस काम के लिए वो किसी पारिश्रमिक भी लेने से इंकार कर रही थी। नूपुर को यह सुझाव पसंद आया और उसने शिवान को सेरोगेसी के लिए मना लिया। वो अब और समय नहीं गंवाना चाहती थी। और अपने पर आईवीएफ का प्रयोग भी नहीं करना चाहती थी। अपनी डॉक्टर टीना से उसने सीमा को मिलवा दिया। सीमा की कुछ प्रारंभिक जांचें हुई और उसे पूरी प्रक्रिया के बारे में बता दिया। नियत समय पर सेरोगेसी के लिए सीमा को क्लीनिक बुलाया गया। पूरी प्रक्रिया कुछ समय की थी और सीमा को शाम तक उसके घर भेज दिया गया। अब नूपुर और शिवान कई मंदिरों में चढ़ावे और मन्नतें मांगते फिरे। उन दोनों को ही अपने बच्चे की लालसा थी। दोनों के लिए ही यह चंद रोज बरसों के बराबर थे। उनका इंतजार समाप्त हुआ कुछ ही सप्ताह में सीमा ने उन्हें यह खुशखबरी सुनाई। सीमा से और क्लीनिक स्टाफ से यह बात राज रखने को कही गई।

यह बात तय की गई कि जब सीमा की डिलीवरी हो जाएगी तभी मीडिया में यह बात डिक्लेयर की जाएगी कि यह जोड़ा मां-बाप बन गया है। सेरोगेसी भी टॉप सीक्रेट रखी जाएगी। इसी के चलते सीमा से भी कहा गया कि कुछ दिन बाद ही वह स्पा जाना भी छोड़ दे और घर पर आराम करे।

सीमा के खान-पान का दवाइयों का नूपुर बहुत ध्यान रखती। इस लंबी प्रतिक्षा के बाद प्रसव का भी समय आ गया। प्रसव पीड़ा से तड़पती सीमा डाक्टर टीना के क्लीनिक में ही दाखिल हुई। नूपुर उसका हाथ पकड़ी एक-एक पग उसके स्ट्रैचर के साथ थी। अपने दाएं हाथ की मुट्ठी में सीमा कुछ भींचे हुए थी। पसीनो से वो भीगी हुई थी और अपने होठों में अंदर ही अंदर जैसे कोई प्रार्थना या जाप कर रही थी। नूपुर उसका बायां हाथ लगातार पकड़े हुए थी और उसे बराबर सांत्वना दे रही थी। अपने दोनों हाथों में उसका हाथ लेकर वो सीमा को प्यार से पुचकार रही थी। इस वक्त तो मानो नूपुर सीमा चौधरी से भी अधिक घबरा रही थी। उसकी टांगे कांप रही थीं और हृदय गति बड़ी तेज लग रही थी। नर्स जब सीमा चौधरी को चेक करने आई तो वहीं से उसने जूनियर नर्स को चिल्लाकर बुलाया और कहा कि मरीज अब डिलीवरी के लिए तैयार है और वो डॉ. टीना को तुरंत बुला लाए। यह कहकर वह सीमा का स्ट्रैचर स्वयं ही ठेलकर ओ.टी. की ओर ले गई। नूपुर का वर्षों का सपना मानो साकार होनेवाला हो। अब वह कुछ ही पलों में माँ बननेवाली है, यह सोचकर ही वह रोमांच से भर उठी। अपने शिशु को गोद में भरने का अनुभव ही कुछ और होता है, यह सोचकर अनायास ही वो अपने हाथों की गोद बनाने लगी कि तभी उसकी हथेली में कुछ चुभा। उसने अपनी मुट्ठी खोलकर देखी तो भौचक्की रह गई। उसकी हथेली पर एक बड़ा-सा सिक्का चमक रहा था। उसने फटी-फटी आंखों से जल्दी से

सूचना व आग्रह

पत्रिका में बहुजन साहित्य की तीनों धाराओं यानी दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और पिछड़ा वर्ग साहित्य के साथ स्त्री सशक्तिकरण से जुड़ी रचनाएं आमंत्रित है। हम अन्य उपेक्षित अस्मिताओं जैसे विकलांगता व थेड जेंडर को भी महत्व देंगे। साथ ही जन सरोकारों से जुड़े लेखकों को भी छापेंगे। संपादक मंडल

उस सिक्के को उलट पलट कर देखा तो सिक्के के एक ओर मुसलमानों की प्रसिद्ध काबा और दूसरी ओर अल्लाह लिखा था। नूपुर भारी पगों से बढ़कर ओ.टी. के बाहर बिछी बेंच पर धम्म से बैठ जाती है। उसकी स्थिति ऐसी थी जैसे उसे लकवा मार गया हो। उसे पता ही नहीं चला कि कैसे सीमा के हाथ में वो सिक्का आ गया। प्रसव में भयंकर पीड़ा को सहने के लिए और ताकत लेने के लिए सीमा ने वो सिक्का अपनी मुट्ठी में ले रखा था। नूपुर बुदबुदाई, 'उसे इतना बड़ा कदम उठाने से पहले सीमा की पृष्ठभूमि चेक करानी चाहिए थी। कैसे वो भावनाओं में बहकर इतना बड़ा फैसला कर बैठी?' उसने बेंच के सिरे अपने दोनों हाथों से पकड़ लिए और बुदबुदाई, 'अब समझ आ रहा है कि क्यों सीमा उसकी फैमिली के बारे में कुछ पूछने पर सकपका जाती थी और बड़ी कुशलता से उसको टाल देती थी।" नूपुर को याद आया कि जब वो और शिवान सीमा के किराए के घर पर उससे मिलने जाते थे तब वहाँ वह अकेली रहती थी तब एक बार नूपुर ने घुमा फिराकर उससे उसकी फैमिली के बारे में जब पूछा तो सीमा बुरा मान गई और कहा, 'क्या दीदी जिस फैमिली के बारे में आप पूछती हो उसे तो मैं दसियो साल पहले दूर गांव में छोड़कर आई हूँ।' गहरी साँस लेकर वो आगे बोली, 'शहर उनके लिए ही कमाने आई थी मगर उन्होंने सारे नाते रिश्ते खत्म कर लिए मेरा उनसे अब कोई सरोकार नहीं है।'

नूपुर ने भी उसकी इस हालत को देखते हुए फिर उससे कोई ऐसा प्रश्न नहीं पूछा।

नूपुर को अब लगा कि पीड़ा के दौरान सीमा जो मन ही मन बुदबुदा रही थी वो शायद अरबी में कुछ पढ़ रही थी। तभी ओ.टी. से नवजात शिशु के रोने की आवाज आती है। यह पल मानो नूपुर में व्याप्त सारी कड़वाहट सारे विष को निचोड़कर उसमें से निकाल देता है। उस एक ही पल में वो वर्षों से मुसलमानों के लिए पलता विष उसके मन-मस्तिष्क से मानो निकल जाता है और उसके गुलाब जैसे चेहरे पर एक अनूठी चमक आ जाती है। वो सिक्के को चूमकर उसे अपनी मुट्ठी में भींच लेती है फिर मुस्कुराकर बेंच से उठ खड़ी होती है।

कहीं दूर से 'जय श्री राम' के नारे उसके कानो में आते हैं। पर वो खोखले नारे उस पर पहले के जैसे असर नहीं करते उसके कानो में तो उसके बच्चे की किलकारियां गूँज रही थीं❑

मेरी स्वानुभूति तेरी स्वानुभूति

डॉ. कनक लता
मो. 9899795774

"आप हमारे साथ खाना नहीं खा सकते, मुखिया जी!" अध्यापक ने निर्णयात्मक स्वर में ब्राह्मण-जाति के मुखिया से कहा, 'क्यों मास्टर जी...?" मुखिया ने बड़ी हैरानी से पूछा

"यदि आप हमारे साथ खाएँगे, तो हम खाना नहीं खाएँगे, क्योंकि यह हमारा अपमान होगा। आप हमारे साथ नहीं खा सकते।' अध्यापक ने पूरी दृढ़ता से कहा मुखिया यह सुनकर अवाक् रह गए, उनका चेहरा फक्क पड़ गया, उनसे कुछ कहते नहीं बन रहा था, अपमान और तिरस्कार के कारण उनकी आँखें भर आई, उनकी आँखों में आँसू तैरने लगे थे। आसपास खड़े लोगों को समझ में नहीं आ रहा था कि ब्राहमण मुखिया के साथ खाना खाने में शिक्षक महोदय को क्यों अपना अपमान महसूस हो रहा है, जबकि ब्राह्मण तो सर्वश्रेष्ठ होता हैं, धरती पर ईश्वर-स्वरूप; यानी भूदेव! इतना ही नहीं शिक्षक महोदय स्वयं भी तो ब्राह्मण ही हैं, फिर वे अपने सजातीय-बंधु के साथ ऐसा क्यों कर रहे हैं? इसीलिए लोग अधिक हैरान थे, मुखिया के रिश्तेदार भी और अन्य ग्रामीण भी...

...उत्तराखंड में एक प्रसिद्ध धार्मिक-स्थल कोटद्वार है, जिसके एक कस्बे, उसे गाँव कहना अधिक ठीक होगा, में वहाँ के बेहद साधन-संपन्न ब्राह्मण मुखिया मनोहरलाल पैन्यूली के बेटे आशुतोष पैन्यूली की शादी हुई, तो उन्होंने गाँव के सभी लोगों को प्रीति-भोज पर न्योता दिया। गाँव की लगभग सभी जातियों और वर्णों के लोग आमंत्रित थे। उदारता दिखाते हुए मुखिया एवं उनके परिवार वाले गाँव के आसपास के सभी सरकारी विद्यालयों में जाकर उनके विद्यार्थियों को भी उनके अध्यापकों सहित आमंत्रित कर आये थे, जिनमें पास के ही एक सरकारी प्राथमिक पाठशाला के बच्चे भी शामिल थे। वंचित-समाजों से आनेवाले वे अधि-कांश छोटे-छोटे बच्चे स्वादिष्ट भोजन की आशा में खुशी के मारे अपनी-अपनी कक्षाओं में शोर मचा रहे थे। अध्यापक भी खुश थे कि एक दिन ही सही, इन अभागे गरीब बच्चों को स्वादिष्ट भोजन तो नसीब होगा! भोजन-माताएँ भी खुश थीं कि उनको एक दिन तो बच्चों के लिए भोजन बनाने से छुट्टी मिली और साथ ही उनको भी आज अच्छा और लजीज खाना खाने को मिलेगा।

इस प्राथमिक विद्यालय में लगभग

36 बच्चे थे और तीन अध्यापक-अध्यापिकाएँ–जमनालाल जगूड़ी, पूनम जैन और पद्मा पुनिया। जब भोज में जाने का समय हुआ, तब अध्यापकों ने एक-दूसरे से सलाह की कि बच्चों को कौन ले जाए। पूनम जैन को शाम की बस से अपनी बेटी के पास जाना था, जो देहरादून में रहती थी। अगले 4 दिन विद्यालय में छुट्टी थी, जिसका लाभ उठाकर वह बेटी और नाती-नातिन से मिल आना चाहती थीं। पद्मा पुनिया के पति की तबियत पिछले कुछ दिनों से कुछ ठीक नहीं चल रही थी, उन्हें चलने-फिरने में भी दिक्कत हो रही थी, बीमारी से काफी कमजोरी आ गई थी, लेकिन ऐसी स्थिति में भी वे चाहकर भी विद्यालय में बच्चों के इम्तिहान नजदीक होने के कारण छुट्टी नहीं ले सकीं थीं। घर में भी पति की देखभाल करनेवाला कोई नहीं था, दो बेटों में से बड़ा बेटा पिछले साल ही शादी के बाद पत्नी को लेकर दिल्ली चला गया था, वहीं उसकी नौकरी लगी थी। छोटे बेटे का अभी-अभी देहरादून में इंजीनियरिंग की तैयारी के लिए एक महँगे कोचिंग में एडमिशन हुआ था, तो वह अपनी पढ़ाई के सिलसिले में वहीं रह रहा था। इसलिए पद्मा जी पति को घर में अकेला छोड़कर आई थीं, हालाँकि उन्होंने अपने पड़ोसियों से उनको देखते रहने का आग्रह किया था, किन्तु चिंता तो फिर भी बनी ही रहती थी। किसी तरह विद्यालय में जैसे-तैसे समय बिताती थीं, लेकिन पूरा ध्यान घर में अकेले बिस्तर पर पड़े पति पर ही लगा रहता था। ऐसे में विद्यालय के बच्चों के साथ भोज में जाने पर अतिरिक्त समय तक रुकना उनके लिए बेहद मुश्किल था।

तीसरे अध्यापक जमनालाल जगूड़ी जी के बच्चे अभी छोटे ही थे। हालाँकि पत्नी भी किसी अन्य विद्यालय में अध्यापिका थीं और पति के बाद ही घर पहुँचतीं थी। दरअसल उनका घर उनके विद्यालय से मात्र 15-16 किलोमीटर की दूरी पर था, जबकि उनकी पत्नी घर से लगभग 28 किलोमीटर दूर स्थित विद्यालय में कार्यरत थीं। दोनों की सरकारी नौकरी थी, जिसके इतने फायदे हैं कि दोनों में से कोई अपनी नौकरी छोड़ना नहीं चाहता था। साथ ही, कोटद्वार में रहने का फैसला पति-पत्नी ने बच्चों की बेहतर पढ़ाई एवं कुछ बेहतर शहरी-सुविधाओं के मददेनजर भी किया था, क्योंकि शहर होने के कारण वहां कुछ अच्छे स्कूल हैं, जहाँ वे अपने बच्चों को कुछ बेहतर शिक्षा दिला सकते थे। सरकारी विद्यालयों में तो अपने बच्चों को पढ़ाने के विषय में वे सोच ही नहीं सकते, जिनकी हालत अब ऐसी नहीं रही कि अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा का सपना देखनेवाले माता-पिता उनकी ओर देखें भी। इसलिए तनिक भी मजबूत आर्थिक-स्थिति वाले माता-पिता प्राइवेट स्कूलों की ओर ही देखते हैं। सरकारी विद्यालयों में तो बस वही बच्चे अब नजर आते हैं, जिनके माता-पिता की आर्थिक स्थिति बहुत अधिक खराब है या फिर वंचित-समाज के बच्चे, अधिकांशतः जिनके माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा और बेहतर भविष्य के प्रति शायद चिंतित नहीं रहते हैं, क्योंकि उन्होंने यह मान लिया है कि पढ़-लिखकर भी उनके बच्चों को आखिरकार वही करना है, जो खुद अनपढ़ रहकर वे कर रहे हैं।

...तो अपने-अपने विद्यालयों से पति-पत्नी में से जमनालाल जी पहले घर पहुँचते थे और पत्नी सविता लगभग पौन घंटे बाद। जमनालाल जी लौटते हुए अपने दोनों बच्चों, 8 वर्षीया सौम्या और 12 वर्षीय शिशिर को स्कूल से अपनी बाइक पर ही लेते आते थे, जो रास्ते में ही पड़ता था। जब तक पत्नी घर पहुँचती थीं, तब तक बच्चे खा-पीकर खेलने में मग्न हो चुके रहते थे, लेकिन आज विद्यालय में उन गरीब और मजलूम बच्चों को गाँव के मुखिया की ओर से भोजन का निमंत्रण मिला था, अधिकतर बच्चे भी अच्छे और स्वादिष्ट भोजन पाने की सोच-सोचकर बेहद उत्साहित थे। दोनों ही कारणों से इस निमंत्रण को अनदेखा नहीं किया जा सकता था। अतः तय हुआ कि जमनालाल जी बच्चों को लेकर मुखिया के घर दावत पर जाएँगे। उन्होंने अपने एक पडोसी को फोन करके अपने बच्चों को स्कूल से ले आने को कह दिया, पत्नी भी थोड़ी देर में घर आ ही जाती।

तय समय पर मास्टर जमनालाल जी 36 विद्यार्थियों को लेकर गाँव की ओर चले, मुखिया मनोहरलाल पैन्यूली जी के घर की ओर, जहाँ दावत थी। रास्ते भर बच्चे शोर मचाते रहे कि इस दावत में क्या-क्या बना होगा, वे क्या-क्या और कितना-कितना खाएँगें, पिछली बार उन्होंने कब किसी दावत में अच्छा खाना खाया था... आदि! इन अभागे बच्चों की बातें सुनकर जमनालाल जी का दिल कचोटने लगा, 'क्या ये बच्चे इतने बदनसीब हैं कि उनको भरपेट भोजन भी नसीब नहीं हो सकता?', '...कि उनके सपनों में एक अच्छा भोजन बसता है, एक सुन्दर भविष्य नहीं, एक अच्छा करियर नहीं, वैज्ञानिक, डॉक्टर, अध्यापक, इंजीनियर,

आदि बनने की ख्वाहिशें नहीं? लेकिन वे या उन जैसे लोग कर भी क्या सकते हैं, जब कोई समाज ही यह ठाने बैठा हो कि उसे भूखे-असहाय गुलामों की एक बड़ी-सी फौज चाहिए, जो भूख से लड़ते हुए उसके सामने सदैव सिर झुकाए खड़ी रहे, जिससे समाज के कुछ वर्गों को अपने 'दाता' होने का, 'भाग्य-विधाता' होने का, 'स्वामी' होने का अनिर्वचनीय आनंद मिलता रहे...?'

मुखिया का घर आ गया, घर क्या था, एक तरह से महल ही था। ईश्वर ने उनपर अपनी भरपूर कृपा बरसाई थी... जैसाकि ईश्वर हमेशा से करते आये हैं! वे भारत में सवर्णों पर ही अपनी कृपा बरसाते आए हैं, इसके बाद तो उनके पास गरीबों-वंचितों पर बरसाने के लिए कुछ बचता ही नहीं, ईश्वर भी बेचारे करें तो क्या करें, कहाँ से लायें वंचितों और गरीबों पर बरसाने के लिए? मुखिया का पूरा घर रंग-बिरंगे फूलों और आम के पत्तों से सजा हुआ था, बाहर विशाल मैदान में चारों तरफ अलग-अलग रंगों और डिजाइन के शामियाने लगे थे, रंग-बिरंगी झालरों से पूरा इलाका सजा हुआ था, चटकदार झंडियाँ भी जगह-जगह लगाई गई थीं, गेंदे और गुलाब सहित अनेक प्रकार के फूलों के खूबसूरत तोरण और बंदनवार लगाए गए थे, जिनकी सुगंध किसी के भी मन को विभोर कर देने को काफी थी। तरह-तरह के रंग-बिरंगे नए कपड़ों में सजे लोग आ-जा रहे थे, चारों ओर खूब चहल-पहल थी– यानी चारों तरफ अकुंठ खुशी का माहौल था। मुखिया और उनके नाते-रिश्तेदार मलमल और रेशमी कपड़े पहने, अपने-अपने सिरों पर खूबसूरत गुलाबी पगड़ी बाँधे, अपने गुलाबी चेहरों पर मुस्कराहट चिपकाए सभी आदरणीय मेहमानों का स्वागत कर रहे थे। चारों ओर तरह-तरह के व्यंजनों की फैली खुशबू जैसे सभी को अपनी ओर खींच रही थी...

ठीक इसी समय मास्टरजी भी अपने छात्र-छात्राओं के साथ वहाँ पहुँचे। वे सब वहाँ एक जगह खड़े होकर भीड़ में मुखिया या उनके घरवालों में से किसी पहचानवाले को ढूँढने लगे। इसी बीच मुखिया जी, जो थोड़ी ही दूरी पर मेहमानों से बात कर रहे थे, की नजर उन लोगों पर पड़ी, वे लपककर वहाँ आये और अध्यापक और बच्चों का स्वागत किया और वहाँ आने के लिए धन्यवाद दिया। बच्चे वहाँ की रौनक देखकर हैरान थे, वे यही नहीं समझ पा रहे थे कि इतने लोग कहाँ से आ गए। कुछ बच्चों को यह सवाल परेशान कर रहा था कि इतने सारे फूल कहाँ से आये होंगे, किस गाड़ी में भरकर इतने सारे फूल लाये गए होंगे, इतने सारे फूलों की माला बनाने में कितने दिन लगे होंगे ...वगैरह-वगैरह...!

इसी बीच बच्चों का ध्यान विभिन्न प्रकार के व्यंजनों की खुशबू की ओर गया, बच्चे अनुमान लगाने लगे कि किन-किन व्यंजनों की खुशबुएँ आ रही हैं। बच्चों की बातें सुनकर मुस्कुराते हुए मुखिया ने शरबत परोसनेवाले एक सेवक को आदेश दिया कि वह बच्चों को शरबत पिलाए। सेवक अपने कई सहयोगियों के साथ कई ट्रे में रंग-बिरंगी शरबतों से भरे दर्जनों गिलास ले आया। रंग-बिरंगी शरबत देखकर बच्चों के बीच होड़ मच गई कि कौन किस रंग की शरबत पिएगा। इस चक्कर में छीना-झपटी के बीच शरबत के दो-तीन गिलास नीचे गिर पड़े, लेकिन गनीमत थी कि वे डिस्पोजल गिलास प्लास्टिक के थे, इसलिए टूटे नहीं और बच्चे चोटिल नहीं हुए। अध्यापक बच्चों का यह व्यवहार देख थोड़े झेंप-से गए और उनको डाँटती-सी नजर से देखकर इशारे से शरारतें करने से मना किया। लेकिन मुखिया विनोद से हँस पड़े और कहा, "कोई बात नहीं मास्टरजी, बच्चे ही हैं।" मास्टर साहब को भी साथ देने के लिए मजबूरी में उनके साथ हँसना पड़ा।

शरबत पी लेने के बाद मुखिया ने कुछ देर बच्चों को वहाँ घूमने और चारों ओर की रौनक और सजावट देखने को कहा, क्योंकि अभी कुछ लोग खाना खा रहे थे। मास्टरजी ने बच्चों को शांति बनाए रखने और एक साथ रहने की हिदायत के साथ समारोह-स्थल में घूमने की इजाजत दे दी। दावत की खुशी में स्कूल में भी खाना नहीं खाने के कारण भूख से व्याकुल और भोजन की खुशबू से उतावले हो रहे बच्चे किसी तरह अपने मन को समझाते हुए समारोह-स्थल की रौनक और सजावट देखकर अपने मन को बहलाने की कोशिश करने लगे। मास्टरजी गाँव के अन्य लोगों से मिलने और बात करने लगे, विद्यालय की कुछ समस्याओं का हल निकालने के लिए उनको ग्रामीणों और मुखिया से मदद की जरूरत थी। अन्य सरकारी स्कूलों से आये बच्चों में से कुछ तो अलग-अलग स्थानों पर खाना खा रहे थे, कुछ खाने के बाद शरबत की चुस्कियाँ ले रहे थे, तो कुछ मिठाइयों का आनंद ले रहे थे। कुछ बच्चे उन्हीं की तरह बाहर घूमते हुए खाने के लिए अपनी बारी का इंतजार कर रहे थे। जो बच्चे खाना खा चुके थे, वे व्यंजनों के

प्रकार और उनके विभिन्न स्वादों के बारे में रस ले-लेकर एक-दूसरे को बता रहे थे। भूखे बच्चे उनकी बातें सुनकर किसी तरह अपनी जीभ और पेट को सांत्वना देने की असफल कोशिशों में जुटे थे।

थोड़ी देर बाद मुखिया के एक नौकर ने आकर बच्चों से कहा, 'अब तुमलोग खाना खाने चल सकते हो।" बच्चे बेसब्र हो उठे, वे अपने गुरुजी को ढूँढने लगे, ताकि वे उनको खाना खाने की अनुमति दे सकें और उनके साथ भोजन-स्थल पर चल सकें। मास्टरजी कुछ दूरी पर ही दूसरे विद्यालय के अध्यापकों और गाँव के ही दो-तीन अभिभावकों के साथ अपने विद्यालय की किसी समस्या पर चर्चा में तल्लीन थे। बच्चों ने उन्हें ढूँढ लिया और भागे-भागे उनके पास गए और बताया कि उनको खाने के लिए बुलाया गया है। बच्चों की व्यग्रता देखकर मास्टरजी उनके साथ चल पड़े। भोजन-स्थल पर कुछ लोग पंगत में बैठ चुके थे, लेकिन अभी भी बहुत जगह खाली थी। मास्टरजी ने बच्चों को बैठने के लिए कहा, बच्चे खुशी से चहकते हुए अपना-अपना स्थान लेने को दौड़े, लेकिन तभी मुखिया के बड़े साले ने बच्चों को डाँटते हुए रोक दिया। उनके मास्टरजी वहीं खड़े सब देख रहे थे। वह व्यक्ति बच्चों से बारी-बारी से एक-एक करके उनकी जाति पूछने लगा और उनकी जाति पूछते हुए उनमें से कुछ बच्चों को वहीं बैठकर सबके साथ खाने की अनुमति दी और कुछ बच्चों को उस जगह जाकर खाना खाने को कहा, जो उनके लिए खासतौर पर बनाया गया था, ये बच्चे वंचित समुदायों से थे। यह सब देख रहे शिक्षक महोदय ने इसका विरोध किया, तो वहाँ उपस्थित लोग मास्टरजी को समझाने लगे, 'अरे मास्टरजी, जब भगवान ने ही सबको बराबर नहीं बनाया है, तो हम कौन होते हैं। भगवान के विधान का विरोध करनेवाले..?"

'हमारे ऋषि-मुनियों की बनाई गई परंपरा है ये तो, गलत कैसे हो सकती है? यदि ये गलत होता, तो हमारे महान ऋषि-मुनि ऐसी परंपरा बनाते ही क्यों? आप हमारे ऋषि-मुनियों से तो अधिक नहीं जानते ना, मास्टरजी!'

'अरे मास्टरजी, अब भगवान के विधान को तो गलत मत ही कहो आप. ..!' लेकिन मास्टरजी नहीं माने। बच्चे सहमे हुए इस पूरे प्रकरण को देख रहे थे। उनकी आँखों में उदासी और मायूसी थी। जिन बच्चों को किसी और स्थान पर बैठने को कहा जा रहा था, उनकी आँखों में एक अलग भाव दिख रहा था, जो तिरस्कार, उपेक्षा और अपमान से उपजता है। शायद उन बच्चों ने अपनी बाल-बुद्धि से भी यह 'समझ' लिया था कि वे समाज में बाकी लोगों के साथ बैठने के 'लायक' नहीं हैं। उनकी आँखें बुझी हुई थीं, उनमें भोजन के लिए अब वो ललक नहीं दिख रही थी, जो थोड़ी देर पहले थी।

...और उनके वे छोटे-छोटे दोस्त एवं सहपाठी, जिनको वहीं बैठने को कहा गया था, यानी उच्च-वर्णीय बालक-बालिकाएँ...? वे क्या सोच रहे थे? उनकी आँखों में जैसे कोई शिकायत तैर रही थी उन लोगों के विरुद्ध, जो उनके दोस्तों और सहपाठियों को उनसे अलग देख और समझ रहे थे। विद्यालय में साथ-साथ पढ़ते, खेलते, खाते हुए उन छोटे-छोटे बच्चों के कोमल मन में अभी तक वह भावना ठीक से उत्पन्न नहीं हो पाई थी, जो किसी को अपने 'उच्चवर्णीय' और 'विशिष्ट' होने का एहसास दिलाती है, तो किसी को 'निम्नवर्णीय' और 'दीन-हीन' होने का। ये बच्चे भी जैसे स्वयं अपने ही पेट की भूख से नाराज-से हो रहे थे, अपने दोस्तों को अपमानित और तिरस्कृत होते देख शायद उनकी भी खाने की इच्छा जैसे बुझने लगी थी...

हालाँकि ये सभी बच्चे, सामाजिक-संरचना और उसकी व्यवस्थाओं को समझने के लिए अभी बहुत छोटे थे, मगर उनमें से कुछ को समाज से अक्सर मिलनेवाले तिरस्कार एवं अपमानजनक व्यवहार और कुछ को विशेष सम्मानजनक भाव ने उनको धीरे-धीरे यह तो जताना शुरू कर ही दिया था कि उनमें से कौन विशेष-वर्ग का है, कौन सामान्य-मनुष्य है और किसकी हैसियत गंदगी में रहनेवाले बदबूदार जानवरों से भी कमतर है। आखिर समाज ऐसे ही तो अपने बालक-बालिकाओं को भविष्य के लिए प्रशिक्षित करता है! उसके लिए कोई अलग से पाठशाला थोड़े न होती है? पाठशालाएँ, आधुनिक लोकतान्त्रिक पाठशालाएँ, तो मानवीय मूल्य और उनके नैसर्गिक एवं संवैधानिक अधिकारों की शिक्षा देने के लिए बनाई जाती हैं। लेकिन समाज की परंपराओं और धर्म के रक्षकों में से किसी ने भी उनमें से किसी भी बच्चे के किसी भी मनोभाव को न तो देखा, न समझा, न देखने-जानने की जरूरत समझी– न उनके द्वारा उपेक्षित और तिरस्कृत बच्चों के, न अपने ही उच्चवर्णीय सम्मानित समाज के बच्चों के। लेकिन शिक्षक महोदय सब देख और समझ रहे थे। उन्हें अपने प्रत्येक विद्यार्थी की मन:स्थिति ज्ञात थी।

इसीलिए, और शिक्षक होने के दायित्वों के कारण भी, उन्होंने दृढ़ता से अपनी बात रखी, "यदि आपलोगों को मेरे वंचित-तबकों के विद्यार्थियों के साथ भोजन करने में आपत्ति है, तो आपलोग हमारे साथ भोजन मत कीजिए। लेकिन मेरे सभी विद्यार्थियों और मेरे लिए एक साथ बैठने की व्यवस्था कर दीजिए, जहाँ भी आपलोगों को ठीक लगे, मेरे विद्यार्थी अलग-अलग समूह में भोजन नहीं करेंगें, बल्कि वे सब और मैं एक साथ ही खाना खाएँगे...।" विवाद बढ़ता देखकर वे चाहते थे कि बीच का कोई रास्ता निकल जाए, लेकिन वे किसी भी कीमत पर अपने विद्यार्थियों को जातियों के आधार पर अलग-अलग समूहों में बिठाकर खाना खिलाने के पक्ष में नहीं थे, इसलिए वे सबको समझाने की कोशिश कर रहे थे, 'विद्यालय में मेरे सभी विद्यार्थी एक साथ रहते हैं, एक साथ पढ़ते हैं, साथ-साथ खेलते हैं, यहाँ तक कि सभी बच्चे विद्यालय में एक साथ एक ही जगह बैठकर खाना भी खाते हैं। हम अपने विद्यार्थियों में भेद नहीं करते। आखिर पढ़ने-पढ़ाने का फायदा ही क्या, जब हम इन चीजों से ऊपर ही नहीं उठ सकें?'

शिक्षक महोदय ने सबको समझाने की कोशिश करते रहे, लेकिन लोग इस बात पर अड़ गए कि ऐसा करना धर्म-विरुद्ध होगा। मुखिया के साले साहब का तर्क था–"बात तो एक ही होगी, मास्टरजीऽऽ...! जो बच्चे ऊँची जाति के हैं, यदि वे इन नीच जात वालों के साथ खाना खाएँगे, तो उनका धर्म तो भ्रष्ट होगा ही नाऽऽ..!" पास खड़े पंडित जी ने धर्म के सामने खड़ी विकट स्थिति की गंभीरता को स्पष्ट करने का प्रयास किया– "और फिर जब उच्च-वर्ण के बालक-बालिकाएं अपना धर्म भ्रष्ट करवाकर अपने-अपने घरों को जाएँगे, तो वहाँ घरवालों का ध र्म भी भ्रष्ट कर देंगें।" आदि

अभी यह वाद-विवाद चल ही रहा था कि मुखिया वहाँ आ गए, किसी ने उनको बता दिया था इस विवाद के बारे में। उन्होंने भी मास्टरजी को दुनिया और धर्म का ऊँच-नीच समझाने के बहुत प्रयास किए, वे नहीं चाहते थे कि इन वंचित-अछूत बच्चों के कारण उनके गणमान्य मेहमानों और रिश्तेदारों के सामने उनकी इज्जत मिट्टी में मिले, इलाके में उनकी ठसक और रुतबे पर आँच आए। इसलिए उन्होंने मास्टरजी को समझाने की कोशिश की, हालाँकि मीठी भाषा में ही– "मास्टरजी, हम आपकी भावना समझते हैं, आपको अपने विद्यार्थियों से लगाव है यह भी जानते हैं। लेकिन समाज के नियमों का पालन भी तो जरूरी है।" मास्टरजी ने मुखिया के सामने भी अपना उपरोक्त प्रस्ताव दुहराया, जिसमें उनकी नाक भी ऊँची बनी रहेगी और उनके वंचित-विद्यार्थियों को भी इस तरह अपमानित न होना पड़ेगा। लेकिन मुखिया ने अपना स्पष्ट निर्णय सुनाया कि बच्चे अपनी-अपनी बिरादरी के अनुसार ही उनके लिए निर्धारित अलग-अलग स्थानों पर बैठाए जाएँगे।

तब मास्टरजी ने मन-ही-मन एक निर्णय लिया, एक कठोर निर्णय...! उन्होंने अपने सभी विद्यार्थियों को अपने पास बुलाया, जब सहमे हुए विद्यार्थी आ गए, पंगत में बैठाए गए बच्चे भी; तब उन्होंने मुखिया से कहा–"मुखिया जी, अब मेरा कोई भी विद्यार्थी या मैं आपके इस कार्यक्रम में भोजन नहीं करेंगें और अब हम वापस जा रहे हैं।" इतना कहकर बिना किसी की ओर देखे वे अपने सभी विद्यार्थियों को साथ लेकर विद्यालय की ओर चल पड़े।

इस एकाएक निर्णय और परिस्थिति से मुखिया सहित सभी लोग सकते में आ गए। किसी को यह तनिक भी उम्मीद नहीं थी कि गुरुजी ऐसा कुछ कर सकते हैं! मुखिया यह सोचकर ही परेशान हो उठे कि यदि बच्चे उनके दरवाजे से बिना खाना खाए वापस लौट गए तो पूरे गाँव में उनकी किरकिरी होगी। बच्चों को तो उन्होंने खुद ही विद्यालय जाकर आमंत्रित किया था, ऐसे में उनको भूखा वापस लौटाना किसी भी तरह उचित नहीं था। लोग कहेंगे कि 'मुखिया ने बच्चों को बुलाकर खाना खिलाए बिना ही वापस लौटा दिया।' इसके बाद गाँव में क्या इज्जत रह जाएगी उनकी? धर्म की दुहाई देनेवाले यही लोग सालों तक थू-थू करेंगे उनपर। यह सोचकर ही उनके हाथ-पाँव फूलने लगे। तब उन्होंने तुरंत आगे बढ़कर मास्टरजी और बच्चों के आगे खड़े होकर उनका रास्ता रोका और मनाने की कोशिश की– "मास्टरजी, प्लीज इस तरह बच्चों को भूखा वापस मत ले जाइए। यह ठीक नहीं है। मेरे दरवाजे से ये बच्चे भूखे लौट गए तो मैं किसी को क्या मुँह दिखाऊँगा।" उन्होंने हाथ जोड़कर मिन्नतें की। लेकिन मास्टरजी अब वहाँ न तो स्वयं ही खाना खाने को तैयार थे और न ही अपने विद्यार्थियों को खिलाने को। इसलिए उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा– "माफ कीजियेगा मुखिया जी, लेकिन मैं मजबूर हूँ। मैं अपने प्रत्येक विद्यार्थी का शिक्षक हूँ। ये सभी बच्चे मेरे ही भरोसे पर यहाँ आये हैं, इसलिए इनके सम्मान या

अपमान के लिए मैं ही जिम्मेदार हूँ। मैं यह हरगिज बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरे उन विद्यार्थियों का अपमान हो, जो अपने जन्म के कारण आप लोगों के द्वारा निम्न समझे जाते हैं। इसमें इन बच्चों का क्या दोष? जो व्यवहार अपने विद्यालय में हम नहीं करते, उसकी इजाजत मैं किसी और को कैसे और क्यों दे दूँ? इसलिए अब हम यहाँ खाना नहीं खा सकते!" शिक्षक ने अपना तर्क पूरे आत्मविश्वास से दिया।

सबको साँप सूंघ गया। मुखिया की हालत यह थी कि काटो तो खून नहीं। उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। मास्टरजी पुनः बच्चों को लेकर चल चुके थे, भूखे-प्यासे, उदास और मायूस बच्चे अपने मास्टरजी के पीछे-पीछे सिर झुकाए चुपचाप चल दिए। यदि कोई बाल-मनोवैज्ञानिक उन बच्चों के मनोभावों का उस समय विश्लेषण कर पाता, तो उसे साफ-साफ दिखाई देता कि बच्चों के मन में अपने मास्टरजी के लिए उस समय कितना आदर और विश्वास भर गया था, इसके बावजूद, कि वे सब भूखे थे और खाना न मिल पाने से क्षुब्ध भी!

मुखिया पुनः उनके पीछे दौड़े– "मास्टरजी, मास्टरजी! प्लीज रुक जाइए! चलिए, वापस चलिए! जैसा आप चाहते हैं, वैसा ही होगा! ये सभी बच्चे एक साथ ही बैठकर खाना खाएँगे... और मैं भी इन बच्चों के साथ ही बैठकर खाऊँगा! प्लीज, वापस चलिए!" कोई उपाय न देखकर सहज ही उन्होंने कह दिया, आखिर उनका सम्मान दाँव पर जो लगा था। कहीं-न-कहीं उनका मन भी, छोटे-छोटे बच्चों को भूखा-प्यासा वापस लौटाने के लिए उस अपराध को सहज ही महसूस कर रहा था, अपने जातीय-श्रेष्ठता के अहंकार के बावजूद। मुखिया के बड़े बेटे और दोनों सालों ने भी और तमाशबीनों में मुखिया के रिश्तेदारों और कुछ प्रतिष्ठित ग्रामीणों ने भी मुखिया की तरह सभी बच्चों के साथ खाना खाने की हॉमी भरी। मास्टरजी ने कुछ नहीं कहा, मुखिया ने पुनः हाथ जोड़कर आग्रहपूर्वक कहा– "मास्टरजी, हमने आपकी बात मान ली, अब आप भी कृपा करके मान जाइए। बच्चों को देखिए, कैसे इनके चेहरे उतरे हुए हैं। हमारी नहीं, तो इन बच्चों की सोचिए. ..! प्लीज, अब चलिए, ज्यादा मत सोचिये!" मुखिया के बेटे और सालों ने भी हाथ जोड़कर प्रार्थना की, गाँववालों ने भी मास्टरजी को मनाने के लिए विनती की। मास्टरजी ने अपने विद्यार्थियों की ओर देखा, उन्होंने कुछ सोचा और मन-ही-मन कुछ निश्चय किया। लेकिन वे क्या सोच रहे थे, उनके अलावा कोई भी अनुमान नहीं लगा सकता था। उन्होंने हामी भर दी, बच्चों के सूखे-मुरझाये मायूस चेहरों पर थोड़ी-सी चमक दिखी, लेकिन वे अभी भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे कि आज उनको समारोह में खाना मिलेगा ही, उनके नन्हें-हृदय और उनकी बाल-बुद्धि को थोड़ी देर पहले ही मिला कड़वा-अनुभव तो यही कहता था!

मुखिया सबको आग्रह सहित भोजन-स्थल पर उसी पंडाल में ले आए, जहाँ से मास्टरजी और बच्चे वापस लौटे थे। उन्होंने खुद सभी बच्चों को बिठाया और उनके सामने अपने हाथों से थर्मोकोल की प्लेटें लगाई, मास्टरजी और अपने लिए भी अगल-बगल प्लेटें लगाई। उनके बड़े बेटे ने सबकी प्लेटों के साथ ही थर्मोकोल के गिलास रखे और उसमें पानी भरा। गरमागरम खाना आने लगा और कई सारे व्यंजन देखते-ही-देखते सभी की प्लेटों में सज गए। लेकिन थोड़ी देर पहले घटित अवाछिंत घटना से सहमे बच्चे, भूख के बावजूद, भोजन में हाथ नहीं लगा पाए। वे अपने गुरुजी की ओर ही निहार रहे थे कि उनके गुरुजी खाना शुरू करें, तब वे भी आश्वस्त हों और खाना शुरू करें। मुखिया जी, जो अपना पहला निवाला उठा चुके थे, ने और अन्य सभी लोगों ने बच्चों की दुविधा को समझा, लेकिन कोई कुछ बोला नहीं। उनके गुरुजी अपने बच्चों के चेहरों के मनोभावों को लगातार पढ़ रहे थे, जिनपर कई तकलीफदेह रेखाएँ बन-बिगड़ रही थीं, मगर फिर भी उन्होंने खाना शुरू नहीं किया। तब मुखिया ने टोका– "मास्टरजी, खाना शुरू कीजिए, प्लीज! बच्चे आपका मुँह देख रहे हैं! शायद आपके शुरू किए बिना ये नहीं खाएँगे।" मुखिया ने आग्रहपूर्वक कहा। लेकिन अध्यापक महोदय ने कोई उत्तर नहीं दिया, उत्तर न पाकर मुखिया ने फिर से हाथ जोड़कर विनती के स्वर में कहा–' "क्या हुआ मास्टर जी? क्या अभी भी आप नाराज हैं? प्लीज अब तो गुस्सा थूक दीजिए!" मास्टरजी ने मुँह खोला और अचानक अपना फैसला सुनाया, एक अनोखा फैसला, जिसकी उम्मीद भी किसी को नहीं थी– "मुखिया जी, यदि आप हमारे साथ खाना खाएँगे, तो हम नहीं खाएँगें।" मुखिया को काटो तो खून नहीं! उनका चेहरा फक्क पड़ गया! उठे हुए हाथ का निवाला हवा में ही रह गया। भोजन में साथ ही बैठे मुखिया के बड़े बेटे ने आश्चर्य से पूछा– "ये आप क्या कह रहे हैं, मास्टरजी?" लेकिन मास्टरजी ने पूरी दृढ़ता के साथ

निर्णयात्मक तरीके से अपनी बात दोहरा दी– "जी, मैं यही कह रहा हूँ... कि मुखिया हमारे साथ खाना नहीं खा सकते! यही नहीं आपलोग भी हमारे साथ खाना नहीं खा सकते! यदि आपलोगों में से कोई भी व्यक्ति हमारे साथ खाना खाएगा, तो मैं या मेरे विद्यार्थी नहीं खाएँगे!" इस अपमान से आहत होकर मुखिया के बेटे ने कहा– "मास्टरजी, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं?" अपने पिता और अन्य लोगों के तिरस्कार पर उसके चेहरे पर तनाव और परेशानी की वजह से पसीने की बूंदें माथे परं उभर आई थीं।

लेकिन मुखिया इस अपमान और तिरस्कार से आहत होकर नि:शब्द थे, जिससे उत्पन्न पीड़ा से उनकी आँखें भर आईं। इस अचानक उत्पन्न स्थिति से बाकी लोग भी हैरान और अवाक् थे। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि मास्टरजी को अपने वंचित-तबकों के बच्चों के साथ ऊँची-जाति के लोगों के साथ खाना खाने में क्यों आपत्ति है। आपस में कानाफूसी शुरू हो गई। यदि ऊँची-जाति के लोग नीच-जात के लोगों के साथ खाना खा लें, तो ये नीची-जात वाले इसे अपना परम सौभाग्य समझते हुए सालों तक हमारे चरण धो-धोकर पीयेंगे, सालों तक हमारी पूजा करेंगे, हमारा एहसान मानेंगे। और ये दो कौड़ी का मास्टर ऊँची-जाति के लोगों को अपने नीच-जात वाले बच्चों के साथ खाने से मना करके हमारा अपमान कर रहा है?''

समारोह-स्थल में एक कान से होते हुए दूसरे कान तक यह खबर जंगल की आग की तरह फैल चुकी थी। लोग, मानव-स्वभाव के मुताबिक ही, तमाशा देखने के लिए एकत्र होने लगे थे। थोड़ी देर में ही भीड़ काफी बढ़ गई थी। कोलाहल बढ़ता ही जा रहा था। मास्टरजी को मनाने की कोशिशें चल रही थी, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा, बस लोगों की प्रतिक्रियाओं को चुपचाप देखते रहे। अब मुखिया के बड़े साले ने बाहर बढ़ती भीड़ को देखकर और हालात की नजाकत को समझकर नर्म पड़ते हुए हथियार डालने की-सी मुद्रा में आकर हाथ जोड़कर पूछा– "मास्टरजी, अब क्या बात हो गई, कुछ तो बताइए! आप हमारे साथ ऐसा क्यों कर रहे हैं?" अब मास्टरजी ने चुप्पी तोड़ते हुए बड़ी ही गंभीरतापूर्वक दो टूक बात कही– "यदि आपलोग हमारे साथ खाना खाएँगे, तो यह हमारा अपमान होगा!" हर चेहरे पर आश्चर्य था, हर मन में सवाल– 'भला यह कैसी असंभव बात हुई?'

मुखिया के छोटे साले साहब ने, हालात की गंभीरता को समझने के बावजूद, अहंकारवश सीना तानकर कहा– "अरे मास्टरजी, आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? हम तो बड़ी जाति के हैं, हमारे साथ खाना खाने में आपका और आपके विद्यार्थियों का अपमान कैसे हो सकता है? यह तो इन छोटी जात वालों का सौभाग्य है कि हम उनके बच्चों को अपने साथ बिठाकर खिला रहे हैं।" यह कहकर उसने कुछ घृणा से, तो कुछ तिरस्कार से मास्टरजी के वंचित-विद्यार्थियों और भीड़ में कुछ अलग खड़े वंचित-समुदायों की ओर देखा...।

बस इसी पल का मास्टरजी को इंतजार था शायद, उन्होंने अब अपनी मास्टरी लाठी, शिक्षा की लाठी, संभाली और अपनी-अपनी ऊँची-जातियों पर इतराने वाले अहंकारियों को धराशायी करना शुरू किया– "जिन लोगों की सोच इतनी घटिया हो, मेरी नजर में वे सब घृणित, गंदे और बदबूदार जानवरों की तरह हैं! और आप लोगों को तो अच्छी तरह मालूम है कि ऐसे जानवरों के साथ सभ्य लोग खाना नहीं खाते! मैं और मेरे ये सभी विद्यार्थी पढ़ते-लिखते हैं, सभ्य हैं, सुसंस्कृत हैं। तो भला हम आपलोगों जैसे गंदे, बदबूदार और घृणित जानवरों के साथ खाना खाकर अपने-आप को अपमानित कैसे करवा सकते हैं?" मास्टरजी ने बिना झिझके एक-एक शब्द पर भरपूर जोर देते हुए कहा। उस समय उनके चेहरे पर एक खास किस्म की चमक देखी जा सकती थी।

अब मुखिया रो पड़े, कुछ पल के बाद उन्होंने हाथ जोड़कर सिर झुकाकर एकदम दयनीय भाव से प्रार्थना की– "मास्टरजी, भगवान् के लिए मुझपर दया कीजिये! प्लीज मेरे साथ ऐसा मत कीजिए! मैं कहीं मुँह दिखाने के लायक नहीं रहूँगा!" ब्राह्मणत्व के अहंकार का मुकुट उनके सिर से नीचे गिर चुका था। उनके बड़े बेटे ने भी हाथ जोड़कर विनती की–"मास्टरजी, कृपया आप हमें इतना जलील मत कीजिए!" मुखिया ने करुण-स्वर में कहा– "मैंने और मेरे लोगों ने इन बच्चों को दुत्कारा, भगवान उसी की सजा मुझे दे रहा है...!"

मास्टरजी अब मुखिया से मुखातिब हुए और बड़ी ही गंभीर वाणी में उनसे कहना शुरू किया–"मुखिया जी, अब आप एकदम ठीक समझ रहे हैं! कुछ ऐसा ही मेरे इन मासूम नन्हें विद्यार्थियों ने तब महसूस किया था, जब आपने और आपके लोगों ने इनको जलील करके अलग खाना खाने को कहा था।" उनकी बात सुनकर मुखिया का मुँह खुला-का-खुला रह गया। अध्यापक ने कहना जारी रखा– "...बल्कि रोज

ही ये उस पीड़ा और अपमान को महसूस करते हैं, जब-जब इनको 'अछूत', 'नीच', 'सूअर', 'गंदे-गलीज', 'जानवरों से भी गया-बीता'... वगैरह-वगैरह आपलोग और हमारा ये तथाकथित सभ्य-समाज कहता है...!" इतना कहकर वे थोड़ी देर के लिए रुके और सबके चेहरों को पढ़ते रहे, कुछ पल बाद पुनः कहना शुरू किया– "...कभी आपलोगों ने सोचा है कि इन नन्हें बच्चों के कोमल मन को कितनी चोट लगती होगी, कितनी पीड़ा होती होगी, ये आपलोगों के बारे में क्या सोचते होंगे...?" मास्टरजी के चेहरे पर अपनी ही कही गई बात की चुभन साफ-साफ दिखाई दे रही थी, मुखिया सहित सभी चुप थे।

मास्टरजी ने उसी तरह कहना जारी रखा– "...इनका नन्हा मन जब अपने माता-पिता या परिवार के किसी अन्य बड़े के लिए आपलोगों के द्वारा ऐसे ही शब्दों का प्रयोग सुनता होगा, तो इनका स्वाभिमान, इनका आत्म-सम्मान कैसे मरता होगा, कभी आपमें से किसी को इसका ख्याल भूले से भी आता होगा क्या...?" उस अध्यापक का क्रोध जैसे उनकी आँखों से, पीड़ा से भाप बनकर निकल पड़ने को उद्धत हो रहा था। मुखिया पर जैसे घड़ों पानी पड़ गया। "... इनके आत्म-सम्मान को कुचलकर इनके आत्म-विश्वास की तो आपलोग हत्या ही कर देते हैं, ऐसे रोज-रोज अपमानित करते हुए...! या शायद आपलोग यही चाहते होंगे कि इनका आत्म-विश्वास जिन्दा ही न रहे –न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी; न इनका आत्म-विश्वास जिन्दा रहेगा, न ये आपलोगों के सामने सिर उठाएँगे कभी! क्यों, ठीक कह रहा हूँ न मैं...?" उस ब्राह्मण मास्टर का स्वर ही नहीं, उसके चेहरे की भाव-भंगिमाएँ भी जैसे अपने ही पूर्वजों की बनाई हुई महान-संस्कृति और परम्पराओं पर और उनके उन 'सजातीय-रक्षकों' पर प्रश्नों के जलते गोले दाग रही थी।

"...इनके समाज के लोग आपलोगों के सदा से गुलाम रहे हैं। इनके ये बच्चे भी आपलोगों की, भोज में इनको अपने पास बिठाकर की जाने वाली ऐसी ही दया से आपलोगों के एहसानमंद होकर भविष्य में अपने माता-पिता की तरह आपलोगों की जी-हुजूरी करेंगे...! क्यों, ठीक कहा न मैंने...?" एक और जलता प्रश्न उन लोगों की ओर उछाल दिया मास्टरजी ने, जिसकी तपिश ने उन सबको बेचैन कर दिया। लेकिन वह ब्राह्मण-अध्यापक अपने ही सजातियों को बख्शने के मूड में नहीं था– "... आज आपको अपने अपमान का भय सता रहा है, मुखिया जी! आपको डर लग रहा है कि आप किसी को कैसे मुँह दिखाएँगे! लेकिन इन बच्चों के माता-पिता रोज उस अपमान को पीकर अपने बच्चों के सामने, पूरे समाज के सामने कैसे अपना सिर उठाते होंगे, सबको कैसे मुँह दिखाते होंगे; यह तो आपने कभी नहीं सोचा होगा! है ना... ? अपने माता-पिता को अपमानित और तिरस्कृत होता देख ये बच्चे रोज ही किसी 'अनजानी अपराध-भावना' के शिकार होते हैं, शायद हमारा तथाकथित उच्चवर्णीय 'सभ्य-समाज' यही चाहता है कि ये अपने-आप को 'जन्मजात-अपराधी' ही समझें और सदैव इस तथाकथित सभ्य-समाज के सामने, आपलोगों के सामने, अपराधियों की तरह ही सिर झुकाए रहें...!" इतना कहकर मास्टरजी पुनः रुके, शायद वे अपने हृदय में दर्द महसूस कर रहे थे। उनकी आँखें जैसे अपने निर्दोष विद्यार्थियों की उन तकलीफों को अपने दिल में महसूस करके बरस जाना चाहती थीं, जिनको भोगने की नौबत, ब्राह्मण होने के कारण, कभी खुद उनके सामने नहीं आई थी, न कभी भोगा था।

मुखिया के इस समारोह में आनंद की प्राप्ति के लिए आए सभी आमो-खास मेहमानों में से किसी के मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे, क्योंकि सभी अपने 'सवर्णी सभ्य-हृदयों' के सच को जानते ही थे। मास्टरजी ने थोड़ा रुककर पुनः कहना शुरू किया– "एक बात और, कभी आप सभी, तथाकथित सभ्य-समाज के सुसंस्कृत लोग, कभी फुर्सत मिले एकांत में, तो सोचियेगा जरूर... कि आपलोगों के ऐसे व्यवहार से स्वयं आपके अपने ही बच्चों के मन पर क्या बीतती है। मैं चूँकि अपने प्रत्येक विद्यार्थी का शिक्षक हूँ, इसलिए अपने हर विद्यार्थी के मन को पढ़ सकता हूँ, उन्हें अच्छी तरह से जानता हूँ; आप माता-पिताओं की तुलना में कहीं अधिक! इसलिए मैं यह जानता हूँ कि आपके सभ्य-सुसंस्कृत उच्चवर्णीय-समाज में पैदा हुए आपलोगों के ही बच्चे आप लोगों के इन शर्मनाक व्यवहारों पर कैसा महसूस करते हैं और क्या सोचते हैं! ...जब आपके बच्चे अपने वंचितवर्गीय दोस्तों को, उनके माता-पिताओं को आपलोगों के द्वारा बेवजह अपमानित और तिरस्कृत होते देखते हैं, तो स्वयं उनके अपने मन में अपने माता-पिताओं द्वारा किए जा रहे इस अन्याय के प्रति कितनी शर्मिंदगी होती है, कितना अपराधबोध और कितनी नाराजगी! ...हम तथाकथित उच्चवर्णीय सभ्य-समाज के लोग अपराधबोध की भावना केवल वंचित-बच्चों के मन में ही नहीं भरते हैं, बल्कि अपने तथाकथित उच्चवर्णीय बच्चों के मन में भी भरते

हैं। बड़े होकर तो वंचित-समाज के बच्चे तो समझ जाते हैं कि उनका अपराधबोध बेवजह था और वे या उनके परिवारवाले अपराधी नहीं थे; लेकिन तथाकथित उच्चवर्ण के बच्चे बड़े होकर जब दुनिया देखते हैं तो उनको बचपन में मिला अपराधबोध कई गुणा होकर उनके दिलों को चीरता रहता है, जिसका कोई इलाज नहीं। कभी आपलोग जरूर सोचिए इसपर भी...!" मास्टरजी इतना कहकर चुप हो गए, जैसे अब उनके पास कुछ भी नहीं बचा हो कहने के लिए, जैसे किसी गहन निराशा ने उनको घेर लिया हो, मन की पीड़ा की रेखाएँ उनके चेहरे पर एकदम साफ-साफ दिखाई दे रही थीं। शायद उनको अपना ही बचपन और उस बचपन से जुड़ी अनकही यादें परेशान करने लगी थीं...

मुखिया और सभ्य-सुसंस्कृत उच्चवर्णीय लोगों पर घड़ों पानी पड़ चुका था, किसी के मुँह से बोल नहीं फूट रहे थे, चारो ओर निस्तब्धता छाई थी। कुछ लोग शर्मिंदगी महसूस कर रहे थे, तो कुछ के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थी। जबकि भीड़ में कुछ अलग हटकर खड़े कुछ लोगों के चेहरों को देखकर ऐसा लग रहा था, जैसे किसी ने सालों से उनके रिसते घावों पर शीतल मरहम का लेप लगा दिया हो, उनकी आँखें नम थीं, वे बड़ी ही कृतज्ञता और आदर-भाव से मास्टरजी को देख रहे थे—जाहिर है कि ये वंचित-समाज के लोग थे, जिनमें से कुछ के बच्चे मास्टरजी के विद्यार्थी थे। तभी मुखिया के बेटे को जैसे होश आया हो— "हम अब तक 'नीची जात, नीची जात' कहकर इन लोगों को (भीड़ में अलग खड़े उन्हीं वंचितों की ओर इशारा करके) दुत्कारते रहते थे, हमने कभी सोचा ही नहीं कि इन लोगों को कैसा महसूस होता होगा...! लेकिन जब आप हमें 'गंदा', 'बदबूदार जानवर' कह रहे हैं, हमें दुत्कार रहे हैं, तो हमसे बर्दाश्त नहीं हो रहा है..! शायद भगवान हमें अपने ही किए की सजा दे रहे हैं...!"

मुखिया ने इतनी देर तक मास्टरजी की बात चुपचाप सुनने के बाद कहा— "मैं अपनी गलती समझ गया हूँ, मास्टरजी! मैंने भूल की है, बहुत बड़ी भूल! आपने मुझे सजा दे दी, सही ही किया; मैं आपकी दी हुई सजा को श्रद्धा से सिर झुकाकर स्वीकार करता हूँ और आपसे वादा करता हूँ कि कम-से-कम मेरा परिवार अब किसी के साथ ऐसा बुरा व्यवहार नहीं करेगा। आप बच्चों के मास्टरजी हैं, तो आज आपने एक सच्चे मास्टर की तरह हम तथाकथित सभ्य जाहिलों को भी अच्छा और जरूरी पाठ पढ़ाया है। आप मेरी जितनी भी भर्त्सना करना चाहें, जरूर कीजिए, मैं आपको नहीं रोकूँगा! बस एक ही प्रार्थना है कि आप इन बच्चों के मास्टरजी हैं, इनको भूखा मत ले जाइए, इनके मुरझाये उदास चेहरों की ओर देखिये। इनको भूखा भेजकर मैं खुद को माफ नहीं कर पाऊँगा।" मुखिया ने अब बहुत ही विनम्र-भाव से हाथ जोड़ लिये थे, अब उनके चेहरे पर वह पीड़ा नहीं थी, जो थोड़ी देर पहले अपमान के भय से उनके चेहरे पर चिपकी हुई थी, वहाँ अब शांति थी, जैसी पके घाव पर चीरा लग जाने और मवाद के निकल जाने के बाद होती है। और मास्टरजी की आँखों में संतोष की चमक थी, उन्होंने अपने अध्यापक होने का असली फर्ज आज पूरा किया था और उसका नतीजा देखकर उन्हें अपने पेशे पर संतुष्टि थी, जिसकी चमक उनकी आँखों में देखने लायक थी...❑

लेखकों के लिए संदर्भ निर्देश (Reference Guide for Authors)

हमारी पत्रिका की विश्वसनीयता और अकादमिक गुणवत्ता बनाए रखने के लिए सभी लेखकों से अनुरोध है कि वे अपने लेखों में उपयोग किए गए उद्धरणों और तथ्यों के लिए निम्नलिखित प्रारूप का पालन करें।

1. पुस्तकों के लिए: यदि आप किसी पुस्तक सेजानकारी ले रहे हैं:

प्रारूप : लेखक का नाम, पुस्तक का शीर्षक, प्रकाशक का नाम, प्रकाशन वर्ष।

उदाहरण:आंबेडकर, बी. आर., बुद्ध और उनका धम्म, सिद्धार्थ प्रकाशन, प्रकाशन का वर्ष।

2. लेख या निबंध के लिए: यदि जानकारी किसी अन्य पत्रिका या संकलन से ली गई है:

प्रारूप : लेखक का नाम, 'लेख का शीर्षक', पत्रिका/संकलन का नाम, अंक/खंड, वर्ष, पृष्ठ संख्या।

उदाहरण : राहुल सांकृत्यायन. बुद्ध का दर्शन. धाम्म-चक्र, अंक 4, 1944, पृ. 12-15.

3. ऑनलाइन स्रोतों के लिए (Websidtes/E-Journals) यदि जानकारी इंटरनेट से ली गई है:

प्रारूप : लेखक का नाम. 'लेख का शीर्षक'. वेबसाइट का नाम, तिथि, URL.

उदाहरण : प्रकाशक. 'अशोक के शिलालेख'.धम्म-लिपि, 10 जनवरी 2024, (वेबसाइट का लिंक दें।)

लेख के बीच में संदर्भ (In-Text Citation) लेख लिखते समय जहाँ भी आप किसी के कथन का उपयोग करें, वहाँ ब्रैकेट में लेखक का नाम और पेज नंबर अवश्य लिखे। उदाहरण : 'प्रथमत: भारतीय और अंतत: भारतीय हूँ' (आंबेडकर 82)

तह-रुश

सोमा विश्वास
मो. 8800779218

नहीं नहीं, तह-रुश मेरा नाम नहीं हैं। यह एक खेल है। इस खेल का आवश्यक खिलाड़ी हूँ मैं। मैं या किसी महिला बिना यह खेल मुमकिन नहीं हैं। हाँ, मैं मिश्र देश की एक महिला हूँ। और ये तह-रुश यहाँ का एक अलिखित राष्ट्रीय खेल हैं। बढ़ते हुए गृहयुद्ध के चलते ये खेल और भी लोकप्रिय होता जा रहा हैं। यूरोपीय देशों मे फैलता चला जा रहा है। मिश्र के नागरिक के लिए ये तो बड़ी खुशी की बात है। पूरी दुनिया को खुश होना चाहिये। एक नये खेल की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है। पता नहीं फिर भी लोग क्यों डर रहे। यूरोप में जब ये खेल खेला जा रहा है तब तो उन देशों की महिलाओं को ज्यादा से ज्यादा जोड़ा जा रहा हैं। इस खेल के साथ। हमारे देश की महिला-शरणार्थियों से भी ज्यादा एहमियत इन महिलाओं को दी जा रही हैं। फिर भी पता नहीं क्यूँ।

कुछ दिनों से स्वीडन के एक शरणार्थी शिविर में ठहरी हुई हूँ मैं। यहाँ पर थोड़ी बहुत अंग्रेज़ी सीख रही हूँ ताकि खुद की जरूरतों को समझ पाऊं। दूसरी महिलायों से कुछ अच्छा अंग्रेज़ी बोल पाने की वजह से सारी महिलाएं मुझे अनुवादक बना के कैंप के दफ़्तर में ले जाती हैं। अधिकारी मुझे अंग्रेजी में लिखने-पढ़ने के लिए बोलते हैं। पर मैं तो हूँ अनपढ़। मेरे देश में महिलाओं के लिए लिखना पढ़ना गुनाह है। बंद दरवाजे के उस पार बैठकर थोड़ा बहुत धार्मिक पुस्तकें पढ़ी। इतने में ही हमारा काम चल जाता है। औरत का बाहर जाना तो बिल्कुल नापसंद है हमारे देश के पुरुषों को। अब निश्चित रूप से आप पूछोगे कि तब इस खेल में एक महिला कैसे मुख्य किरदार निभाती हैं। हाँ। जरूर होता है। नहीं तो ये खेल खेला ही नहीं जा सकता।

हमारे उपचार के लिये यहाँ पर एक भारतीय महिला डॉक्टर है। उनके साथ एक दिन मुझे एक दफ़्तर में ले जाया गया। ये कौन-सी जगह है मुझे नहीं पता। डॉक्टर मैम ने बताया कि ये लोग सब पुलिस हैं और हम लोग पुलिस मुख्यालय में आये हैं। एक बड़ा गेट के सामने हम लोग जा के बैठते

हैं। कोई एक टेप रेकॉर्डर मेरे सामने रख कर चलाया जाता हैं। टीवी के पर्दे पर एक विडिओ चालू किया गया। डॉक्टर मैम बता रही है, 'विडिओ में लोग क्या बोल रहे हैं और क्या कर रहे हैं, वो सुन के मुझे पुलिस को बताना हैं। क्यूँकि मैं, मेरी भाषा-संस्कृति और अंग्रेज़ी दोनों ही जानती हूँ, इसीलिए, मैं विडियो देखने लगती हूँ। यहाँ की मार्किट का सामने का एक हिस्सा देख रही हूँ। स्वीडन की जनसंख्या मामूली है इसीलिए अक्सर ये जगह खाली-सी रहती है। वो खाली जगह आजकल शरणार्थियों से भरी रहती है। एक कोने में अचानक भीड़ बढ़ जाती है। इस देश की दो महिलाओं को घेरना शुरू किया है उस भीड़ ने। भीड़ और भी घनी होती जा रही है। वो दो महिलाएं भीड़ में अलग हो जाती है। उन दोनों की डरी हुई हाहाकर भीड़ के शोर में खो गयी। वो शोर और तेज हो गया है। 'ओहो! ये तो तह-रुश चल रहा है।', अचानक मेरे मुँह से निकल आया।

हैरान होकर घूमती हूँ तो देखती हूँ सब स्थिर नज़र से मुझे देख रहे हैं। डॉक्टर मेम मुझे इशारा करती है, मैं फिर से बोलना शुरू करती हूँ। मिश्र का बहुत पसंदीदा एक आदिम खेल है ये। एक साथ बहुत सारे पुरुष एक महिला को चुनते हैं और उसे घेर लेते हैं। महिला की पोशाक से लेकर उसका सब कुछ छेड़ना शुरू हो जाता है। कोई उसकी सीने को अपने सीने से धक्का देता है तो कोई उसकी पीछे का कपड़ा खींच के फाड़ देता है। कोई हाथ पकड़ कर खींचता है तो कोई उसकी खुले स्तन पर हाथ मारता है। वो महिला शर्म व डर से कांपने लगती है। पुरुष उतना ही उसे और नंगा करने लगते हैं। न-न। हमला मत बोलिए इसे। ये तो बस एक खेल है। विडियो देखिए कितना जयकार कर रहे है सारे पुरुष मिलकर। पूरी भीड़ सागर की लहरों जैसी सामने की गैराज में घुस जाती है। लहर उन दो महिलाओं को भी बहा ले गई।

'क्या हुआ? क्यूँ चुप हो गयी?' उसने फिर कहना शुरू किया, 'नहीं-नहीं! डॉक्टर मेम, चुप नहीं हुई। चुप कैसे हो जाऊं? मैं तो बंद आँखों से भी देख पा रही हूँ, उन महिलाओं के साथ अभी खेल का कौन-सा चरण चल रहा है। नियमानुसार वो दोनों अब पूरी तरह से नंगी है। भीड़ और भी बढ़ गई है। सभी नोंचना चाहते हैं इस नए देश की दो नई औरतों के शरीर को। शायद वो दोनों चिल्ला-चिल्लाकर विरोध कर रही हैं। क्यूँकि इस देश में उन्होंने कभी ये खेल नहीं खेले हैं, इसीलिए वो इसे गलत सोच रही है। हाँ! विरोध भी होता है इस खेल में, वह भी कुछ पुरुषों ने ही किया है। बाकी लोग उस बाधा को हटा कर महिला के और नजदीक होते है। स्तन, योनि, नितम्ब। महिला की ये सारे अंशों को नोंच-नोंच कर अपने जीत का आनंद दुगना कर लेते है। विरोध करनेवाले इस खेल में हमेशा ही हारते है। यही नियम है। विडिओ में अभी कोई दिखाई नहीं दे रहा है। गराज के अंदर से सिर्फ जयकार और जयकार सुनाई दे रही है। उफ्फ पेट का निचला हिस्सा जैसे दर्द के मारे अभी फट जायेगा लगता है।'

आँखें खोलती हूँ तो देखती हूँ, मैं कैंप में अपने बिस्तर पर लेटी हुई हूँ। डॉक्टर मेम मेरे सिर पर हाथ सहला रही हैं। वह बोली, 'पुलिस हैडक्वार्टर में, मैं अचेतन हो गई थी। पेट दर्द के मारे। उस दिन की तरह जिस दिन उन्होंने पहली-बार मेरा उपचार किया था। जब मैं इस कैंप में पहुंची थी। दर्द क्यूँ नहीं होगा, डॉक्टर मेम? आतंकवादी शिविर में हर रोज घटने वाला बलात्कार के हिस्सा बनने से पहले भी दो-दो बार मुझे तह-रुश खेल का मुख्य किरदार निभाना पड़ा। आपको पता है, वो दो महिलाओं को अभी हर चरण में जो-जो खेलना पड़ रहा है, बिल्कुल ऐसा ही मुझे भी खेलना पड़ा था। एक बार तो एक पुरुष ने जेब से चाकू निकाल कर मेरी योनि के अंदर चाकू का खेल खेलने लगा था। भीड़ के बाकी लोगों ने तब मेरा हाथ पैर सब पकड़ रखा था। कुछ लोग मेरे होंठ, स्तन और शरीर के बाकी हिस्सों को लेकर खेल रहे थे। मैं उस समय डरी नहीं थी। डरता हुआ दिखना तो उस खेल का एक हिस्सा है।

इस कैंप की महिलाओं से उनकी कहानियां सुन-सुनकर डॉक्टर मैम भी हमें भारत की कहानी बताती है। उन्होंने कहा, 'उस देश में खाप पंचायत गण बलात्कार की राय देते हैं। दलित समाज के पुरुष के अपराध का दंड निर्णय ऐसा होता है कि उनकी घरवाली का बलात्कार करेंगे उच्चवर्ण के पुरुष। कहीं-कहीं तो पंच के सामने ही सामूहिक

बलात्कार करने का आदेश दिया जाता है। ऐसा यहां अक्सर ही होता रहता है। फूलन नाम की एक दलित महिला के साथ उच्चवर्ण के पुरुषों ने सामूहिक बलात्कार किया था। मैम ने बताया फूलन ने बाद में उन सारे लोगों को मार डाला था।' डॉक्टर मैम अभी बता ही रही थी कि मैं बीच में ही टोककर बताने लगी, 'नहीं-नहीं! मेरे देश में ऐसा उल्टा खेल नहीं होता है मैम। और भी तो कितने सारे देशों में खुले आम यौन उत्पीड़न का खेल होता है। सभी देशों की ये बात खबर में नहीं आती है। पर खेल के नियम एक ही होते हैं अक्सर। महिला अपने शरीर के साथ लज्जा भी बचाना चाहती है और ये विकृत मानसिकता वाले पुरुष उसके शरीर और शर्म को नग्न करते हैं। तह-रुश ...एक आदिम सामूहिक यौन उत्पीड़न का एक अलंकारिक नाम।

कल सुबह डॉक्टर मैम के आने पर इस बात की चर्चा करनी जरूरी है। अच्छा मेम, इतने देशों में जब ये खेल होता है, तब क्या इस खेल को ओलंपिक क्रीड़ा में विधिवत शामिल किया जा सकता है? अलिम्पिक क्रीड़ा में भी इस खेल का नियम एक ही रखना होगा मैम। सिर्फ किरदारों के स्थान बदल जायेगा इस बार। अत्यावश्यक एक मात्र खिलाडी होगा एक पुरुष।❑

पृष्ठ सं. 58 का शेष भाग

भवन के बाहर चले गए।

लोग अब उठकर खुशी-खुशी अपने घरों की ओर चलने लगे मगर मैं बोझिल मन से वहीं बैठी मन ही मन सोच रही थी। जातीय बहिष्कृत? वो तो हम पांच हजार वर्षों से हैं ही। बस फर्क इतना है कि तब उच्च जातियों ने किया था, अब अपने कहे जाने वाले लोग कर रहे हैं। ये वही दलित समर्थक हैं जो मंचों पर जातिवाद मिटाने की मांग करते हैं, बहुजन एकता की बात करते हैं, शिक्षित होकर संगठित होने की पैरवी करते है, सामाजिक एकता, क्रांति, उच्च जातियों में शादियों की बात करते हैं। अंतर्जातीय विवाह कर जातियों को खत्म करने की बात करते हैं, महिला उत्पीड़न के समर्थक बनतें हैं। कल फिर मंचों पर छदम नारे लगायेगें, आजादी के स्लोगन बोलेंगे, सब रट्टू तोते बन जायेंगे। जी भरकर कोसेगें अन्य जातियों को। जातिवाद, मनुवाद का आरोप लगाते नजर आयेंगे। जातियों के खात्मे की बात करेंगे लेकिन अपने अंदर पनपते जाति के कीड़े को मरने नहीं देंगे। दलित को दलित अस्वीकार करेंगे लेकिन उच्च जातियों से विवाह संबंध बनाने की वकालत करेंगे। लोग! जो आज फैसले को फरमान मानकर खुशी-खुशी लौट रहे हैं, वो फिर यहीं आयेंगे। वो फिर यहीं आयेंगे।

घर जाने की हड़बड़ाहट में लोगों के चलायमान शरीर, हिलते हुए हाथ, एक-दूसरे से भीड़ के टकराते कंधे, ऐसे लग रहे थे जैसे पंचशील और नीले झंडे उठाएं हुए भीम सैनिक, अवसरवादी नेताओं का झुंड, बहकावे, भटकाव, मुखौटिया चेहरे, तमाशबीन भीड़, जो समता और समानता की आवाज उठा रहे हों। आपसी आवाजें जैसे मंचों के छद्म नारे लगाते हमारे लोग। फिर लौटेंगे।

ये यहां फिर लौटेंगे इसी स्थान पर क्योंकि जन्म से पूर्व ही बच्चा जाति की इन अंकुरित कोंपलों को लेकर धरती पर आता है और ये रक्तबीज की भांति अनेक जातियों रूपी शरीर में जन्म लेती ये मनुष्य जाति, जिनकी जड़े बरगद की जड़ों की भांति समाज रूपी मिटटी में नीचे ही नीचे फैलती जाती हैं। इसे मिटा पाना आसान नहीं होगा। मैं निराश होकर अपनी जगह से उठी और थके हुए कदमों से भीड़ के पीछे चल पड़ी। मैंने मुरझाये हुए चेहरे से अपने कमरे में प्रवेश किया। पलंग पर पड़ी आधी खुली किताब 'जाति का समूल विनाश' मेरा मुँह चिड़ा रही थी।❑

डॉ. आंबेडकर कहते हैं

पति और पत्नी के संबंध घनिष्ठ मित्रों की तरह होने चाहिए।

बुद्धि का विकास मानव के अस्तित्व का अंतिम लक्ष्य होना चाहिए।

भाग्य में विश्वास करने की बजाए अपनी शक्ति और कर्म में विश्वास रखों।

यदि आप संयुक्त एकीकृत आधुनिक भारत चाहते हैं तो सभी धर्मों के शास्त्रों की प्रभुसत्ता का अंत करना होगा।

हौसला

डॉ. वंदना
मो. 8178190409
vv513420@gmail.com

आज घास पर पैर रखते, आगे बढ़ती हुई कीर्ति सूरज की सारी रोशनी अपने भीतर भर लेना चाहती थी। यूँ तो उसे सर्दी की यह धूप से जगमगाती सैर कभी नसीब नहीं होती, ज्यादातर ढेर सारे काम के बीच उसे फुर्सत के कुछेक क्षण मिल ही नहीं पाते, पर न जाने क्यों आज उसने खुद को लगभग धकेलते हुए कॉलेज ग्राउंड में प्रवेश करा लिया है। नरम घास पर चलना कितना आरामदायक और सुकून भरा होता है, पर जब मन में कुछ ऐसा हो जो बहुत तेज चुभ रहा था, जिसे वह चाहती थी कि ग्राउंड की परिक्रमा करते हुए, इतना घिस दे कि सपाट हो जाए। उसे लग रहा था कि जैसे घास के छोटे-छोटे, नरम और लुभावने हिस्से उसके पैरों के नीचे लगातार कुचले जा रहे हैं, वैसे-वैसे... ही तो लगभग कीर्ति भी अपने भीतर महसूस कर रही थी। एक-एक सांस घुटन, अभाव और अपमान की यातना के नीचे दबी हुई। बाहर खिली धूप भी उसकी चुप्पी से भीतर फैले अंधेरे को छिन्न-भिन्न नहीं कर पा रही थी। उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद भी मन के अंदर का अंधेरा था कि छंटने का नाम नहीं ले रहा था।

कीर्ति तेज कदमों से मैदान के चक्कर काटते हुए ग्राउंड के कोनों में बड़े करीने से लगे टूटे पत्ते और सूखी डालियों के कूड़े में बदले ढेर को देख रही थी। उसे यह बड़ा अटपटा भी लग रहा था। कूड़े का ढेर करीने से...। लग रहा था कि आस-पास कूड़े के बड़े-बड़े ढेर बड़े करीने से सजाए गए हैं...। सब कुछ कूड़े में तब्दील होता हुआ, पर बड़ा... बड़ा सभ्य करीने से...। उसे स्मरण होने लगा कि माँ-पिता और भाई ने उसे यहां तक पहुंचाने के लिए कितनी हाड़-तोड़ मेहनत की थी। माँ को तो घड़ी की सुइयों से भी तेज चलते देखा था उसने। सवेरा निकलने की तो बात ही क्या, वे रात अंधेरे से ही उठकर सब्जी मंडी भागती-फिरती थीं। खरीदी हुई सब्जियों को भैया अपनी साइकिल पर ढोने में उनकी मदद करते। सुबह कीर्ति घर में सब्जियों के ढेर देखती तो लगता कि उनके जीवन का सारा हरा रंग इन सब्जियों में ही समा गया है। यहां से माँ लगभग भागते हुए सरकारी प्राथमिक स्कूल के गेट पर रंग-बिरंगी टॉफी, गोलियां और बिस्किट बोरे के ऊपर सजाकर बेचने

के लिए बैठ जाती। बच्चे स्कूल में जाते और लंच तथा छुट्टी होने पर घर लौटते समय इनकी खरीदारी करते। हर सिक्के के साथ माँ के चेहरे की खनखनाहट बढ़ती जाती।

स्कूल के बाहर टॉफियाँ बेचने का काम सिर्फ माँ ही नहीं करती थीं बल्कि वहां और लोग भी लाइन लगाकर खूब होड़ लगाते। कई बार तो बात लड़ाई-झगड़े तक चली जाती। माँ अक्सर शांत रहती। कोई उन्हें परेशान करे या उनकी जगह अपना बोरा बिछा ले तो भी वो लंबी बहसों में नहीं पड़ती थीं। कीर्ति माँ को समझाती थी कि आप लड़ती क्यों नहीं? पर वे हर बार उसे शांत रहकर अपना काम करने का पाठ सिखातीं। माँ ने उसे यह पाठ कई ऐसे मौकों पर दोहराया था, 'बच्ची शांत रहो, लड़े-झगड़े कुछ ना मिले। इनका जाय दिया। हम थोड़े में गुजारा कय लैबे।' और कई बार कीर्ति पूछ बैठती, 'कितना–थोड़ा?' तब माँ चुप हो जाती। उनके शांत स्वभाव को, झुंड ने अपनी ताकत समझ लिया था। अब उनकी ओर से लड़ाई-उलाहने बढ़ने लगे थे। एक दिन फिर कीर्ति ने माँ को समझाया, 'एक-बार आप भी क्यों नहीं झगड़ती?' तब माँ ने कहा, 'बिटिया कीचड़ मा उतरबू तो कीचड़ लगे बिन ना रहे, हरदम कीचड़ से निकलै का सोचा।' मां की कही बात कीर्ति के अन्तर्मन की गहराई तक उतर गई। कीर्ति को मां की बात सुनकर पहली बार लगा कि दलदल बहुत गहरा है और उसे उससे बाहर निकलने की छटपटाहट उससे भी तेज। उसने इरादा कर लिया था कि खूब पढ़-लिखकर इस दलदल से जरूर बाहर निकलेगी। पढ़े-लिखे लोगों के बीच, कीचड़ से दूर हरियाली के बीच काम करेगी।

स्कूल से लौटकर माँ, जल्दी-जल्दी दोपहर का खाना खाकर, फिर अगले मोर्चे के लिए खुद को तैयार कर लेती। सब्जी की दुकान सड़क किनारे लगाकर वो उसके साथ ही गर्मियों में भुट्टे सेंक कर बेचतीं। जलते कोयले की अंगार की तपती गर्मी में भुट्टा नहीं असल में माँ ही भुनती थीं। कीर्ति ने कॉलेज से लौटकर ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया था। इन्हीं पैसों से वह अपनी पढ़ाई का खर्च निकालना चाहती थी। उसे पता था कि उसे माँ पर अपना भी बोझ नहीं डालना है। ट्यूशन का समय शुरू होने से पहले वह माँ के साथ सड़क पर सब्जी लगवाने में मदद करती थी। उसे कई बार उसके सहपाठी और ट्यूशन के छात्र सड़क किनारे बैठा देखते तो उनके चेहरे पर चढ़ती मुस्कुराहट कीर्ति के चेहरे पर उदासी उतारने लगती, लेकिन फिर भी कीर्ति ने कभी दूसरों से खुद को कम नहीं माना। आखिर उसकी माँ की तरह मेहनत करते उसने गली में किसी को नहीं देखा था, बल्कि माँ की मदद करके उसे इससे राहत ही महसूस होती थी, पर फिर भी माँ उसे हर बार कहती, 'हमरे काम मा ना लागा गुड़िया, पढ़ाई पर ध्यान दिया। ई सब हम खुद कै लेबे। बस तुहार पढ़ाई हम ना कय पउबे।' फिर एक फीकी हंसी के साथ कहतीं, 'अगले जन्म मा अपनी माई से पढ़ावै का जरूर कहबै।' कीर्ति को कई बार लगता जैसे उसके भीतर माँ ही बैठकर पढ़ाई कर रही हैं। ग्राहक भुट्टों और सब्जी के दामों को कम करवाने के पीछे ही लग जाते। जिस गली में वे रहते थे, वह गुर्जर बहुल इलाका था। उनका रौब-दाब कहीं से भी कम न था बल्कि वे सारा रौब किराएदारों और मेहनतकश लोगों पर ही निकालते थे। कई बार वे माँ से उधार की सब्जियां खरीदते और भुट्टों को विशेष रूप से सेंकने को कहते थे पर जब माँ को कई दिनों बाद भी उनसे उधारी ना मिलती तो वे उनसे अपने पैसे माँगने उनके दरवाजों पर जातीं। वे रौबदार रईस उल्टा उन्हें ही झूठा बनाकर वापस भेज देते कि उन्हें उधार लेने की क्या जरूरत? कीर्ति को फिर लगने लगता कि सिंकती भट्टी से दूर पढ़े-लिखे लोगों की दुनिया में उसे प्रवेश करना है, तब हालात जरूर बदलेंगे।

भैय्या ही कीर्ति की दुनिया थे। उसकी अपनी कोई खास दोस्त या सहेली नहीं थी। भैया ही उसके सबसे अच्छे दोस्त थे। उन्हें अपनी पढ़ाई को बीच में ही छोड़ना पड़ा था पर वह कीर्ति को खूब पढ़ाना चाहते थे। कीर्ति के स्कूल के विभिन्न विषयों के लंबे-लंबे पाठों को लेकर वह पिताजी के साथ चर्चा करते। उनकी बातों में ही वो पूरा पाठ सीख जाती थी। कक्षा में टीचर के पढ़ाने के वक्त वे सारी चर्चाएं उसकी सहेली बन जाती थीं। उस दिन स्कूल से पढ़कर जब कीर्ति घर लौटी तो उसने देखा कि भैया बहुत परेशान हैं। उनकी साइकिल कई दिनों से बार-बार पंचर हो जाती थी। कीर्ति ने भैया को परेशान देखा तो सुझाव दिया कि आप साइकिल चलाना छोड़ क्यों नहीं देते? शायद इससे इस समस्या से निजात मिल जाए। कीर्ति को यही सबसे बढ़िया सॉल्यूशन समझ में आ रहा था, हालांकि वह जानती थी कि यह उसकी विशेषज्ञता का क्षेत्र नहीं है। भैया ने हंसते हुए कहा, 'अरे पंचर की वजह से यात्रा थोड़े रुकेगी। इसे ठीक करके आगे बढ़ेंगे। साइकिल चलाना छोड़ देना भला

कोई हल थोड़े ही है।' अब कीर्ति के दिमाग का पंचर उसे भरता हुआ लगा और लगा की साइकिल के दोनों पहिए उसके पैरों में जुड़ गए हैं।

कीर्ति अभी भी कॉलेज ग्राउंड में चक्कर लगाती हुई, यही सब तो, सोच रही थी। अचानक उसे भैया की बातें याद आने लगी थी। उसे लगा कि आज भी वह उसके साथ होते तो जरूर फिर से कोई पहिया उसके पैरों में बांध देते। उसकी आंखों से कुछ बूंदें लुढ़क कर घास में ओस बनने से पहले ही गालों पर फिसलती रहीं। बड़ी मेहनत के साथ उसने अपनी पढ़ाई इतने वर्षों में पूरी कर ली थी। बहुत लंबी प्रतीक्षा और ढेर सारे इंटरव्यू देने के बाद इस प्रतिष्ठित महाविद्यालय में उसे स्थाई नौकरी मिली। संघर्ष यात्रा इतनी लंबी हो चली थी कि अब इस नियुक्ति की खुशी साझा करने के लिए पिता और भैया इस दुनिया में नहीं रहे। कीर्ति के साथ अब सिर्फ उसकी माँ रह गई। वह माँ, जो वक्त से पहले चलती-दौड़ती ही उसे दिखती थीं, आज वह पैरालिसिस और वक्त के आघातों को सहकर ठहर-सी गयीं थीं। वक्त ने दोनों की भूमिका बदल दी, माँ बेटी जैसी हो गई और बेटी माँ जैसी हो गई। माँ उसकी बच्ची थी।

कीर्ति को यहां तक पहुंचकर लगने लगा था कि वह पढ़े-लिखे लोगों के बीच स्वस्थ माहौल में काम करेगी लेकिन नियुक्ति के कुछ ही वर्षों में उसे यह माहौल भी, माँ से भिड़ते सड़क किनारे के, उन्हीं लोगों का लगने लगा। बिल्कुल वैसा नहीं, बहुत कुछ वैसा ही माहौल था। अक्सर उसे एक वरिष्ठ प्रवक्ता प्रो. मेखला गिरि नजरों से ही नीचा दिखाने की कोशिश करतीं हालांकि ऐसी बहुत-सी नजरों को माँ के साथ सड़क पर ही झेल कर, वह आगे बढ़ी थी। जब इससे भी उन वरिष्ठ सहयोगियों का मन नहीं भरा था तो वे तानों के साथ उसे लहूलुहान करने लगे। जैसे ही कीर्ति ब्रेक में अपना टिफिन लेकर खाना खाने बैठती वे तुरंत ही अपनी नाक सिकोड़ कर बाकियों से कहने लगतीं, 'अरे यह इतनी तेज बदबू कहां से आ रही है?' कीर्ति इस व्यवहार को खूब समझ रही थी। हर बार वह तीखी बातों को अपने दिल में टीसते हुए महसूस करती। वह अपने वरिष्ठ अध्यापकों से क्या-क्या सीखने की सोचे बैठी थी। वह पढ़े-लिखे लोगों के बीच काम करते हुए उनके अनुभव से बहुत कुछ सीखने की अपनी लालसा को अक्सर कौर-कौर तोड़कर किसी तरह हलक से नीचे निगल कर उतार रही होती।

विभागीय सदस्यों के लिए वह अब एक आसान शिकार बन रही थी। स्टाफ रूम उसे जंगल जैसा लगने लगा था। सामने सोफे पर बैठा भेड़िया। बगल में लोमड़ी, गिरगिट, बिना रीढ़ के जमीन पर रेंगते लिजलिजे जीव...। और भी ऐसे हिंसक जीव गुर्राते हुए, उसे नोच लेना चाहते थे। आज ही टीचर इंचार्ज महोदया ने उसे इस सेमेस्टर का टाइम टेबल हाथ में पकड़ाया था। यह पिछली बार वाले टाइम टेबल से अलग नहीं था। कक्षाओं के बीच लंबे अंतराल, दोपहर से देर शाम की कक्षाएं। इसे देखकर फिर उसका चेहरा रुआँसा हो उठा। उसे माँ की देखभाल के लिए सुबह की कक्षाएं चाहिए थी ताकि दोपहर के बाद वह घर लौट सके। उसने बड़े आग्रह के साथ डॉ. स्वर्णलता शर्मा से आग्रह किया, 'आप इसे ठीक करें प्लीज!' उन्होंने टाइम टेबल पर बात करने की बजाय सीधे ही बात बेपटरी करते हुए कहा, 'तुम्हें पता है कि मैं जिस परिवार से आती हूं, वहां नौकरी करने की जरूरत नहीं पड़ती। लाखों-करोड़ों का बिजनेस है हमारा। यहां तो बस शौक के लिए नौकरी पकड़ ली और मुझे प्रोफेसर बनना था।'

कीर्ति को इस जवाब की कोई तुकबंदी समझ नहीं आई। उसने तो टाइम टेबल की बात कही थी पर यह कौन-सी बात उसे सुना रही हैं। उसे लगा कि बाहर की प्रदूषण से भरी जहरीली हवा अब उसके माथे से होते हुए कहीं बहुत भीतर उतर रही है। उसे लगने लगा कि उस पर हो रहे इन लगातार हमलों ने उसमें कई नुकीले कोने निकाल दिए हैं। इन नुकीले कोनों से ही इस जंगली दुनिया को चुभाकर वो कुछ छेद कर देना चाहती थी ताकि उसमें से सारा मवाद बह जाए। थोड़ा ठहरकर उसने तुरंत खुद को संभाला और टीचर इंचार्ज को बड़ी विनम्रता से जवाब दिया, 'पर मैम मैं तो उस परिवार से आती हूं जिनके लिए नौकरी बहुत जरूरी है। यदि हम एक दिन भी काम पर न जाएँ तो हमारे घरों में चूल्हा नहीं जलता।' डॉ. स्वर्णलता शर्मा जी ने अपने नुकीले दांतों को निपोरते हुए कहा, 'अरे तभी तो कहती हूं कि तुम अभी बहुत छोटी हो, तुम्हें अभी बहुत कुछ सीखना है।' कीर्ति को लगा कि उसका सिर बहुत भारी हो रहा है। अब वह वहां से निकलकर कॉलेज ग्राउंड में पता नहीं कब से चक्कर

पृष्ठ सं. 104 पर शेष भाग

ईर्ष्याग्नि

डॉ. प्रिया राणा
मो. 9526414087
priyarana1504@gmail.com

इस संसार में सभी लोग अपनी-अपनी प्रवृत्ति के अनुसार पदार्पण करते हैं। संस्कार रूपी सीमेंट ओर खाद-पानी लगने के बाद भी उनकी जन्मजात प्रवृत्ति उनके व्यक्तित्व में बची रहती है। किंतु कुछ लोगों में जहाँ एक और संस्कार बचे रहते तो दूसरी ओर प्रवृत्ति में ही बदलाव आ जाता है। इसी बदलाव का एक उदाहरण है-अपर्णा श्रीवास्तव। परिचय की बात करें तो वह एक कॉलेज में लेक्चरर है। संक्षेप में कहा जाए तो अपर्णा श्रीवास्तव... मतलब एक मेधावी, सुंदर, सुशील स्त्री। अब यह सुंदर, सुशील तो फिर भी ठीक है किंतु हमारे समाज में एक स्त्री का मेधावी होना, मानो तौबा-तौबा... लाहौल विला कूवत! यह भी कोई बात हुई भला! वहीं दूसरी ओर एक-दो को छोड़ दिया जाए तो हमारे समाज में औरतों की सफलता के पीछे दुनिया भर की वाहियात कहानियाँ और किस्से गढ़े होते हैं। लोगों के विचारों की वीभत्सता को पार कर जाना ही सफलता को पा जाना है। फिर चाहे पुरुष कितने ही बिस्तरों की गर्माहट का संबंध आप से जोड़ता फिरे।

एक औरत का चरित्र किसी और की कसौटी पर खरा उतरने का मोहताज नहीं है बल्कि उसकी तो निर्माणकर्ता तथा विध्वंसकर्ता केवल और केवल वह औरत है, जिसने अपने व्यक्तित्व की नसों में ग्लूकोज की भाँति उसे बूँद-बूँद पहुँचाया है। कुल मिलाकर अपर्णा का सफलता की सीढ़ियों तक पहुंचने का सफर अपने चरित्र को अपनी नसों में बचाए रखने में ही प्रयत्नशील रहा। बाकी भविष्य किसने देखा है?

बत्तीस वर्षीय अपर्णा का आवास विश्वविद्यालय परिसर से लगभग दो किलोमीटर की दूरी पर था। जहाँ वह अपनी नीला काकी के साथ रहा करती थी। नीला काकी पचीस बरस पहले जो अपर्णा के घर में आई, तो वहीं की होकर रह गई। पति की मृत्यु के बाद जब नीला काकी के रहने-खाने का ठिकाना ना रहा, तब दर-दर की ठोकरें खाने के बाद उन्हें गीता का आश्रय मिला था।

गीता, अपर्णा की माँ थी। अपर्णा के पिता का देहांत तभी हो चुका था, जब अपर्णा अपने यौवन की कलियाँ

चुन-चुनकर अपनी मुस्कुराहटों से खिला देने की स्वाभाविक प्रक्रिया में मग्न थी। भौरों के मँडराने का समय भी लगभग यही होता है। ऐसी आधी कच्ची, आधी पक्की उम्र में भँवरों का बेटी या बहन के आसपास फटकना पिता और बड़े भाई को सतर्कता की लाठी पकड़ा देता है। अब भाई तो कोई था नहीं, पिता भी अठारह साल की अपर्णा को छोड़कर जो गए तो फिर कभी वापस ना लौटे।

नीला काकी तो पहले से ही वैधव्य का जीवन जी रही थी। अपर्णा की माँ को नीला में अपना संबल मिला और फिर वैधव्य की पीड़ा को विधवा के अतिरिक्त कोई और महसूस नहीं कर सकता। 'विधवा ही जाने विधवा का दरद और न जाने कोय' वाला भाव नीला काकी को गीता के और करीब ले आया। फिर चाहे उन दोनों में शिक्षित और अशिक्षित की दीवार ही क्यों ना हो। कुछ पीड़ाएँ और दुखों का बहाव ऐसी कई दीवारों को पाटने का दम रखता है। कुल मिलाकर एक-दूसरे के आँसू पोंछने में कोई दीवार बीच में ना आ सकी।

बैंक में मैनेजर अपर्णा की माँ दुनिया जहान के मर्दों की करतूतों का बखान नीला से करती। अपने पति की मृत्यु के बाद वह अपने आस-पास मक्खी की तरह मँडराते तो कभी कुत्तों की मानिंद लार टपकाते, लपकने को तैयार लंपटों की चर्चा करती। वह हमेशा कहती- 'नीला यह थे तो कभी किसी की हिम्मत न थी जो सम्मान के दो शब्द के अलावा तीसरा शब्द मुँह से निकाल दे।' भाभी जी नमस्ते से आगे सभी संबोधन गतिहीन हो जाते थे। यह जो गए तो घर की दहलीज के अंदर कदम रखने को आतुर यह हमदर्दों का जत्था अचानक ना जाने कहाँ से पैदा हो गया? नीला, सच कहूँ तो बड़ा डर लगता है और फिर अपर्णा भी तो बड़ी हो रही है।'

'सही कहती हो जीजी! मुझे भी अगर तुम्हारा आश्रय ना मिला होता तो शायद मैं भी किसी मर्द की वासना की बलि चढ़ गई होती। पति के मरने के बाद मुआ मकान मालिक शराब पीकर रोज मेरी कुंडी खड़का देता। वह तो मैंने कभी दरवाजा नहीं खोला और जीजी... कब तक ना खोलती, खोलना ही पड़ा। घर से भागने के बाद दस-बारह दिन बिरमी के खेत के पीछे बने मंदिर में छुपकर गुजारे। वहाँ से भागी तो तुमसे टकराई। जीजी! सच कहूँ तो यह मरद जात होवे ही ऐसी है ससुरी। लपके भी ये हीं, लपककर बचावे भी ये हीं। बिना मरद औरत का गुजारा कहाँ। रांड तो फिर भी जी ले, रंडुवे जीने दे तब ना।'

फिर से दोनों के दुख एक दूसरे में गुँथ जाते। इन सब बातों का परिणाम निकलता, अपर्णा को पास बिठाकर बार-बार घुमा-फिराकर एक ही बात समझाना- 'बेटी अपर्णा, एक अकेली औरत के लिए एक पुरुष अगर राक्षस है तो दूसरा देवता। इन दोनों से इतर कुछ-कुछ मनुष्य भी होते हैं। देवता ना सही किंतु मनुष्य भी मिल जाए तो भी बेहतर लेकिन राक्षस से बचाव जरूरी है, वह ना जाने कब किस देवता या मनुष्य का रूप धारण करके जीवन में आ जाए।'

घर से मिली ऐसी नसीहतों ने जहाँ शुरुआत में अपर्णा के स्वभाव में भय का भाव जगाया, वहीं माँ की मृत्यु के बाद भय का स्थान कठोरता तथा सख्ती ने ले लिया था। दर्द को पी जाना, कठोर हो जाना ही तो है। पहले पिता के जाने की पीड़ा और फिर माँ के जाने का दर्द, पत्थर ना बनती तो बह जाने का डर था। किसी के साथ बह जाना जीवन की निरंतरता में अवरोध उत्पन्न करना है वरना पीड़ा का बहाव तो 'चिंता, चिता के समान होती है।' वाली उक्ति को व्यावहारिकता में तब्दील कर जाता, जो अपर्णा ने होने ना दिया।

विपरीत परिस्थितियों में तटस्थ रहना जीतने की निशानी है। हार जाना मर चुकी माँ के सपने तोड़ देना था। सो सपने पूरे हुए। दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रख्यात कॉलेज में लेक्चरर का पद मिला। हालाँकि शुरुआत थी, एडहॉक मिला था जो लगातार तीन साल से रिन्यू होता आ रहा था। अभी स्थायी नियुक्ति की प्रतीक्षा थी लेकिन फिर भी जीवन ने कुछ रफ्तार पकड़ ली थी।

अपर्णा के जीवन की इस रेलगाड़ी के डिब्बों का अपना महत्त्व था। किसी में महत्वाकांक्षाएं थी, किसी में पिता का प्रेम तो किसी डिब्बे में माँ की नसीहतें, किंतु अब एक और डिब्बा किसी के प्रेम से लबालब भरा अपर्णा की ओर कातर निगाहों से देख रहा था। यह निगाहें शंकर उपाध्याय की थीं।

शंकर उपाध्याय और अपर्णा श्रीवास्तव दोनों सहकर्मी थे किंतु शंकर का अनुभव अपर्णा से ज्यादा था। वह पिछले पाँच साल से इसी कॉलेज में पढ़ा रहा था। हालाँकि दोनों का विषय अलग-अलग था। अपर्णा साहित्य की शिक्षिका थी तो दूसरी ओर शंकर अर्थशास्त्र का शिक्षक। अपर्णा के रिजर्व

और स्वयं में ही सिमटे रहने वाले व्यक्तित्व को प्रेम से भिगो देना शंकर उपाध्याय के लिए किसी जंग को जीतने से कम नहीं था। हृदय का भी क्या है, कहीं नहीं लगता, तो नहीं ही लगेगा और जब किसी से लगता है, तब सारी व्यावहारिकता एक तरफ और हृदय की मासूमियत एक तरफ। प्रेम में पड़ा सख्त से सख्त व्यक्ति भी भोलेपन का शिकार हो जाता है। शंकर का प्रेम से बुझा हुआ तीर कई प्रयासों के बाद ही सही, आखिर में निशाने पर ही लगा।

अपर्णा का सख्त मिजाज उसकी परिस्थितियों की देन था और परिस्थितियाँ बदलते देर नहीं लगती। शंकर का प्रेम अपर्णा के जीवन की रिक्तता को जितनी तेजी से भर रहा था, उतनी ही तेजी से उसकी आँखों की चमक और मन का उत्साह भी बढ़ता जा रहा था। आत्मनिर्भर तो वह पहले से ही थी किंतु अब आत्मबल का विस्तार जारी था।

शंकर के जीवन में ज्यादा संघर्ष कभी नहीं रहा था। उसने जो चाहा, कमोबेश वह सब कुछ प्राप्त करता चला गया। वह स्वभाव से जिंदादिल तथा हँसमुख था। उसके व्यवहार में हमेशा ही एक संतुलन का भाव रहता, जो व्यवहारिक दृष्टि से सभ्य समाज में उचित भी है। लेकिन जीवन कब कितना असंतुलित हो जाए, यह कोई नहीं जानता। शंकर और अपर्णा एक-दूसरे में अपना भविष्य देखने लगे थे। जब मन मुताबिक जीवन साथी मिल जाए तो जीवन के मायने ही बदल जाते हैं। शंकर अपर्णा से हमेशा कहता-'तुमने जीवन साथी को ढूँढने में खराब होने वाले मेरे समय को बचा लिया, झट से मिल गई।'

उसकी इस बात पर पहले थोड़ा लजाकर परंतु बाद में अपर्णा तुरंत ठठ्ठाकर हँस दिया करती थी। फिर थोड़ा चुप रहकर बोलती-'लेकिन तुमने क्यों इतनी देर कर दी? थोड़ा पहले आ जाते तो कुछ पल और जुड़ जाते तुम्हारे संग जीवन के।' और फिर कुछ देर पसरी खामोशी में दोनों एक दूसरे के प्यार में भर-भर गोता लगाते तो कुछ देर डूबकर वापस बाहर भी आ जाते।

कभी-कभी डर भी लगता कि प्रेम अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त करने के बाद अगर खत्म हो गया तो? इसीलिए पराकाष्ठा की दीवार को भेद जाने की हिम्मत अपर्णा ने कभी नहीं की। कभी यह जानने की कोशिश भी नहीं की कि उस पार क्या है? कुछ खो देने का डर उससे अधिक कौन जान सकता था भला!

उस रोज बारिश थमने का नाम ही नहीं ले रही थी, वहीं दूसरी ओर कॉलेज में आज महत्वपूर्ण मीटिंग थी। ऊपर से गाड़ी खराब हो गई थी। कार के पिछले पहिए को बदला जाना था किंतु इन सबके लिए समय किसके पास था? आखिरी विकल्प, रिक्शा में बैठकर मेट्रो तक पहुँचना था। मेट्रो कॉलेज के बिल्कुल पास में थी। बहुत देर सोचने के बाद नीला काकी को प्रणाम कर अपर्णा रिक्शे की खोज में निकली और कम समय में ही रिक्शा पकड़कर मेट्रो तक पहुँच भी गई। आनन-फानन में रिक्शे वाले को दस के बजाय बीस का नोट पकड़ाकर मेट्रो की ओर भागती अपर्णा को रिक्शावाला मैडम-मैडम करके चिल्लाता ही रह गया।

मेट्रो के गेट के अंदर घुसते ही अपर्णा का मोबाइल झट से बज उठा। शंकर का ही फोन था, उठाए भी तो वैसे और अनदेखा कर देना उसे ठीक प्रतीत नहीं हो रहा था, इसीलिए तुरंत फोन उठाकर अपर्णा ने जैसे ही 'हैलो' बोला तो दूसरी ओर से शंकर ने कहा कि अगर घर से नहीं निकली हो तो घर पर ही रहो। आज की मीटिंग कैंसिल हो गई है। शंकर की बात सुनते ही अपर्णा की गति में ब्रेक लग गए। फूलती हुई साँसें भी आराम करने के मूड में आ चुकी थी। 'अच्छा! ठीक है, फिर मैं वापस चली जाती हूँ।' अपर्णा ने शंकर को उत्तर दिया। शंकर ने भी 'बॉय' बोलते हुए फोन रख दिया। प्रत्युत्तर में 'बॉय' बोलकर अपर्णा ने जैसे ही फोन कट किया तथा मेट्रो के गेट से निकलकर रिक्शा स्टैंड की ओर कदम बढ़ाने लगी ही थी कि अचानक अपने नाम के संबोधन को सुनकर पीछे की ओर मुड़कर देखा तो तुरंत ही उसके चेहरे पर सम्मान के भाव के साथ मुस्कुराहट बिखर गई।

उसके गुरु डॉ. किशोरीलाल ने उसको देखकर पुकारा था। गुरु के आशीर्वाद की लालसा तथा सम्मान का भाव लेकर वह अपने गुरु के निकट जाकर उनके पैर छूने का प्रयास करने लगी। गुरु ने आशीर्वाद देने की मुद्रा में अपर्णा के सिर पर हाथ रखकर अपने पैरों को पीछे खिसकाकर कहा- 'अरे नहीं अपर्णा, तुमसे कितनी बार कहा है कि तुम्हारा पैरों को छूना मुझे नहीं भाता है और तुम हर बार भूल जाती हो।'

'सर, मैं कभी नहीं भूलती लेकिन आप चाहे कितना भी मना करें, आपके पैर छूकर मुझे जो अनुपम सुख प्राप्त होता है, भला मैं क्यों इस सुख से

वंचित रहूँ।' इतना कहकर अपर्णा थोड़ा गंभीर तथा एक शिष्या की गरिमा लिए मुस्कुराई।

'तुम्हारी जैसी मेधावी शिष्या का गुरु होना मुझे भी गर्व से भर देता है। तुम्हारे बारे में मॉरीशस में मेरे एक मित्र जिन्हें तुम भी अच्छे से जानती हो, डॉ. शर्मा से पता चला कि यहाँ तुमको कॉलेज में नौकरी मिल गई है। सुनकर तुमको बधाई देने का प्रयत्न किया पर संपर्क ना हो सका। किंतु तुमसे संपर्क तो करना ही था, अगर तुम अभी मुझे यूँ ना मिलती। दरअसल तुम्हारे लिए मॉरीशस की यूनिवर्सिटी में मैंने बात की है। तुमको पाँच साल वहाँ रहना होगा। तुम जा पाओगी?' डॉ. किशोरालाल ने अपनी बात खत्म करते हुए कहा। यह सुनकर अपर्णा फूली न समाई। कुछ देर के लिए वह अपनी वर्तमान जिंदगी को भूलते हुए बोली-'जी जरूर सर, मैं वहाँ अवश्य जाऊँगी।'

'अच्छा चलो, मैं निकलता हूँ। फिर मुलाकात होगी।' कहकर डॉ. किशोरीलाल एक बार फिर अपर्णा के सर पर आशीर्वाद का हाथ रख वहाँ से प्रस्थान कर गए तथा अपर्णा अपने गुरु से मिले स्नेह के भाव को लेकर घर लौट आई।

अपर्णा के गुरु डॉ. किशोरीलाल दिल्ली यूनिवर्सिटी में ही प्रोफेसर थे। एम. ए. के समय अपर्णा उनकी प्रिय छात्रा हुआ करती थी। ऐसी होनहार छात्रा से उन्हें भी बहुत उम्मीदें थीं। एम. ए., एम. फिल. और पीएच.डी. के बाद कॉलेज में नौकरी पा जाना किशोरीलाल की उम्मीदों तथा विश्वास पर खरा उतरना था। पिछले तीन सालों से डॉ. किशोरीलाल डेपुटेशन पर मॉरीशस यूनिवर्सिटी में पढ़ाने के लिए गए हुए थे। वापस लौटने पर अपर्णा से यह उनकी अचानक हुई मुलाकात थी।

महत्वाकांक्षाओं के बोझ तले दबी अपर्णा मॉरीशस जाने के सपने सजाने लगी। पुराने सपने कुछ देर के लिए धूमिल हो गए। वह भूल गई कि वह शंकर के साथ अपने भविष्य के सपने सजा रही है, मॉरीशस जाने का फैसला उन सपनों को रोते-बिलखते छोड़ देना है। अपनी खुशी को साझा करने को उत्सुक अगले दिन कॉलेज पहुँचते ही वह शंकर के पास गई। शंकर ने उसको इतना खुश आज तक न देखा था। इसलिए अपर्णा के कुछ कहने से पहले ही वह उससे पूछ बैठा-'क्या हुआ... कोई लॉटरी-वाटरी लग गई क्या? अपने चेहरे का तेज तो देखो, तुमसे सँभाले नहीं सँभल रहा।'

अपर्णा ने बिना देरी किए अपनी खुशी का राज बताया कि किस तरह उसके गुरु के द्वारा उसे इस अवसर की प्राप्ति हुई। अपर्णा के मुख से मॉरीशस जाने की बात सुनकर शंकर के मन में ईर्ष्या का भाव जागा। उसे स्वयं ही समझ न आया, भला अपर्णा के प्रति उसे ईर्ष्या कैसे हो सकती है। उसने मन ही मन स्वयं को धिक्कारा भी लेकिन फिर अपनी मुख मुद्रा में संतुलन बनाकर खुशी के बाद तुरंत उदासी के भाव से बोला-'अरे वाह! यह तो वाकई बहुत अच्छा अवसर है किंतु तुम और मैं...? क्या यह दूरी तुम सहन कर पाओगी?'

अपर्णा का उत्साह कुछ धीमा पड़ा। थोड़ी देर की चुप्पी के बाद शंकर के हाथों पर हाथ रखकर बुझे हुए मन से उसने कहा-'मैं समझ नहीं पा रही हूँ शंकर, यह अवसर शायद मुझे दोबारा प्राप्त ना हो, तुमसे भी दूर रह पाना मेरे लिए संभव नहीं होगा। किंतु अगर तुम मेरे स्थान पर होते तो क्या करते?'

शंकर ने अपर्णा का हाथ अपने हाथों से हटाते हुए कहा-'मुझसे यह प्रश्न पूछना बेमानी है। तुम्हें छोड़कर जाने की तो मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। बाकी तुम्हारा अपना निर्णय है अपर्णा। मैं ना कहूँ भी तो कैसे?'

कभी-कभी वास्तव में चुनाव की प्रक्रिया से मुँह मोड़ लेने का मन होता है किंतु चुनाव तो हर व्यक्ति के जीवन में अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। रोज ही खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने से लेकर कहाँ, कब और कौन-सी चीज चुनाव की मोहताज नहीं है? चुनाव तो करना ही था तो शंकर को चुना गया। महत्वाकांक्षाएँ थोड़ी देर रोएँगी-बिलखेंगी... बाद में चुप होकर सो जाएँगी। जब कभी ऐसा ही दूसरा अवसर मिला तो जगा दूँगी दोबारा। महत्वाकांक्षाएँ ही तो हैं, बुरा थोड़े ही ना मानेंगी?

समय भाग रहा था और फिर से एक और वर्ष पीछे छूट गया। संबंध ज्यों के त्यों बने रहे। प्रेम को बचा लिया गया था। दूरी की आड़ में मरते-मरते बचा था पिछले वर्ष। शंकर और अपर्णा दोनों ही कॉलेज में स्थायी होने की जुगत में लगे थे। अपर्णा निरंतर अपने ज्ञान में वृद्धि की ओर अग्रसर थी तथा शंकर जुगत करने में व्यस्त था। काबिलियत तो शंकर में भी कम ना थी किंतु काबिलियत से ज्यादा पैरवी का जमाना है। सो शंकर जमाने के साथ चलने का पूरा प्रयास कर रहा था।

एक दिवस अपर्णा और शंकर कॉलेज की कैंटीन में साथ बैठकर पूरे दिन की

थकान को दूर करने का इरादा लेकर चाय पीने बैठे ही थे कि अचानक अपर्णा के गुरु डॉ. किशोरीलाल का फोन बज उठा। शंकर को डॉ. किशोरीलाल और अपर्णा के इस गुरु-शिष्या वाले संस्कारों पर बड़ी कोफ्त होती थी। लेकिन अपर्णा से इस बारे में यह कहना कि 'बंद करो यह नौटंकी, गुरु-शिष्या का जमाना तो कब का गया। आजकल तो हर जगह, गुरु एक पुरुष तथा शिष्या केवल एक देह मात्र है।' शंकर ने यह विचार अपने मन में ही रहने दिया। ऐसा कहने से उसे अपनी सोच को अपर्णा द्वारा दुत्कारे जाने का डर था।

अपर्णा ने फोन उठाया तथा कुछ देर बात करके रख दिया हालाँकि विषय को शंकर कुछ-कुछ भाँप गया था इसीलिए उसने अपर्णा से फोन के संदर्भ में पूछा। अपर्णा ने बताया कि किशोरी सर देशबंधु कॉलेज में निकली लेक्चरर की स्थायी नियुक्ति के संदर्भ में मुझे सलाह-निर्देश दे रहे थे। मैंने उनसे कहा कि मैं अपनी तैयारी को लेकर आश्वस्त हूँ। बाकी सर का आशीर्वाद तो हमेशा मेरे साथ है ही।'

इतना कहकर अपर्णा ने अपना चाय का कप खाली किया और शंकर के चाय के कप की ओर देखने लगी। शंकर भी चाय पीकर चलने को लगभग तैयार था क्योंकि उसका भी इंटरव्यू एक सप्ताह बाद था। समय को बचाना ही था इसलिए दोनों ही अपनी-अपनी तैयारी करने की मंशा लिए कॉलेज से घर की ओर प्रस्थान कर गए।

छह महीने निकल गए थे, शंकर लेक्चरर के पद पर स्थायी होने से वंचित रह गया था। अपर्णा ने उसे समझाया व सँभाला और दूसरे अवसर के लिए तैयारी करने को कहा था। शंकर रह-रहकर स्वयं को कोस रहा था। इंटरव्यू लेने वालों में चार सत्ता पक्ष के थे तथा केवल एक ही विपक्षी था और उसकी पैरवी करने वाला भी। अगर किसी सत्ता रूढ़ व्यक्ति से जुगत लगाई होती, तब तो बात बिल्कुल पक्की थी। समय-समय की बात है। सीट को सलाम होता है। केंद्र में जिस किसी की भी सरकार होती है, उसकी ही तूती बोलती है। अगली बार ऐसी गलती नहीं होगी, अपनी इस हार से शंकर ने केवल इतना ही सीखा था।

वहीं दूसरी ओर दो दिन बाद अपर्णा के रिजल्ट की तारीख थी। उसने तो केवल मेहनत की थी। पैरवी की होती तब तो कोई चांस होता। दो दिवस बाद शंकर ने ही अपर्णा के इंटरव्यू का परिणाम देखा। उसने यह सोचकर परिणाम देखा मानो केवल औपचारिकता पूरी कर रहा हो तथा वह पहले से जानता हो कि कुछ नहीं होने वाला। किंतु कंप्यूटर की स्क्रीन पर अभ्यर्थियों की सूची देख मानो आसमान उसके सर पर धम्म से आ गिरा हो और पाँवों के नीचे की जमीन धँस गई हो।

आज संतुलन बना पाना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन था। ईर्ष्या का भाव फिर से कुलबुलाने लगा था। आज प्रेम पर ईर्ष्या की जीत होने वाली थी। शंकर की जलन अंदर से बाहर आने के लिए अकुला रही थी किंतु इस जलन को अंदर ही ठहरना होगा। बाहर आना तूफान को आमंत्रित करना होगा।

शंकर ने स्वयं को संयत करने का प्रयास किया। प्रेम को प्रेम करने का प्रयास किया किंतु उसके अंदर की तपन ने प्रेम का हाथ पकड़कर यूँ झकझोरा कि प्रेम को क्रोध में परिवर्तित होने में देर न लगी। वह एकदम से चिल्लाया-'आखिर यह कैसे हो सकता है?'

उसका यह वाक्य उसके घर की दीवारों, यहाँ तक कि हर उस चीज ने सुना जो उसके घर में मौजूद थी किंतु अपर्णा तो वहाँ नहीं थी। वह होती तो क्या उत्तर देती? 'मैं उससे जरूर पूछूँगा' यह सोचकर वह गुस्से को अपने माथे पर हिलाते-डुलाते अपर्णा के घर पहुँचा। अपर्णा ने जैसे ही दरवाजा खोला तो शंकर को सामने पाया। वह तुरंत उससे लिपट गई और बोली-'तुम्हें ढेरों बधाइयाँ... तुम्हारी अपर्णा को स्थायी नियुक्ति मिल गई।

शंकर ने अपर्णा को अपने सीने से हटाते हुए कहा-'तो यह बधाइयाँ मुझे क्यों? नौकरी तो तुमने पाई है।'

'मैं और तुम कब से अलग हो गए? हमारे सुख-दुख तो एक ही हैं। आज यह दिन हम दोनों के लिए ही कितना महत्वपूर्ण है।' अपर्णा ने खुशी से शंकर के चेहरे की ओर देखते हुए कहा।

'मेरे लिए नहीं... केवल और केवल तुम्हारे लिए यह दिवस महत्वपूर्ण होगा अपर्णा! मैं तो पुरुष हूँ... इतने अवसर और इतनी जल्दी सफलता पा लेना मेरे लिए मुश्किल ही है।' शंकर ने अपनी बात को कुछ आगे बढ़ाते हुए अपर्णा पर अपने विचारों की गंदगी को उड़ेलते हुए कहा।

अपर्णा का चेहरा एकदम से फीका

पृष्ठ सं. 94 पर शेष भाग

पहचान

अंजली कॉजल
मो. 9868119925

जब लड़की ने अपना फॉर्म कांपते हाथों से उनके सामने किया था तब किरण की नजर लड़की की कई जगह से सिली हुई जूती पर ठहर गई थी। लड़की ने जब फॉर्म किरण के हाथ में दिया था तब उसके पैरों की उँगलियाँ सिकुड़ गयीं थीं। किरण ने दाखिला फॉर्म को पढ़ा और श्रीमती साधना शर्मा से कहा, 'मैडम कम्पार्टमेंट केस है' किरण के कहने में सवाल था।

'एस.सी. है?'

'जी'

'ले लो।' श्रीमती साधना शर्मा ने कहा।

लड़की के चेहरे पर राहत की एक हलकी लहर आई और पैरों की सिकुड़ी हुई उँगलियाँ खुल गई। श्रीमती साधना शर्मा उसे जाते हुए देख रही थी, 'इन लोगों को सब माफ है। ना पढ़ना पड़ता है, ना पास होना होता है। सब भीख में मिल जाता है।'

***

स्टाफ रूम के 'गोस्सिपिंग क्लब' का वो हिस्सा नहीं थी, पर अनीता से अक्सर किताबों को लेकर चर्चा होती। अनीता की नियुक्ति 'लीव वकैंसी' पर हुई थी। जिसकी जगह पर उसे नियुक्त किया गया था, वो अध्यापक अपने बच्चों के पास कनाडा चले गए थे और उनके लौटने के आसार कम थे। अनीता इस कॉलेज के ट्रस्ट द्वारा किये जा रहे शोषण का शिकार हो रही थीं। उन्हें तय मानदेय से कम पैसा दिया जाता था पर हस्ताक्षर पूरे मानदेय पर कराया जा रहा था। जिस दिन तनख्वाह मिलने का दिन होता और वो हस्ताक्षर करती तब हँसते हुए क्लर्क से कहती, 'एक दिन सबको फंसा दूंगी।' आगे से वो दोनों हाथ जोड़ देता और कहता, 'मैं भी मालिक का नौकर ही हूँ मैडम।'

अनीता ने श्रीमती शर्मा को सपना के साथ स्टाफ रूम में आते हुए देखा। 'सपना बेबी, अगर सेहत ठीक नहीं लग रही थी तो आज छुट्टी कर लेती' श्रीमती साधना ने सपना को लाड़ लड़ाते हुए कहा।

'सुबह पहले सोचा था आज नहीं आऊँ, बट! घर पर भी क्या करती। यहाँ आकर 'टाइम पास' हो जाता है। और फिर मेरा, बेबी, भी खुश रहता है यहाँ...। इतने 'डेलीशिस' खाने भी तो मिलते हैं आप लोगों से।'

सपना अपने उभरे पेट पर हाथ फेरते हुए हंसी। सपना वशिष्ट कॉलेज प्रिंसिपल की रिश्तेदार थीं उन दिनों खबर उड़ रही थी कि उसकी 'अस्थायी' अध्यापिका की नौकरी जल्दी ही 'स्थायी' में बदलने वाली थी।

'प्रगतिशीलों ने इस देश को तबाह कर रखा है।' श्रीमती साधना शर्मा का पसंदीदा जुमला बोलते हुए किरण ने अनीता को आँख मारी। दोनों खिलखिला कर हंस दी।

किरण सहगल जी को चोर नजर से देख रही थी जब अनीता ने उसे पकड़ लिया।

'क्या निहार रही हो बन्नो?'

'यही कि, मिडिल ऐज, भी काफी दिलचस्प होती है। जब सहगल जी हमें पढ़ाने आते थे वो मेरे कॉलेज के शुरुआत के दिन थे... उन दिनों उनके बारे में सुनती थी कि लड़कियां उनके लेक्चर में खाली उन्हें देखने जाती थी, पर मुझे उनका मंच पर बोलना अच्छा लगता था।'

'सीधा क्यों नहीं कहती सहगल जी तुम्हारे, क्रश, थे।' अनीता ने छेड़ा।

'हाँ कुछ, क्रश, जैसा ही मामला था। समाज में कुछ बदलने की बात करने वाला हर आदमी मेरा ध्यान खींचता था तब।'

दोनों हंसती रही।

'बहुत बुरा हाल है। बच्चे किताब तो पढ़ना ही नहीं चाहते हैं। सिवाए कोर्स के किसी और किताब को पढ़ने में उनको दिलचस्पी ही नहीं है।' सहगल जी अनीता और किरण के पास वाली कुर्सी पर बैठते हुए गहरी सांस लेते हैं।

'इंसान की समझ पर पड़े परदे कई बार किताब पढ़ने से भी नहीं खुल पाते।' किरण की बात पर सहगल जी मुस्कुराए, फिर उन्हें कुछ याद आ गया।

'आप दोनों से एक काम है। यूथ फेस्टिवल के लिए दो बच्चों को चुनकर भेजना है, कविता-पाठ के लिए। एक बच्ची को मैंने तैयार किया है, एक आप लोग बताइये।'

*****

किरण ने 'लेक्चर रूम' में बैठी लड़कियों पर निगाह दौड़ाई। हर साल की तरह इस साल भी वाणिज्य पढ़ने वाली लड़कियां कम हो गई थीं। लड़कियों का यह कॉलेज शहर की उस बस्ती के बहुत करीब था जहाँ शहर के एक खास व्यापारियों के घर थे। ये लोग उस बस्ती में एक समुदाय की तरह इकट्ठे रहते थे। बस्ती के पास होने की वजह से इनकें घरों की ज्यादातर लड़कियां इसी कॉलेज में पढ़ने के लिए आती थी। ऐसा कहा जाता था कि ये समुदाय अपनी लड़कियों के दाखिला के समय ट्रस्ट को अच्छा खासा चंदा भी देता था। ज्यादातर लड़कियां अच्छे स्कूलों से पढ़कर आतीं। इनमें से जो लड़कियां अच्छे अंक लाती वे वाणिज्य पढ़ने को चुनती। पर यही लड़कियां बाहरवीं के बाद वाणिज्य छोड़कर स्नातक में चली जातीं थीं। किरण को धीरे-धीरे इसकी वजह का पता चला। इनके घरों की औरतें केवल घर संभालतीं। उन्हें घर से बाहर जाकर काम करने की अनुमति नहीं मिलती थीं। कुछ इक्का-दुक्का लड़कियां जिद्द करके घरवालों को मना पाती बाकी हार मान लेतीं। जो हार मान लेतीं वो लड़कियां बाहरवीं कक्षा के बाद वाणिज्य छोड़ होम साइंस, चित्र कला या स्नातक के दूसरे विषय चुन लेतीं।

शुरुआती परिचय के बाद किरण ने लड़कियों से एक सवाल किया कि जीवन में वे आगे क्या करना चाहती हैं? कुछ लड़कियों ने आगे चलकर 'चार्टर्ड अकाउंटेंट' बनने की इच्छा जताई, कुछ ने अध्यापिका बनने की, तो कुछ को पता नहीं था, उन्हें क्या करना है। कुछ ने कहा, मौका ही नहीं मिलेगा, क्योंकि आखरी साल तक पहुँचते-पहुँचते घरवाले उनकी शादी कर चुके होंगे। फिर एक लड़की झिझकते हुए अपनी बारी आने पर खड़ी हुई। उसने अपने दुपट्टे को संभाला और किरण की ओर देखते हुए बोली, 'मै बहुत पढ़ना चाहती हूँ। तब तक पढ़ती रहना चाहती हूँ, जब तक मेरा मन करे। इस पढ़ाई के लिए साथ में कुछ काम करुँगी, कुछ ऐसा काम जो मेरी पढ़ाई के खर्चे को चला पाए। और फिर एक दिन मैं अपनी बस्ती में एक स्कूल भी खोलना चाहती हूँ ताकि मेरी बस्ती की लड़कियों को पढ़ने के लिए दूर ना जाना पड़े।'

पीछे के बेंच पर बैठी कुछ लड़कियाँ हंस पड़ी। वो लड़की झिझककर अपनी बेंच पर बैठ गई। किरण ने उस लड़की को पहचाना। ये वही लड़की थी जो उस दिन फॉर्म जमा करने आई थी।

*****

उस दिन के बाद किरण ने कई बार उस फॉर्म वाली लड़की को कॉलेज में देखा। ज्यादातर वो लाइब्रेरी के एक कोने में बैठी पढ़ रही होती। जिस तरह की पत्रिकाएं और किताबें वो पढ़ती,

वो किरण का ध्यान खींचती थी। एक दिन जब वो लड़की लाइब्रेरी में बैठी पढ़ रही थी, लड़की ने आँख उठाकर किरण की ओर देखा, किरण ने उसे इशारे से बुलाया। लड़की थोड़ा-सा घबरा गई थी।

'क्या नाम है तुम्हारा?'

'मैडम, गीता।'

'किस विषय में कम्पार्टमेंट है तुम्हारी?'

'गणित में'।

'तुमने वाणिज्य पढ़ने का निर्णय आप लिया था या किसी के कहने पर यह विषय चुना था?'

'मैंने आप ही चुना था।'

'तुम चाहो तो इस विषय को बदल सकती हो अभी भी?'

'नहीं मुझे इस विषय को बदलना नहीं है।'

किरण कुछ देर उसके चेहरे के भाव पढ़ती रही।

*****

गीता ने कॉलेज के 'नोटिस बोर्ड' पर कविता-पाठ प्रतियोगिता के बारे में पढ़ा। सबसे नीचे लिखा था कि भाग लेने के लिए किरण या सहगल जी को अपनी कविता के साथ संपर्क करें। कुछ पल वो वहीं खड़ी सोचती रही, फिर आगे बढ़ गई।

किरण ने गीता को कल गणित की किताब लेकर 'स्टडी रूम' में आने के लिए कहा था। गीता 'स्टडी रूम' की ओर चल पड़ी।

*****

'आज सचमुच बहुत बुरा लगा जिस तरह लड़कियों ने सभागार में 'हूटिंग' की। इतने बड़े शास्त्रीय संगीत के कलाकार आए और इन लड़कियों ने सभागार में जो किया बहुत बुरा संदेश गया।'

आज 'स्टाफ रूम' में चर्चा का विषय यही था। श्रीमती सिंघल जो कि संगीत पढ़ाती हैं, ने किरण की ओर इशारा करते हुए कहा, 'ये सब 'साइंस' और 'कॉमर्स' के विद्यार्थी ही होते हैं जो कलाकारों के प्रति ऐसा रवैया रखते हैं।'

जब भी कॉलेज में कोई शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम होता ऐसा आम ही देखने को मिलता था कि सभागार में लड़कियाँ कम होती। पिछली बार प्राध्यापक ने ऐसे ही किसी कार्यक्रम के बाद 'नोटिस बोर्ड' पर प्राध्यापक का आदेश लगवाया गया था कि ऐसे सभी कार्यक्रम में उपस्थित होना सब विषय के विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य होगा। तब से लड़कियां, जिन्हें जबरदस्ती वहां बिठाया जाता वे कार्यक्रम में कई बार 'हल्ला' करती पायीं गयीं।

'जब ये लड़कियां शास्त्रीय संगीत नहीं सुनना चाहती तो उनको जबरदस्ती वहां भेजना भी गलत है। इन कलाओं की कद्र वही कर सकता है जिसे इन कलाओं की पर्याप्त जानकारी दी जाये। हम बच्चों को सब तरह की कलाओं की जानकारी अगर दें तब शायद उनमें से कई इन्हें सुनना पसंद करें। और मैं ऐसे बहुत से लेखकों को जानती हूँ जिनकी पृष्ठभूमि 'साइंस' और 'कॉमर्स' जैसे विषयों में है और वे अच्छे लेखक हैं।' किरण ने अपना पक्ष रखा। पर इस चर्चा के बहाने उसे अपने महिला कॉलेज की याद हो आई। कॉलेज भी स्कूल जैसा लगता था। लड़कियों के सब कॉलेज में दोपहर के एक निश्चित समय तक गेट बंद रखे जाते थे ताकि लड़कियां जब एक बार कॉलेज में दाखिल हो जाएँ तब बाहर ना जा पायें। हफ्ते में एक दिन स्कूल की तरह वर्दी पहनना अनिवार्य होता था। लड़कों के कॉलेज में ऐसे कोई नियम नहीं थे जो लड़कियों के कॉलेज में थे। हर छोटे शहर में लगभग यही स्थिति थी, बल्कि इससे भी बुरी।

'मुझे याद है एक बार मेरा एक मित्र मुझे कोई किताब देने मेरे कॉलेज पहुँच गया। वो तय समय से पहले आ गया और मैं गेट के इस पार उसको देख पा रही थी पर मुझे किसी ने बाहर जाने की अनुमति नहीं दी। उस दिन वो मुझे गुस्से में बोला, 'अगर मेरी कोई बेटी हुई तो मै उसे कभी इस तरह के कॉलेज में पढ़ने नहीं भेजूंगा।'

सहगल जी और अनीता के चेहरे पर मुस्कराहट थी। श्रीमती साधना ने चिढ़कर कहा, 'ऐसा कुछ लड़कियों की वजह से करना पड़ता है। ये छोटी जाति के लोग भी अब पढ़ने आने लगे हैं, पर इनके संस्कार तो बने नहीं। संस्कार तो घर से बनते हैं।' किरण कुछ नहीं बोली इसके बाद।

*****

कुछ दिन गीता को पढ़ाने के बाद किरण जान गई थी कि गीता पढ़ने में कमजोर नहीं थी। एक दिन उसने गीता की कॉपी में लिखी कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं–'आसमान भी मेरी तरह चुप है, मुझपर भी एक कोहरा सा छाया है।'

उस दिन दोपहर में उसने गीता से पूछा, 'क्या तुम मंच पर कविता पढ़ोगी?' गीता की आँखों में चमक आ गयी थी।

*****

पूजा जैन नेअपनी कविता आत्म-विश्वास के साथ पढ़ी। सहगल जी ने गौरवान्वित नजरों से किरण को देखा। जैसे ही सहगल जी ने गीता से कविता पढ़ने के लिए कहा, उसकी साँसें तेज-तेज चलने लगी, माथे पर पसीना बह आया। वो कुछ भी बोल नहीं पायी। किरण ने गीता के सिर पर हाथ रखा और उसे जाने के लिए कहा।

'कॉलेज की प्रतिष्ठा का मामला है' सहगल जी धीमे से बोले।

दोनों लड़कियों को भेज दिया गया तब किरण ने सहगल जी से कहा, 'नारी की महानता और ममता का महिमामंडन करती कविताएं मुझे पका देती हैं।' सहगल जी सुनकर हंस पड़े।

'पूजा का उच्चारण अच्छा है। कविता बदली जा सकती है।'

*****

'तुम मेरी बहन की शादी में क्यों नहीं आई?' सरबजीत ने उलाहना देते हुए पूछा।

'मुझे लड़कियों की शादी में जाना पसंद नहीं है।'

'क्यों पसंद नहीं है?'

'लड़कियां जब विदा हो जाती हैं, घर में एक मनहूस-सा सन्नाटा छा जाता है।'

सरबजीत की आँखों में बूँदें छलक आई।

'तुम्हारी दीदी की शादी हो चुकी है न?'

'हाँ!', गीता ने धीरे-से जवाब दिया।

*****

आज फिर गीता को कविता पढ़नी थी। पूजा और उसके साथ आई उसकी दो सहेलियां गीता को आते देखकर अजीब तरीके से हंसने लगी। गीता जब पास आकर खड़ी हुई, किरण का ध्यान आज फिर उसके पैरों पर गया। उसके पैर की उँगलियाँ जूते के अंदर सिकुड़ रही थी और वो बार-बार अपने होठों पर जीभ घुमा रही थी। किरण ने देखा जैसे ही पूजा ने कविता पढ़नी शुरू की, गीता के माथे पर पसीना बहने लगा।

उसने गीता को बैठने के लिए इशारा किया। गीता को पानी पिलाया गया। उस दिन किरण को पता चल गया था कि गीता को 'पैनिक अटैक' होते थे।

'बेकार मेहनत कर रही हो किरण', जाते-जाते सहगल जी किरण से कह गए।

अगले दिन जब गीता पढ़ने के लिए 'स्टडी रूम' में किरण के पास आई, किरण ने गीता से बातें करना शुरू किया। वो उससे तब तक बातें करती रही जब तक कि गीता उसके साथ कुछ सहज नहीं हो गई। इसी दौरान बातचीत में उसे पता चला उसकी दो बहनें और एक बड़ा भाई था। एक बहन उससे छोटी थी और एक बड़ी। पिता एक फैक्ट्री में काम करते थे।

गीता के भाई को कॉलेज के पहले ही दिन जब यह सुनना पड़ा था 'तुम्हारी औकात नहीं है इस कॉलेज में पढ़ने की।' तब उसका पढ़ाई से मन उचट गया था। यही नहीं उसकी खराब अंग्रेजी और टाट वाले सरकारी स्कूल की पढ़ाई उसे कुंठित करने लगी थी। उसे एहसास हुआ कि आरक्षण से उस कॉलेज में दाखिला ले लेने भर से समस्याओं का हल नहीं हो गया था बल्कि ये शुरुआत थी। आखिर तंग आकर एक दिन उसने पढ़ाई छोड़ दी और पिता के साथ होजरी मिल में काम करने जाने लगा।

*****

इससे पहले कि कोई गीता से कविता पढ़ने के लिए कहता, किरण ने पूजा की सहेलियों को वहां से जाने के लिए कह दिया। पूजा अब एक मशहूर साहित्यकार की एक लंबी कविता याद करके आई थी। सहगल जी ने मुस्कुराते हुए किरण की ओर देखा तब किरण समझ गयी थी उनका मतलब। उसने पूजा के नाम पर सहमति दे दी थी।

सहगल जी जब उठकर चले गए तब किरण ने गीता से कहा, 'गीता, ये तुम्हारी कविता है और तुम्हें इसे महसूस करते हुए बोलना है। बस!'

उसने गीता से कविता पढ़ने के लिए कहा। गीता ने झिझकते हुए कहा, 'मैं कविता याद नहीं कर पा रही हूँ। क्या मै अपनी कविता पढ़कर बोल सकती हूँ?'

उसने हाथ में एक पन्ना पकड़ रखा था जिसपर कविता लिखी थी। सहगल जी ने उसे कविता पढ़कर ही बोलने के लिए कहा।

उस दिन गीता ने पहली बार सहज होकर कविता पढ़ी। किरण को पता था सहगल जी जानते थे कि कविता में कुछ बात थी। उस दिन वे स्वयं कह रहे थे, 'आखिर कितने बच्चे स्वरचित कविता बोलते हैं?'

*****

बात सहगल जी ने ही शुरू की थी। उन्होंने 'स्टाफ रूम' में कम्बोज जी

से उनके बच्चे के कॉलेज में दाखिले के बारे में पूछा था।

'सर नहीं हो पाया।'

'ओह! प्रतिस्पर्धा बहुत बढ़ गई है' सहगल जी ने कहा।

'प्रतिस्पर्धा तो ठीक है पर इन आरक्षण वालों ने भी तो कब्जा कर रखा है। हमारे बच्चों की सीटों पर, कम्बोज जी ने गुस्से में कहा था।

किरण को पता था बात यहीं पहुंचेंगी। उसके अंदर कुछ दहकने लगा था।

'सर आपके बच्चे के कितने नंबर थे?' किरण ने कम्बोज जी से पूछा।

'अस्सी प्रतिशत'

'और 'कट ऑफ' क्या रहा?'

'पचासी प्रतिशत'

'तो फिर उसे और मेहनत करनी होगी।'

'पर आरक्षण से आने वाले बच्चों के साठ प्रतिशत थे और उनको दाखिला मिल गया।'

'सर आप अनुसूचित जाति से हैं क्या?'

'नहीं नहीं मैडम?' कम्बोज जी उखड़ गए।

'फिर आप उनसे अपना मुकाबला क्यों कर रहे हैं? वे वंचित वर्ग के लोग हैं।'

'क्या वंचित वर्ग मैडम। हरामखोर हैं। इनकी और कितनी पीढ़ियों को आरक्षण चाहिए?'

'सर सदियों का फासला है, कुछ समय तो लगेगा साथ आने में।'

उसके बाद श्रीमती साधना भी बहस में कूद पड़ीं। कम्बोज जी तो लगभग गाली पर उतर आये। वही-वही बातें, 'आरक्षण एक भीख है, ये लोग खाली वोट बैंक हैं, इस देश की नाकामी का कारण आरक्षण से भर्ती हुए लोग हैं, आरक्षण से बने डॉक्टर से कितने लोगों की जान को खतरा है, कितने पुल गिरते हैं इन आरक्षण वालों की वजह से आदि-आदि।

बहस से स्टाफ रूम गरम हो गया। और अंत में वो बहस में एक तरफ अकेली ही रह गई। इस देश में हर बहस आरक्षण पर आकर खत्म होती है। पूरा देश आरक्षण का मारा हुआ है। पड़ोसी शुक्ला जी की बीवी परेशान थी, 'देखो शहरों में अब कहाँ ये लोग हमारे घरों के पाखाना साफ करते हैं। अब सब हमें खुद ही करना पड़ता है।' स्कूल के मास्टर उसकी सहेली को जो हरियाणा के एक सरकारी स्कूल में पढ़ाती थी, कहते थे, 'बेटी इन छोटी जात वालों को ज्यादा मत पढ़ाया कर। बड़े होकर हमारे ही बच्चों के लिए मुश्किल बनेगें।'

किरण को सब लोगों का कम्बोज जी के पक्ष में बोलना उतना नहीं खला था जितना सहगल जी का चुप लगा। जाना, चुप्पी की राजनीति!

'समय अब बदल चुका है। हमारे बाप-दादाओं की गलती की सजा हमारे बच्चे क्यों भुगतें?' कम्बोज जी ने सबका समर्थन मिल जाने के बाद कहा।

'समय इतना भी नहीं बदला कम्बोज जी। कॉलेज में मेरा पहला दिन था और आपका मुझसे पहला सवाल था, 'आपकी कास्ट क्या है? ...आप क्यों जानना चाहते थे मेरी जाति? ...जब जाति का कोई महत्त्व नहीं रहा, तब हम क्यों अभी तक अपनी जातियों में शादी करते हैं? क्यों हम अपनी जाति के लोगों को नौकरी पर रखते हैं?'

किरण ने एक ठंडी सांस ली।

'कॉलेज के पहले ही दिन आपका 'मेरी जाति क्या है' पूछना मुझे काफी निराश कर गया था। सोच रही थी इस सवाल को मेरी शैक्षणिक योग्यता क्या है, होना चाहिए था। मैं आज बता देती हूँ, मेरी जाति क्या है, कम्बोज जी। मैं उसी जाति से हूँ जिसे अभी आप हरामखोर कहकर संबोधित कर रहे हैं।'

श्रीमती साधना हकलायीं, 'आ..आ... आप तो नहीं हो सकती।'

'क्यों नहीं हो सकती? क्योंकि मैं आपके बराबर आ बैठी हूँ?'

'स्टाफ रूम' में श्मशान-सा सन्नाटा छा गया।

*****

उस शाम किरण अपने कमरे में कम रोशनी में अकेली बैठी थी। जब भी उसका मन ठीक ना होता, वो अपने कमरे में अपनी पसंद का संगीत सुनती या किताब पढ़ती। पर स्टाफ रूम में हुई बहसों का शोर अभी भी उसके अंदर हाहाकार मचाये हुए था।

उसे कॉलेज के दिन याद आए। जब दूसरी लड़कियाँ लड़कों की बातें करती, लड़कों के ख्याल में गुम रहतीं थीं, किरण अखबार और किताबों में डूबी रहती थी। जिन दिनों लड़कियाँ नए फैशन के सूट सिला रही थीं, किरण अपने सरकारी स्कूल की पढ़ाई की कमियाँ दूर करने में लगी रहती थी। जिन दिनों लड़कियाँ नए-नए शहर, पहाड़ी इलाके घूमने जातीं थी, वो लाइब्रेरी की खाक छानती घूमती थी। जिन दिनों लड़कियां ब्यूटी पार्लर जाकर अपने बाल सीधे करवाने में लगी थीं, किरण अंग्रेजी

भाषा को सीखने में लगी थी ताकि पंजाबी माध्यम वाली स्कूल की पढ़ाई के ठप्पे से पीछा छुड़ा पाए। जब लड़कियां अपनी शादी की तैयारियों में व्यस्त थीं, किरण अपने पैरों पर खड़े होने की जद्दो-जहद में लगी थी। 'आरक्षण की सीट' ने उसे इतना झिलाया था कि हर समय उसे लगता उसे सारी दुनिया को कुछ साबित करना है। और जल्दी ही एक नौकरी पा लेने के बाद उसे प्रेम हो गया था। किरण का 'पहला प्यार' जो शादी तक पहुँच जाने के पहले टूट गया था। वो एक ब्राह्मण परिवार से था, उसने कहा था, 'बुरा मत मानना। अब देखो मेरे घरवाले जब एक 'छोटी जाति' की लड़की को बहू स्वीकार कर रहे हैं तो तुम्हारे माँ-बाप को भी उनकी कुछ शर्तें माननी होंगी।'

एक सवाल उसके जहन में बार-बार उठ रहा था। आज तक क्यों उसमें इतनी हिम्मत नहीं आ पाई थी कि वो कॉलेज में अपनी जाति बता पाती? क्यों इस सवाल को वो टालती रही थी?

उसे अपने मामा के बेटे की बात याद आयी जो उसने कही थी जब उसने अपनी नई नौकरी शुरू की थी, 'यह कोई सरकारी नौकरी नहीं है। निजी क्षेत्र में काम करते हुए तुम्हें बहुत ख्याल रखना होगा। अगर तुम हर जगह अपनी जाति बताती रहोगी, ये ब्राह्मण और बनिया लोग तुम्हें कभी आगे नहीं बढ़ने देंगे। सफल होना है तो अपनी जाति छुपाओ'

गीता ने उसके अंदर ऐसा क्या बदल दिया था कि अब और वो उस कॉलेज में अपनी जाति छुपाकर नहीं रखना चाहती थी?

*****

गजब दिन था वो भी। लड़कियों में उत्साह था। निर्णायक मंडल में एक जाने माने साहित्यकार भी थे। सहगल जी मंच के सामने कुर्सियों की दूसरी कतार में बैठे थे। किरण भी उनके साथ बैठी थी। श्रीमती साधना शर्मा के साथ कॉलेज के कई अध्यापक मौजूद थे।

सहगल जी उस दिन 'स्टाफ रूम' में हुई चर्चा के बाद जैसे किरण से आँखें नहीं मिला पाते थे। आज कार्यक्रम शुरू होने से पहले किरण के पास आए और कुछ देर जैसे शब्द ढूँढ़ते रहे।

'आप सही कहतीं थीं कि किताबें भी हमारी सोच पर पड़े पर्दों को नहीं उतार पाती कई बार। मैं गीता के बारे में गलत था।'

लड़कियाँ बड़ी-बड़ी कविताएँ याद करके आई थी और उन कविताओं को बहुत आत्मविश्वास के साथ मंच पर बोल रहीं थीं। आखिरकार गीता का नाम बोला गया। वो हलके गुलाबी रंग का सलवार सूट पहनकर आई थी और उसके बाल लंबी चोटी में गुंथे हुए थे। वो मंच पर जा खड़ी हुई। अभी दो दिन पहले पता चला गीता ने गणित की परीक्षा पचपन प्रतिशत अंकों से पास कर ली थी। एक पल के लिए किरण के जहन में वही समय उभर आया जब गीता कांपते हाथों से फॉर्म जमा करने आई थी।

गीता ने जब शुरुआती संबोधनों के साथ अपनी स्वरचित कविता का शीर्षक 'पहचान' बताया, अभी तक एक भी लड़की ने स्वरचित कविता नहीं पढ़ी थी। गीता ने कविता पढ़ना शुरू किया।

'उसने दुनिया को जब
अपनी निगाह से देखना शुरू किया था
उसे लगा था
दु:ख से गहरा कुछ न होगा दुनिया में
और गरीबी से बड़ी कोई मार ना होगी
पर ज्ञान का सूरज उगेगा जब देश में
फिर बीच में कोई दीवार न होगी
लेकिन दुनिया की अलग थी हकीकत
दु:ख से ज्यादा मारक थी नफरत
किसी का अपना पूरा शहर था
किसी के हिस्से सदियों का सफर था
मेरी माँ के हाथों में कालिख लिखी थी
मेरे पिता के तन पे किसी और की मिट्टी थी
हिस्से में हमारे कोई खेत नहीं था
हमारे नाम का तो कोई देश नहीं था
अपने होने से ज्यादा पहचान जरूरी थी
हमारे बीच अभी सदियों की दूरी थी'

सभागार तालियों से गूँज उठा। उस कविता को सुनने के बाद किसी के भी कानों में कुछ और नहीं जा रहा था।❑

सांख्य संवाद

कपिल मुनि को सांख्य दर्शन का जनक और संग्रहकर्ता दोनों ही माना जाता है, हालांकि दोनों तरह के मत अलग-अलग विद्वानों के हैं। फिर भी यह बात गौर करने लायक है कि सांख्य का ज्ञान कपिल ने आसुरि को दिया। विद्वानों का मत है कि आसुरि कोई व्यक्ति होगा, इसका ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, लेकिन सूर से भिन्न असूर समाज है, बहुत संभव है कि असूर अथवा उनकी संतति को ही आसूरि कहा गया था। कपिल ने जिसे अपना सांख्य ज्ञान दिया वह आसूरि वास्तव में असूरों की संतान ही थे। चौखंबा ओरियंटालिया से प्रकाशित 'सांख्यदर्शनम्' (पृ. १९) में डॉ. राकेश शास्त्री मान चुके हैं-' ऋग्वेद के मंत्रों में अनेक स्थलों पर सांख्यदर्शन के सिद्धांतों एवं तत्त्वों को मूलरूप में सहज देखा जा सकता है।' वेदों में ऋग्वेद सबसे महत्वपूर्ण और पुराना है, उसमें सांख्य की मौजूदगी अपने-आप सिद्ध करती है कि सांख्य वेदों से पुराना है। इसी के साथ यह भी सिद्ध होता है कि यह भारत के मूलनिवासियों का दर्शन है।

प्रत्युत्तर

सुनीता बौद्ध
मो. 9058526830

शहर के लोकप्रिय चौराहे पर बैठी रमा प्रतिदिन आते-जाते राहगीरों को एकटक देखती रहती। यौवन का ढलान, मन में वेदना, मस्तिष्क में आंधी और आंखों में पानी की बरसात लिए वह जीवन के आने का प्रतिदिन इंतजार करती। सुरजीत, सुजान और दुर्गा की विधवा मां जो कभी शहर में बने मकान और पति जीवन की ईमानदारी से हवा में उड़ा करती थी। सुख सुविधाओं का ठीक-ठाक प्रबंध था। महामारी कोरोना से पांच वर्ष पूर्व पति जीवन गांव छोड़कर अपने बच्चों की अच्छी शिक्षा के लिए शहर आए थे। आढ़तिया के काम से उन्हें आर्थिक तौर पर मजबूती मिली थी। कठिन परिश्रम से पाई-पाई जोड़कर शहर के मुख्य चौराहे के पास सौ वर्ग जमीन खरीद कर रहने लायक घर बना लिया था। जिंदगी अच्छी चल रही थी। पति श्रम पर भरोसा करते थे और पत्नी प्रभु पर इस बात को लेकर कभी-कभी दोनों में बहस भी हुआ करती थी। धर्म-कर्म में रमी रमा का ईश्वर भक्ति तक तो ठीक था लेकिन धार्मिक अंध विश्वास और ढोंग से जीवन कभी-कभी बहुत चिढ़ता था। शहर में आने के बाद रमा ने सभी जाने-माने मंदिरों के दर्शन कर लिए थे। चर्चित बाबाओं के यहां जाकर आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था। जब कभी जीवन बच्चों की फीस भरने के लिए कहते तो उनका कलेजा धध क उठता, पैरों में दर्द शुरू हो जाता था। जीवन सप्ताह में एक दो बार पूछ ही लेते 'अरी ओ दुर्गा की मम्मी! अपने बच्चे प्रतिदिन पढ़ने तो जा रहे हैं ना उनकी फीस जमा हो गई है।' प्रतिदिन के सवालों का एक ही उत्तर मिलता 'हां! अभी मैं पूजा कर रही हूं शाम को बात करती हूं।'

कच्चे आढ़तिए को तो तब भी कुछ समय मिल जाए लेकिन पक्के आढ़तिए के घर लौटने का कोई समय निश्चित नहीं होता। परिणामस्वरूप सुरजीत, सुजान और दुर्गा की प्रतिदिन की शैक्षिक प्रगति रिपोर्ट अधूरी ही रहती। श्रमजीवी श्रम में, धर्मजीवी धर्म में, और बच्चे अपनी मस्ती में जी रहे थे।

शाम का वक्त और चौ-मुहानी के कोलाहल को चीरता हुआ एक युवक रमा के दरवाजे को बदहवासी में खटखटाये जा रहा था। 'दुर्गा की अम्मा!

ओ दुर्गा की अम्मा! आपको कोई खबर मिली? दुर्गा के बापू की एक मंदिर के पास पीट-पीटकर हत्या... मेरे मोबाइल में उनका फोटो आ रहा है।'

ज्यों ही फोटो देखा रमा चीखने लगी, 'यह ऊँच-नीच का कीड़ा शहर में भी हमारा पीछा नहीं छोड़ रहा है यहां के पढ़े-लिखे लोग भी जात-पांत करते हैं।' उसने पूछा, 'तुम्हें कैसे पता? तुम हत्यारों को जानती हो? कौन है?' वह युवक पूछे ही जा रहा था।

कारूणिक स्वर में रमा बताए जा रही थी, 'मैंने ही आज उन्हें जबरदस्ती अपने शहर के प्रसिद्ध मंदिर में पूजा के लिए जोर देकर भेजा था। मैं कृतज्ञ थी कि ईश्वर की कृपा से मुझे सब कुछ मिला। पर हाय रे! जात-पांत तूने मेरा सब कुछ छीन लिया मैंने उनकी एक न सुनी। क्या ईश्वर भी भेद-भावी है?'

अवचेतन मन में अन्य सामाजिक घटनाएं उभरने लगी। वैधव्यता का डर बैठ गया। दुख, शोक, अकेलापन सामाजिक दायरे और आर्थिक तंगी की गलियों में जिम्मेदारियों की पूर्व की जिंदगी दिखाई देने लगी। 'नहीं... नहीं मुझे ही संभालना होगा। आप ठीक कहते थे। मैं बच्चों की तरह अब पूरा ध्यान दूंगी।' रमा विकल थी। स्नेहपालितों की आर्थिक और शैक्षिक जिम्मेदारी दोहरे रूप में मुँह बाँए खड़ी थी वैसे भी पुराने दर्द की दवाई नया दर्द ही होता है। कई शाम, कई सुबह बीती रमा ने अपने बचत के पैसों से एक गाय खरीद ली। दूध और उपले बेचकर जीवन यापन चलने लगा। बच्चों का मन पढ़ने में कम लग रहा था सुरजीत और सुजान बुरी संगत में पड़ चुके थे। शिक्षा से विमुख भी हुए और व्यसनों में लिप्त भी। मां की अधिक धार्मिक अंधता ने बच्चों की नैतिक और शैक्षिक दोनों जड़े कमजोर कर दीं। एक तो करेला दूजै नीम चढ़ा।। सुख के दिन लद गए थे। बेटी दुर्गा सयानी हुई तो एक शाम रमा ने जिक्र किया, 'तुम्हारी बहन बड़ी और सयानी हो गई है तुम्हें नहीं लगता कि अब इसका विवाह किया जाए।'

'पर पैसे कहां से आएंगे' सुरजीत और सुजान ने एक स्वर में बोला। 'तुम दोनों को ही व्यवस्था करनी है तुम्हारे सिवा अब यह कौन करेगा बेटा' रमा ने दोहराया। 'मैं कल बताऊं।' सुरजीत यह कहकर ड्यौढ़ी की तरफ तेजी से बढ़ा। सुजान ने भी 'हां' में 'हां' की।

रमा को रात भर नींद ना आई। अपनी दुहिता के लिए दुश्चिंता थी। पैर सीधे नहीं पड़ रहे थे। दूसरी पहर उसने दोनों बेटों से पूछा, 'कुछ सोचा'

'हां हम दोनों ने शहर के बड़े सेठ रग्गी लाला से बात की है वह हमें दो लाख देने के लिए तैयार हैं आप इस पर अंगूठा लगा दो' यह कहकर कुछ दस्तावेज रमा की तरफ खिसका दिए। 'यह क्या है?'

'मकान के कागज है मां! हम इसे अब गिरवी रख रहे हैं। इसके अलावा हमारे पास कोई और चारा नहीं है।'

'सुरजीत! सुजान! तुम्हें शर्म नहीं आ रही है यह सब करते हुए। तुम्हारे पिता ने खून पसीने से कमाकर हमें यह घर बना कर दिया था और तुम दो कौड़ी में ही इस गिरवी रखना चाहते हो।' रमा ने यह कहते हुए दस्तावेज दूर झिड़क दिए।

'कैसी शर्म? जिस ईश्वर की मर्जी से हम गांव छोड़कर शहर आए। रहने लायक घर बना उसी की मर्जी से यह घर भी गिरवी रखा जा रहा है इसमें इतना तो नहीं सोचना चाहिए मां।'

रमा की पूर्व यादों के झरोखे रह-रह कर जहन में अंकित होने लगे। उसके पति जीवन कहते थे कि 'धार्मिकता जहाँ हमें नैतिक मूल्यों के निर्माण में सहायक है उसी प्रकार शिक्षा और श्रम हमारे लक्ष्य प्राप्ति में सहायक है। धर्म के साथ परिश्रम को जोड़ दिया जाए तो सफलता निश्चित है। 'रमा! तुम कुछ समझने को तैयार ही नहीं हो। तुम्हारा यह धार्मिक पाखंडवाद का नशा शराब के नशे से भी ज्यादा घातक है। एक पुरुष भले ही शराबी हो जाए पर पाखंड वादी नहीं होना चाहिए और महिला को तो अंधविश्वास ढोग से बिल्कुल दूर ही रहना चाहिए। शराबी पुरुष से ज्यादा घातक एक अंधविश्वासी और ढोंगी महिला होती है। तुम अपनी इस फसल का बोया हुआ एक दिन जरूर काटोगी।

जीवन की बीती बातें याद करते हुए रमा के मानस पटल पर अतीत की यादें हिलोरें लेने लगीं। अश्रुपूरित नयन जमीन में गड़े जा रहे थे। प्रत्युत्तर भी था और पश्चाताप भी, परंतु उसे सुनने वाला जीवन इस दुनिया से रुखसत हो चुका था।❑

चार्वाक का मत

चार्वाक की प्राचीनता सिद्ध करने के लिए कोई तारीख निश्चित नहीं की जा सकी है, लेकिन चार्वाक भारत में पैदा हुआ दुनिया का पहला व्यक्ति था जो अखिल विश्व से कहता है-'कोई ईश्वर नहीं है।'

जाति का यथार्थ

डॉ. मोहिनी मिंकी
मो. 9917120624

जब मैं पहली बार 'दयाल बाग शिक्षण संस्थान' में नियति से मिली तो लगा कि बड़ी कड़क-खरे स्वभाव की लड़की है, इसलिए मैं उसकी पूरी इज्जत किया करती क्योंकि मैं धीरे- धीरे जान ही चुकी थी कि वह नारियल के ऊपरी खोल की तरह सख्त जरूर है परन्तु भीतर से सफेद गिरी की तरह उसका दिल है, उसके चरित्र की विशेषता यह थी कि वह हमेशा सच ही बोलती... चाहे कितना भी 'कटु' क्यों न हो...

शोध कार्य में मेरा मन रमने ही लगा था कि मेरी मुलाकात शिक्षण संस्थान में रमन से हुई, काफी नेक स्वभाव का लगा मुझे और मेरी रमन से अच्छी मित्रता हो गई, जो कि अंततः बढ़ती ही गई। मित्रता जब बढ़ती है तो दोस्तों के प्रेम प्रसंग तो खुलते ही हैं, मित्रता का पैमाना भी यही है, तो मेरे मित्र भी मित्रता की कसौटी पर खरे उतरे, उन्होंने पूरी निष्ठा और समर्पण भाव से बताया कि मैं एक लड़की से बहुत प्रेम करता हूँ, जो दलित जाति की है, तुम तो जानती हो आरती, मैं ब्राह्मण कुल में जन्मा हूँ...और ब्राह्मण कुल में, दलित जाति की लड़की कभी स्वीकृत नहीं होगी। मेरे गाँव तो क्या आसपास के दस गाँव में जाति के बाहर जाकर किसी ने विवाह नहीं किया, मैं ऐसा दुस्साहस कर बैठा हूँ! मेरे घरवाले उस लड़की को कभी स्वीकार नहीं करेंगे...। समुचित भाव से मैंने बस इतना भर कहा, 'जब तुम जानते थे, जाति की बेड़ियों को नहीं काट पाओगे, तो तुमने उससे प्रेम क्यों किया?'

रमन बोला, 'मैं अपने एक हजार प्रयास करूंगा, पर अपने पिता के फैसले के खिलाफ, मैं भी नहीं जा सकता।'

मैंने मित्र से बड़े ही प्रेमभाव से कहा कि वह भी तुमसे अत्यधिक प्रेम करती होगी... लड़कियां यदि सच्चा प्रेम करती हैं तो प्रेमी को भगवान बना लेती हैं। एकनिष्ठ प्रेमिका के लिए जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है कि 'प्रेमी को पति के रूप में पाना' प्रेमी का पति स्वरूप मिलना, उसके लिए भगवान मिल जाने जैसा होता है और इतना कहकर मैं शोध कक्ष से बाहर निकल गई।

*****

शोध कार्य पूरा करने के साथ ही,

मित्र सरकारी अध्यापक हो गए थे और मैं फूली नहीं समा रही थी क्योंकि मेरा भी शोध कार्य प्रगति कर रहा था, पाँचवे अध्याय को लिखकर उपसंहार लिखने की रूपरेखा बना ही रही थी कि फोन की घंटी बजी, 'रमन का फोन' और अति उत्साह से मैंने फोन रिसीव किया, मित्र ने बताया कि मेरा विवाह राजघराने की कुलीन कन्या शुचि के साथ, पिता की पसन्द से तय हो गया है, तुम्हें जरूर आना है...।

मैं बौखलाई-प्रेम किसी और से; विवाह किसी और से, तुम पागल हो गए हो रमन, अपनी प्रेमिका को किसी और के लिए छोड़ दोगे, ये कैसा प्रेम है तुम्हारा?

और मैंने फोन काट दिया।

*****

ब्राह्मण समाज में लग्न का अपना अलग ही महत्व है, रमन के हाथ पर लग्न रखने का समय हो गया था... और शाम के वक्त अक्सर में शोध लेखन में वयस्त रहती थी, फोन की घंटी बजी मित्र का फोन और मैंने तुरंत रिसीव किया-'मोहिनी मेरी इस विवाह में कोई रुचि नहीं है, मैं इस विवाह के लिए भावनात्मक तौर पर तैयार नहीं हो पा रहा हूँ... कुछ समझ नहीं आ रहा जिंदगी किस मोड़ पर जा रही है... समाज के हाथ की कठपुतली बन गया हूँ।"

मैंने रमन से बड़े ही सहज होकर कहा, 'तोड़ दो ये विवाह, उठ जाओ मण्डप से, तुम पढ़े-लिखे हो, सरकारी नौकरी है तुम्हारी, कोई तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ पाएगा, तुम जिस लड़की से प्रेम करते हो, उसी से विवाह करो, कौन है वो लड़की? मुझे नंबर दो उसका मैं बात करती हूँ।' रमन ने लड़की का मुझे न नाम बताया और न ही नंबर दिया।

*****

मेरे कहने पर विवाह तोड़ने की जुर्रत तो की पर बुजदिली से क्योंकि वे शादी तो तोड़ नहीं पाए।

उस लड़की से मित्र ने बात जरूर की।

मित्र ने प्रेमिका से कहा, 'मैं ये शादी तोड़ने को तैयार हूँ, हम सही समय आने पर विवाह कर लेंगे क्योंकि मैं नहीं जानता कि शादी के मंडप से उठूँगा तो न जाने क्या परिस्थितयां बनेंगी... मैं तुमसे तब तक विवाह नहीं कर पाऊँगा, जब तक मेरे छोटे भाई का विवाह नहीं हो जाता, तुम मुझसे विवाह के लिए नहीं कहोगी।'

प्रेमिका ने कहा, 'तुम्हें मुझसे छह महीने के भीतर शादी करनी होगी, अपने माता-पिता या मुझमें से कोई एक चुन लो क्योंकि तुम मुझसे विवाह करोगे तो तुम्हारे माता-पिता आजीवन तुमसे संबंध तोड़ लेंगे और तुम्हारा शुचि से विवाह हुआ तो ये हमारी आखिरी बात होगी, सदा के लिए भूल जाना...।

मित्र ने मुझे यह वस्तुस्थिति बताई तो लगा कि अब इनका विवाह संभव नहीं!

*****

विवाह वेदी पर तो मैं नहीं जा सकी परन्तु कुछ समय पश्चात मित्र की पत्नी से मिली तो लगा कि कितनी सुशील, सुन्दर, संस्कारी कन्या है। शुचि मुझे अत्यधिक अच्छी लगी।

मित्र से मिलना दो-तीन बार ही हो पाया परंतु फोन पर बातचीत हो ही जाती थी, मित्र जब-तब अपनी प्रेमिका का जिक्र किया करते, जिसमें प्रेमिका के लिए सिर्फ प्रेम हुआ करता था। सोचती ये कैसा प्रेम है...?

*****

वक्त ने रफ्तार पकड़ ली, मित्र अपनी गृहस्थी में रमते चले गए, पदोन्नति भी काफी कर ली थी...। मैंने भी पूर्ण लगन व समर्पण भाव से शोध कार्य पूरा कर लिया और लेखन कार्य में मशगूल होने लगी थी।

अंततः वह दिन आ ही गया जब पता चला कि मित्र की प्रेमिका नियति है, नियति ने ही तो उस रात बताया था कि तुम जैसा सोचती हो मोहिनी, रमन वैसा नहीं है...। उस रात काफी गहरी बातें चलीं हमारी, जब नियति ने दिल खोला तो रक्त की नदियां बही और मेरी रूह ऐसे कंपी जैसे धरती हिली हो।

'आरती तुम नहीं जानतीं कि मैं आज भी रमन से कितना प्यार करती हूँ, रमन मेरे घर आया करता था, उसने पारिवारिक उपस्थति के मध्य खुद को सहज बना लिया था, हमारा प्रेम परवान चढ़ने लगा था, साहित्य से लेकर समाज की बातें हम किया करते थे, विवाह करना चाहती थी, उसकी माँ के आगे नौ-नौ आँसू रोई, पर जाति से कमतर होने के कारण मुझे उसके माता-पिता ने कभी स्वीकार नहीं किया। मैंने रमन से कहा, 'हम विवाह कर लेते हैं, तुम्हारी सरकारी नौकरी है, मैं भी शिक्षण संस्थान' की प्रवक्ता हूँ, गृहस्थी को संभाल लेंगे, साहित्य के क्षेत्र में भी हम बेहतर कर सकेंगे, अब तुम्हारे बिन रहा नहीं जाता, शादी कर लो मुझसे। उसने मुझसे कहा, 'मान लो यदि मैं अपने घरवालों के खिलाफ जाकर तुमसे विवाह कर भी लूँ और यदि मुझे उनकी कभी याद आई या

कभी उनकी कमी महसूस हुई तो जिस चेहरे से आज मुझे मोहब्बत है, कहीं ऐसा नहीं हो कि उसी को जिंदगी भर कोसूँ।' वह एक पल को कहती हुई रुकी, जैसे उसने ठंडी साँस बाहर की ओर छोड़ी हो, फिर बोली, 'जाति से दलित होना इतनी बड़ी खाई बन जाएगा, कभी सोच न था...। इसी बीच मेरी माँ गुजर गई, पिता तो पहले ही गुजर चुके थे, मेरा प्रेम भी जाति के तले कुचला गया, रौंदा गया...! किस गलती कि सजा मिली...मुझे? जाति से ब्राह्मण पैदा नहीं हुई या दलित पैदा हुई,या, अपने ही प्रेमी द्वारा ठगी गई...?आखिर क्या गलती थी मेरी...?मेरी छोटी बहन चाहती थी कि मैं जल्द से जल्द विवाह कर लूँ... ताकि वह अपने प्रेमी से विवाह कर सके, लेकिन मेरा अपना प्रेमी किसी और से विवाह कर चुका था, अपनी ही बहन के विवाह की सबसे बड़ी विघ्न बन रही थी, अपनी ही बहन की नजर में, दुश्मन बनी हुई थी मैं...। बड़ी बहन के रहते भारतीय समाज में छोटी बहन का विवाह कैसे संभव है...? मैंने अगुआई की और अपनी छोटी बहन का विवाह, उसके प्रेमी से करा दिया...जानती थी कि प्रेमी से विवाह प्रेमिका की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है...।

बड़े भईया के गले लग रक्त के आँसू रोई थी उस रात...। भईया मैं, जाति के तले रौंदी गई...! हाँ-हाँ भइया, यही है जाति का यथार्थ❑

पृष्ठ सं. 83 का शेष भाग

पड़ गया। वह शंकर के इस व्यवहार को एकदम से समझ ही नहीं पाई और तुरंत पूछ बैठी-'तुम्हारा आशय क्या है? आखिर तुम कहना क्या चाहते हो?'

'मेरे कहने के लिए आखिर तुमने कुछ छोड़ा ही कहाँ है। तुम्हारा यह आज का रिजल्ट तुम्हारी करतूतों का ही परिणाम है। मैं तो उसी दिन समझ गया था कि दाल में कुछ काला है, जब तुम्हारे उस सो कॉल्ड गुरु का फोन आया था। फोन रखने के बाद मेरे पूछने पर तुमने सिर्फ और सिर्फ इतना ही बताया कि देशबंधु कॉलेज में स्थायी नियुक्ति की रिक्तियाँ हैं लेकिन यह नहीं बताया कि यह नियुक्ति तुम्हें किस कीमत पर मिलने वाली है। बार-बार तुम्हारे गुरु का तुम्हें फोन करना मुझे कभी न भाया किंतु मैंने तुम्हें कुछ नहीं कहा। लेकिन कब तक ना कहता, आज बोलना ही पड़ा।'

शंकर धाराप्रवाह इतना कुछ बोल गया जिसकी कल्पना तक कर पाना अपर्णा के लिए मुश्किल था। यह सब सुनकर वह स्तब्ध रह गई। उसके कान उस समय जो कुछ सुन पा रहे थे, वह किसी दुर्घटना से कम नहीं था।

दुर्घटनाएं केवल सड़कों पर ही नहीं होती। केवल शरीर को ही नुकसान नहीं पहुँचाती बल्कि घर की चारदीवारी में होने वाली ऐसी घटनाएं शरीर को भेदकर अन्तर्मन तक को छलनी कर देती हैं।

अपर्णा के मुँह से निकलने वाले शब्दों में पीड़ा अवश्य थी किंतु उनमें क्रोध लेशमात्र भी ना था। उसने शंकर से कहा-'शंकर, मुझे तुम्हारी सोच पर बिल्कुल भी क्रोध नहीं है, बल्कि पीड़ा है... अपने प्रेम से बिछड़ जाने की। क्योंकि सर्वप्रथम तुमने प्रेम को कुरूपता प्रदान की और उसके बाद उसकी निर्मम हत्या भी कर दी। मैं यह भी जानती हूँ कि इस लाश की अंत्येष्टि का भार भी मेरे ही ऊपर है। समाज में अग्नि परीक्षाओं का भार भी स्त्रियों के ही जिम्मे आता है किंतु मैं तुम्हें स्पष्ट कर देना चाहती हूँ कि ना तो मैं सीता हूँ और ना ही उसका अनुसरण करने वाली समाज की अन्य औरत।'वह एक पल को रुकी, उसने चढ़ाई अपनी साँसों को संयमित किया और बोली, 'वहीं दूसरी ओर राम तो तुम भी नहीं हो जो मुझसे मेरी पवित्रता का सबूत माँगो। और अगर राम होते भी, तो आज मैं और मेरा चरित्र, तुम्हारी सोच का मोहताज नहीं हैं आज मेरे लिए तुम केवल और केवल हत्यारे हो। हम दोनों के प्रेम और विश्वास को मार चुके हो तुम। तुम्हारा सानिध्य अब मेरे बर्दाश्त के बाहर है। तुमको यहाँ से चले जाना चाहिए।' इतना कहकर अपर्णा अपने कमरे में चली गई।

नीला काकी इस पूरे दृश्य की साक्षी थी। वह तुरंत अपर्णा के पीछे-पीछे उसके कमरे की ओर भागी। शंकर को अपनी विवेकहीनता का आभास हो चला था। ईर्ष्या उसके शरीर से आत्मन की भाँति सब कुछ अपने अंदर समेटकर वहाँ से प्रस्थान कर चुकी थी। यह वह समय था जब शंकर के सामने सारे विकल्प समाप्त हो चुके थे मात्र वापस लौट जाने के अलावा।

हाँ! उसके साथ कोई था तो केवल पश्चाताप की झुलसन...।❑

डिजिटल में पढ़ना; सहज व सुविधाजनक है

मदमस्त

डॉ. तपस्या चौहान
मो. 9027272508

बड़ा सुकून महसूस होता है संडे को। रोज की तरह न कोई जल्दबाजी न कोई भाग दौड़–लेकिन इतवार का दिन भंगियों की बस्ती के लिए खास होता क्योंकि इस दिन सुअर मारकर उसकी आंसी (सुअर की मीट) सभी के द्वारा खरीदी जाती है। सुबह-सुबह सभी बस्ती के लोग उठ गये, क्योंकि आज सूरज का माड़ा भी है। एक बड़े सुअर को मारने के लिए सबसे पहले उसे पकड़ने की प्रक्रिया शुरू हुई। सूरज ने जैसे ही अपनी खुड़ी (सुअर को रखने का स्थान) खोली सुअर भीड़ देख अपनी जान बचाने के लिए भागा और उसके पीछे दस बारह लोगों का एक झुण्ड जिसमें बच्चे भी शामिल थे उस सुअर को पकड़ने के लिए दौड़े। यदि सुअर दौड़ते-दौड़ते सवर्णों की कॉलोनियों में घुस जाता तो सभी सवर्णों के गेट बंद हो जाते और नाक-भौंह सिकोड़कर मुँह को चुन्नी और साड़ी के पल्लुओं से ढकते हुए सवर्ण महिलाएं अपने बच्चों का हाथ पकड़कर धकियाते हुए घर के अंदर ले जातीं। क्योंकि उनके लिए यह बड़ा घृणित और हिंसक कार्य है, लेकिन बस्ती के लोगों के लिए आज तो जश्न का दिन है। इस जश्न में बच्चे, बूढ़े, युवक, युवतियां सभी मदमस्त होने वाले थे। उनके लिए तो सुअर स्वादिष्ट भोजन की वह व्यवस्था है जो पिछले दो वर्षों से खिला-पिला कर बड़ी की जा रही थी। आज वह दिन आ ही गया जब उसे जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए खिलाया-पिलाया जा रहा था, उसे पूरा किया जा सके। उसी को अंजाम देने के लिए सुअर के पीछे वह झुण्ड अठखेलियाँ करते हल्ला मचाते हुए दौड़ रहा था। सुअर दौड़ते-दौड़ते बस्ती में बरसात आने से एकत्र हुए मल-मूत्र और नालियों के पानी पर धूप पड़ने से कीचड़ में तब्दील हुए उस स्थान पर से जैसे ही गुजरा तो वह लगभग आधे शरीर तक कीचड़ से लथपथ हो गया। कीचड़ में दौड़ते हुए खुरों से कीचड़ इधर-उधर छिटकती हुई उसके शिकार के लिए दौड़ रहे झुंड पर भी जा गिरी, पर इन सब बातों से बेफिक्र वे बेधड़क कीचड़ में से ही इस तरह निकलते जा रहे थे। जैसे कि कोई फूलों की पंखुड़ियां बिछी हों। उन लोगों के लिए यह जीवन का एक अंग है जो कि सवर्णों के लिए एक घृणित क्रियाकर्म। सवर्णों के लिए तो सुअर का जान बचाकर भागना और झुण्ड का उसके शिकार के लिए दौड़ना एक वीभत्स दृश्य उत्पन्न कर देता है। इस

प्रकार की घटनाओं से वे अपने घरों के दरवाजे व खिड़कियाँ बंद करके मुक्ति तो पा लेते लेकिन हद तो तब हुई जब सुअर ने उनके घर के आंगन में घुसकर कीचड़ के पैरों की छाप छोड़ने के साथ-साथ दीवारों को भी सान दिया। सुअर के साथ-साथ वह झुण्ड भी उस घर में घुसकर उसे पकड़ने का प्रयत्न करने लगा। भोलू ने कलुआ, बालों, खुन्ना और लाखन को घर के मुख्य दरवाजे पर कुछ तगड़े लड़कों के साथ ऐसे खड़ा किया कि जब सुअर बाहर भागने की कोशिश करे तो तुरंत उसे दबोचा जा सके और स्वयं के साथ चार लड़के लेकर उस घर के भीतर जाकर उसे चारों तरफ से घेर लिया। जैसे ही सुअर ने दाँयी ओर से निकलने की कोशिश की तो बांयी ओर खड़ा भोलू कलुए को निर्देशित करते हुए कहता है, 'अबे! पकड-पकड़-पकड़ जल्दी.. जल्दी..... भोस... के।' तभी सुअर भोलू की मंशा देखकर पीछे खड़े लाखन की तरफ से अचानक फुर्ती के साथ भागकर निकल गया। जैसे ही वह लाखन की तरफ से निकलकर गया तो लाखन उस पर झपटा और तेजी से उसकी पीठ पर उछलकर अगले पैर को पकड़कर गिराना चाहा लेकिन सुअर ने पूरी ताकत लगायी और पैर छुड़वाकर भागा। लाखन उसकी पीठ से फिसलता हुआ नीचे गिर पड़ा और उसका हाथ सुअर के खुरों से घायल हो गया। वह घायल हाथ को ऊपर-नीचे हिलाकर बोला, 'भैन का..., माद..., में बड़ी ताकत है। बचकर भाग गया।' जैसे ही सुअर मुख्य दरवाजे की ओर भागा, बिहारी ने रस्सी का फंदा बालो को लपका दिया। बिहारी को देखकर वह बोला, 'अबे भैये। बिहारी भाई आ गए। क्या बिहारी भाई। इतनी देर में आए हो। भैन के..... सुअर ने हमारी माँ-भैन. .... रखी है। चलो जल्दी।' बिहारी ने हँसते हुए गुटके की पीक से भरे मुँह से बोलने का प्रयास करते हुए कहा, 'भैन के..... तुमसे एक सुअर नई पकड़ा जा रा ऐ। चलो जल्दी।' सुअर हाँफता हुआ सड़क पर आ गया, वह झुंड भी उसके पीछे दौड़ रहा था। बिहारी नंगे पैर साफी कमर से बांधे तेजी के साथ बालों के हाथ से फंदा लेकर थोड़ा आगे की ओर झुकते हुए तेज कदमों के साथ सुअर के पीछे-पीछे दौड़ता चला जा रहा था। सुअर दौड़ते-दौड़ते नाले की पुलिया के नीचे घुस गया। सुअर जोर-जोर से चिंचिया रहा था। मानो उनसे भयाक्रांत होकर प्राणों की भीख माँग रहा हो। पुलिया के नीचे से निकालने के लिए उसमें एक ओर से नाले के पुस्ते पर खड़े होकर डंडे कौंचे जैसे ही वह डंडे के प्रहार से बचने के लिए पुलिया के दूसरी तरफ आया, वहीं घात लगाये बिहारी ने उसके गले में फंदा डाला लेकिन फंदा पूरी तरह से सुअर के गले में न डलकर केवल उसकी थूथड़ी में अटक गया बालो ने आगे बढ़कर रस्सी जोर से पकड़कर खींच दी जो केवल सुअर के ऊपर जबड़े को कस पाई। सुअर जोर-जोर से चें...चें...चें करते हुए चिंचिया रहा था और नाले से बाहर निकलने की कोशिश करने लगा। तभी लाखन और भोलू नाले में उतर गये। नाला कूड़े व मल-मूत्र से ठसा पड़ा था क्योंकि उसकी गहरायी ज्यादा न थी। वे दोनों सुअर के पिछले पैरों को रस्सी से बांधकर ऊपर की ओर धक्का देने लगे। सुअर भी अपने आगे के पैरों को नाले के पुस्ते पर जोर से गढ़ाकर पिछले पैरों को ऊपर की ओर लाने का प्रयास करता रहा। बिहारी और बालो के साथ चार-पाँच लड़के सुअर के मुँह की रस्सी और कान पकड़कर उसे अपनी ओर खींचने लगे। बार-बार प्रयत्न करने पर भी सुअर के न निकल पाने पर कुछ लड़के लाखन और भोलू की मदद के लिए नाले में उतर गये। नाले के अंदर से वे सुअर को ऊपर धक्का दे रहे थे, बिहारी और बालो के साथ लड़के उसे रस्सी से ऊपर अपनी ओर खींच रहे थे सुअर भी पूरी ताकत से जुटा हुआ था बाहर निकलने को। तभी बिहारी ने अपने कुल देवता का नाम लेते हुए जोर से बोला, 'बोल बुलाकी बाबा की।' सभी ने ऊँचे स्वर में सुअर को ऊपर की ओर धकियाते और सामने से रस्सी से खींचते हुए युवाओं के साथ-साथ आस-पास खड़े बच्चों और लोगों ने बोला, 'जैऽऽ। सुअर आखिरकर बाहर निकाल लिया गया। इससे पहले कोई कुछ समझ पाता सुअर फिर से भाग निकला। दोबारा पूरा झूण्ड गालियाँ बकते हुए पीछे भागने लगा। लगभग पैंतालीस मिनट बीत चुके थे, वे लोग और सुअर दोनों थक चुके थे, लेकिन हौसला किसी ने छोड़ा। भोलू के लड़के सूरज ने सुअर के जबड़े में बँधी रस्सी का जमीन पर खींचते हुए सिरे को पकड़ कर अपनी ओर खींचा। रस्सी पर कीचड़ लगे होने के कारण वह उसके हाथों से खिसकने लगी तभी उसने भागते हुए उस रस्सी के अपने हाथ में दो अंटे दे दिये। उस रस्सी को दोनों हाथों से पकड़कर जोर से अपनी ओर खींचने लगा जिससे सुअर के दौड़ने की रफ्तार में थोड़ी कमी आयी। बिहारी पूरी ताकत से दौडने लगा दौड़ते-दौड़ते उसका शरीर पसीनों से लथपथ था। हाथ-पैरों पर मिट्टी और कीचड़ से सने हुए उसके काले शरीर पर गौर से देखने पर दिख रही थी। लाल-लाल बड़ी आंखों में सुअर और मानव के इस युद्ध में सुअर को मार गिराने की लालसा साफ झलक रही थी। इस वक्त उसका दिल,

दिमाग और शरीर एकाग्र होकर सुअर के शिकार की तरफ पूरी तरह से लगा हुआ था। उसने अपनी रफ्तार और तेज कर ली और सुअर के बराबर आ पहुँचा उसी के पीछे भोलू और कलुआ सुअर के दूसरी तरफ बगल में दौड़ने लगे।

भोलू-(दौड़ते हुए सुअर से) 'रुक भोस... के। कलुआ भाई तुम पिछल्ला पैर पकड़ना। मैं अगल्ला।'

कलुआ-(दौड़ते हुए) 'अबे। पकड़-पकड़...'

बिहारी ने तेज कदमों से दौड़ते हुए उस सुअर को पिछली टांग के खुर के ऊपर वाले हिस्से की ओर से पकड़ा। इसी के साथ सुअर को दूसरी तरफ से इस तरह खींचा कि सुअर का संतुलन बिगड़ने लगा। बिगड़ते संतुलन को देख दौड़ते हुए लाखन ने बिहारी की तरफ वाली सुअर की अगली टांग को पकड़कर थोड़ा ऊंचा उठा लिया जिससे सुअर का संतुलन बिगड़ गया और वह जमीन पर गिर गया। उसके गिरते ही इन सभी ने गिरे हुए सुअर के ऊपर घुटने गड़ा दिये। सुअर के चिंचियाने के कर्णभेदी स्वर में इन सभी के हंसी के ठहाके उस दावत का संकेत दे रहे थे, जो उसकी मीट के रूप में कटोरियों में परोसी जाती। सुअर के चिंचियाने की आवाज को कम करने के लिए उसके दोनों जबड़ों को आपस में जोड़कर सुतली से बाँध दिया गया। दो लोगों ने उसके मुँह को दबोच कर रखा था। बिहारी, कलुआ, भोलू, बालो और सूरज अपने एक हाथ से सुअर का पैर और दूसरा हाथ व घुटना सुअर के ऊपर गड़ाये थे। अपने दूसरे घुटने को जमीन पर टेककर सुअर को पूरी ताकत से दबोचे हुए थे। तभी बिहारी ने खुन्ना की ओर इशारा, सुअर के पैर, बाँधने के लिए किया। खुन्ना ने सुतली से सुअर के एक आगे और दूसरा पीछे का पैर मिलाकर बाँध दिये और सभी लोगों ने मिलकर उस अस्सी किलो के सुअर को एक मजबूत लाठी पर टांग लिया, लाठी सुअर के बंधे पैरों के बीच से होकर गुजर रही थी। इस प्रकार लाठी से बंधे सुअर को कंधे पर लटकाकर, हंसी ठिठोली करते हुए उन्होंने बस्ती में ऐसे प्रवेश किया मानो कोई विजय जश्न हो। उसे बस्ती में ले जाकर चौक में पटक दिया। सुअर के मुँह की रस्सी खोलते ही, उसकी चेंऽऽ चेंऽऽ की आवाज ने पूरी बस्ती को इकट्ठा कर लिया। खुन्ना ने हीकने (लम्बा सुएँ जैसा पैना हथियार) से उसके अगले पैर का बगल वाला हिस्सा जो उसके पेट, गर्दन और पैर को आपस में जोड़ता है, उस नाजुक जगह पर घोंप कर उसकी गर्दन तक पहुँच कर सुअर के टेंटुए को तोड़ दिया गया, जिससे सांस न लेने के कारण वह जोर-जोर से छटपटाने लगा। छटपटाहट के साथ ही उसके खून को जमीन पर गिरने से पहले ही एक बड़े बर्तन में इकट्ठा करने लगे। धीरे-धीरे छटपटाहट सुअर के शांत होने के साथ कम हो गई और चिंचयाने का स्वर भी धीमा पड़ता गया। अब सुअर इस जीवन संघर्ष को हार चुका था। यह प्रहार इतनी जोर से होता है कि एक ही प्रहार में सुअर के प्राण पखेरू उड़ जाए। अब बारी आती है सुअर के बाल उखाड़ने की। चार-पाँच लोग सुअर के बाल उखाड़ते हैं! कुछ लोग फूँस लाकर उस सुअर को भूनने की तैयारी करने लगे। सूअर के शरीर को फूँस से भूना जाता तो उसके धुएँ की दुर्गंध दूर तक जाती जिससे सभी को पता चल जाता कि आज फिर से...। धुएँ की दुर्गंध उन सभी के लिए जानी पहचानी है। सुअर भुन गया तो उसे काटने की प्रक्रिया चली। उसे काटने के लिए बड़े-बड़े छुरे और बांक (चौपर) का इस्तेमाल हुआ। सभी ने पहले उसकी मोटी चर्बीयुक्त चमड़ी हटाई, उसी के इंतजार में छोटे बच्चे, सूरज के चालीस गज के मकान की भीतर गोटे और चमकीली कढ़ी-साड़ी पहने घर व पड़ोस की महिलाएं तिक्कों का इंतजार कर रही थीं। बड़ी-बजुर्ग महिलाएं सीधे पल्लू की साड़ी पहनें घूंघट में नीचे पटने पर बैठी नवविवाहित बहुओं को तमीज सीखने के भाषण लगातार दे रही थीं और वे बेजुबान बिना किसी अपराध किये अपराधियों की तरह बेबस-सी चुपचाप बैठीं थीं। कुछ प्रौढ़ औरतें घूंघट में से ही हाथ से बच्चों को इशारा कर तिक्के लाने का इशारा करती तो बच्चे दौड़कर खुन्ना ताऊ के पास जाते तो तिक्कों के ढेर से एक तिक्का उस बच्चे को मिल जाता, लेकिन बच्चे भी बड़े उस्ताद हैं मां के लाख इशारे करने पर भी तिक्के नहीं लाते क्योंकि उन्हें आज पूरी आजादी थी अपनी मां की बात न मानने की। उन बच्चों को पता था कि उनकी मां बाहर नहीं आ सकती है।

थोड़ी देर में लाखन परात भरके तिक्के औरतों के लिए ले आया और सूरज की बुआ के आगे जमीन पर रख दिये। तख्त पर बैठी अस्सी किलों की बुआ ने अपने भारी-भरकम शरीर को जमीन पर रखे तिक्कों की परात के सामने बमुश्किल रखा और कहने लगी, 'अरी! औ! भोलू की लुगाई... कां गई– जे ले दारी, तिक्के खा। आये इत्ते-इत्ते तिक्के खा जाबे... तोऊ सुसरी सूख कै खपरिया है रईए।' ऐसे ही उसने हर एक औरत को चार बातें सुनाकर यह खाद्य बांटा। गजब की बात तो ये थी कि किसी ने बुआ की बात का बुरा नहीं माना क्योंकि यह सभी के

लिए अपनत्व का माहौल उत्पन्न कर रहा था। घर के बाहर और भीतर तिक्कों के नाश्ते के बाद अब सुअर को काटकर उसके गुर्दा, कलेजी और फेफड़े अलग कर दिये गये। पतीले में एकत्र किये सुअर के खून में गुर्दा, कलेजी और फेफडे के छोटे-छोटे टुकड़े काटकर एक बड़े कड़ाह में सरसों का तेल गर्म करके उस तेल में प्याज, , लहसुन, हरी मिर्च आदि उसमें डाल दिये। आग के ऊपर कड़ाह रखे होने से उसके पकने वाली सामग्री की सुंगध वहां बैठे लोगों के मुंह में पानी भर दे रही थी लेकिन कुछ दूरी पर सवर्ण लोगों का दम इस कड़ाह से निकलने वाली दुर्गंध से घुटा जा रहा था। उन सवर्णो की प्रत्येक प्रतिक्रिया से बेपरवाह उन लोगों में जश्न शुरू हो चुका था। किशोरों ने दोपहर के समय चार टेबल मिलाकर उसके ऊपर बड़े-बड़े स्पीकर और म्यूजिक सिस्टम ऐसे रख दिया जैसे वह किसी पेशेवर डी.जे. हो। खैर, जो भी हो अब किशोरों ने बस्ती में रहने वाली युवतियों की ओर इशारा करते हुए अपनी-अपनी पसंद के गाने बजाने लगे। गानों की ध्वनि उतनी तेज कि अन्य लोगों का बात तक करना मुश्किल हो रहा था लेकिन वे किशोर तो अपनी नव-प्रेमलीलाओं के सरोबर में जैसे डूब रहे थे और खुशी से सलेऊ बाल्टी में भरकर चम्मच की मदद से जमीन पर पंक्तिबद्ध बैठे बच्चों और बूढ़ों, सभी के आगे रखी सरैया में गर्मागर्म भाप निकलता सलेऊ परोसते और उसी के पीछे दूसरा किशोर तंदूर की मोटी बड़ी रोटी बांटता चलता। बड़ा उत्साह है परोसने और खाने वालों में। जमीन पर पंक्तिबद्ध उकड़ू बैठे लोग इस समय वैसे ही आनंद का अनुभव कर रहे हैं जैसा फाइव स्टार में बैठा बड़ा व्यवसायी ए.सी. के सामने टेबल कुर्सी पर बैठे कॉफी की चुस्कियों से करता है। रोजमर्रा की जिंदगी में मेहनत मजदूरी, तिरस्कार और गालियों से दूर जश्न का समय बड़ा ही सुकून देता है। दुनिया की नजर में इस जश्न की भले ही कोई औकात न हो, लेकिन ये तो उनकी खुद की अमीरी है जो वे स्वयं ही महसूस करते हैं, न किसी के लिए घृणा, न द्वेष और न ही हीनभावना, अगर इन लोगों के पास कुछ है, तो निजी खुशी, जो बाहरी दुनिया की सोच और समझ से बिल्कुल परे है।

शाम के वक्त टैंट के अंदर और सूरज के घर-आंगन-छत सभी जगह लोगों की भीड़ एकत्रित हो चुकी थी। दिन छिपते ही बल्बों से रोशनी की जगमगाहट में कुर्सी टेबल दावत के लिए सज गई और उसके ऊपर बच्चों में बैठने की होड़ शुरू हो गई। सबसे पहले बच्चों को सुअर का मीट मिट्टी से बनी सरैया में परोसा गया और बच्चों ने मिर्ची का आनंद लेते हुए तंदूर की रोटी जो उनके छोटे हाथों से बाहर लटकी थी। रोटी बड़ी और गर्म होने की वजह से कुछ बच्चे लकड़ी की टेबल के ऊपर ही रखकर खाने लगे। देखने में यह दावत असभ्य थी लेकिन असल में यही तो असलियत है भूख और गरीबी की। न पंखा, न बड़ा होटल, न रेस्तरां और न ही बैंकट हॉल... फिर भी खाने का भरपूर मजा उन बच्चों में दिखा। टेंट के पीछे फेंकी जाने वाली हड्डियों को खाने के लिए कुत्तों का झुंड लड़ते-लड़ते नाले में गिर गया और बाहर निकल कर चल रही दावत में जा घुसा। सूरज ने उसे भगाने के लिए लड़कों की ओर इशारा करते हुए कहा, 'ओ। लौण्डौं! अबे! जे साले कुत्ते घुसियाए है, भगा जिनै।' इतना कहते ही लड़कों ने उन कुत्तों को भगाने का प्रयास किया, तभी एक कुत्ता भागते हुए कड़ाह में जा गिरा जिसे वहां खड़े तीन-चार युवकों ने फुर्ती से निकाल दिया और वे चारों जोर-जोर से हंसने लगे। वह आपस में इसी घटना के बारे में बातचीत करने लगे-पहला युवक-'अबै। किसी को बतड्यो मति कि कुत्ता कढ़ाह में गिर गया ता।'

दूसरा युवक- 'पागल है क्या। मैं काय को बताऊंगा।'

तीसरा युवक- 'अबे पांत तो निपट गई, बस कुछ लोग बचे हैं, बता दिया तो दुबारा गोस (सुअर का मीट) का से लांगे।'

चौथा युवक-'अबे! कुछ नहीं होता। देखा नई होता तो कुत्ते को कढ़ाह में गिरते तो भी तो सब खाते। किसी गरीब का पिलोगनाम (प्रोग्राम) खराब मति न करो। किसी को नेछु मति बताओ। हां। भाई की बात मानों।'

सभी ने सहमति जताई और दावत यूं ही चलती रही। सूरज के घर के सामने नाला था जिसके आगे टेंट लगाकर दावत चल रही थी उसी टैंट के पीछे नाले के पुश्ते पर कुछ लोग चुपचाप शराब भी पी रहे थे। वे सभी अपने बड़ों से छिपकर शराब पी रहे थे तो जो उनके बड़े थे, वे चारपाई पर चद्दर बिछाकर बैठे थे, उनके सामने टेबल पर स्टील के गिलास, शराब की बोतल और प्लेट में सलेऊ, तिक्के और भुना हुआ सुअर का मीट रखा था। वे एक-एक करके सम्मानपूर्वक एक-दूसरे के लिए पैग बनाते और समाज उत्थान जैसे विषय पर गहन चिंतन-मनन करने लगे। तभी गानों की धुन पर कुछ युवक नाचने लगे। उन्हीं के साथ दूसरी बस्ती के युवक भी उसी गाने पर नाचने लगे। दोनों पक्षों में डांस व स्टेप्स की बहस छिड़ गई। तभी एक युवक ने दूसरे पक्ष पर टिप्पणी करते हुए

कहा- 'अबे! मीठे मर्दों वाला नाच।' इसी बात को प्रतिष्ठा पर लेकर दोनों पक्षों में झगड़ा शुरू हो गया। गाली-गलौज अब मार-पीट पर आने लगी तभी सामने बैठे बुजुर्गों ने दोनों पक्षों को समझाया और मामला रफा-दफा किया। खाना खाते खिलाते लगभग रात के साढ़े ग्यारह बज गये। लोगों में टेबल कुर्सी पर बैठकर खाया और कुछ लोगों को जब मीट के कड़ाह से आने वाली खुशबू ने इतना बेबस कर दिया कि उन्होंने जमीन पर उकड़ू बैठकर वहीं लाइन से खाना शुरू कर दिया। खाना खाने के बाद अपनी सरैयों में मीट और रोटी डलवाकर सुबह के लिए हाथ में उठाकर घर ले जाते लोगों को सर्वर्ण ऐसे देख रहे थे जैसे कि वे कोई पाप कर रहे हों। दूसरे क्या सोचेंगे? इस सोच से परे बस्ती के लोग एक-एक रोटी अपने हाथों में लेकर जा रहे थे ताकि अगली सुबह वे इसी स्वादिष्ट रोटी और मीट का आनंद ले सकें।

दावत लगभग निपट चुकी थी। रिश्तेदार और बस्ती के लगभग सभी लोग अपने-अपने घरों में जा चुके थे। सूरज और सूरज के छह-सात दोस्त दावत के कढ़ाहों और इधर-उधर आधी पूरी बची हुई रोटियों को बटोर कर एक टूटे कनस्टर में इकट्ठा करते जाते ताकि वे दूसरे सुअरों को खिला पायें। अभी वे सुअर छोटे हैं, जब वे बड़े हो जायेंगे तो उन्हें या तो बेच दिया जायेगा या फिर इसी तरह दावत में प्रयोग किया जायेगा। खैर फिलहाल सूरज और उसके दोस्तों ने साथ बैठकर खुशी में शराब पी और फिर बड़े-बड़े स्पीकर्स पर जोर-जोर से गाने बजा दिए जिसे सुनकर बस्ती और सूरज के घर के लोग बाहर निकल आए। गाने की धुन पर सूरज और उसके दोस्तों को थिरकते देख बस्ती के कुछ बुजुर्ग भी नाचने लगे। सभी स्त्रियां घूंघट को हाथों के सहारे से थोड़ा-सा ऊपर उठाकर नाचने वालों को देख रही थीं। उनके पैर भी इन फिल्मी गानों की धुनों पर थिरकने को बेचैन थे, जैसे ही सूरज ने बस्ती की एक महिला का हाथ पकड़ कर नाचने के लिए मैदान में लाया मानो उसकी मुराद पूरी हो गई हो, उसके साथ अन्य महिलाएं भी नाचने लगीं। उफ्फ! ये बेफिक्री! बड़ी महंगी है। ये इतनी आसानी से नहीं मिलती। जश्न की रात है, और बस्ती के लोग मदमस्त हो समाज की व्यवस्था और बनावटीपन से दूर सीमित साधनों में उस सुकून को महसूस कर रहे हैं, जो कहीं नहीं बिकता। लोगों की नजर में बेशक ये असभ्य हैं लेकिन प्रश्न ये है कि सभ्यता की आखिरकार असली पहचान क्या है? क्या सच में वह विकसित हो चुकी है या फिर जिस तरह बस्ती के लोग मिलकर उस जानवर को अपनी दावत बनायें थे, ठीक वैसे ही बस्ती के लोगों तथाकथित समाज के लोगों ने तिरस्कृत और अधिकार विहीन कर डाला है। छटपटाहटी जिंदगी के लिए संघर्ष चाहे जानवर का हो या फिर इंसानी भावनाओं की अस्मिता का। अरे! उसे समझना ही सभ्यता हो सकती है, लेकिन अभी तक सभ्य समाज की परिभाषा समझ नहीं सकी हूं। शायद कुछ समय बाद समझ सकूं।❑

कुछ याद इन्हें भी कर लो...

चौदहवी सदी में महाराष्ट्र से 'संत सोयराबाई कहती है

'देह तो सभी की एक जैसी मांस और रक्त की बनी है, फिर कौन पवित्र है और कौन अपवित्र? इस जगत में शुद्धि और अशुद्धि केवल मन का वहम है। जब ब्रह्मा ने ही सबको बनाया, तो भेदभाव की दीवारें क्यों?'

बारहवीं सदी में कर्नाटक से संत अक्का महादेवी कहती है

'लज्जा क्या है? जब प्रभु का प्रकाश तुम्हारे चारों ओर हो। तुम कहते हो कि स्त्री को पर्दा करना चाहिए, पर जब आत्मा नग्न होकर परमात्मा से मिल रही हो, तब इन चिथड़ों (कपड़ों) की जरूरत किसे है? हे मल्लिकार्जुन! क्या तुम शरीर देखते हो या मन की गहराई?'

तेरहवी सदी में महाराष्ट्र से संत जनाबाई कहती है

'मेरा विठ्ठल तो मेरे साथ गोबर उठाता है, वह मेरे साथ झाड़ू लगाता है और पानी भरता है। वह महान देव अब मेरा सेवक बन गया है, भक्ति के वश में होकर वह जाति और पद सब भूल गया है।'

वे गुरु हैं हमारे

डॉ. धनेश्वरी गोस्वामी
मो. 7297004868

बड़ी मुश्किल से ग्यारहवीं कक्षा में एडमिशन हो पाया है। ग्यारहवीं में एडमिशन कोई मुश्किल काम तो नहीं है परंतु जब बात संस्कृत मीडियम स्कूल की हो तो किसी भी दलित छात्र-छात्रा के लिए थोड़ा मुश्किल हो जाता है। बड़ी मुश्किल से प्रधानाचार्य एडमिशन के लिए राजी हुए। उनका कहना था संस्कृत ही पढ़ना है तो हिंदी मीडियम से ही पढ़ लो। कनिष्ठ उपाध्याय की क्या आवश्यकता है? चेतना के पिता की जिद्द थी कि वह कनिष्ठ उपाध्याय की ही छात्र बने।

दाखिला तो हो गया पर चेतना को वहाँ का माहौल रास नहीं आया। कक्षा में सभी सवर्ण छात्र-छात्राओं के बीच एकमात्र दलित छात्र। उनकी बातें अलग थी जैसे 'आज कहाँ जीमने जाना है', 'फलाँ मंदिर में रोज का कितना चढ़ावा आता है', 'नया मंदिर कहाँ बना' और 'उसकी पण्डिताई किसको मिलने वाली है।' यह बातें सुनकर और पैसा कमाने के इस रंग-ढंग पर उसे बहुत आश्चर्य होता।

उसके आश्चर्य की सीमा तो तब पार कर गई जब उसने नवीं कक्षा में पढ़ने वाले प्रदीप चतुर्वेदी के बारे में सुना, सहपाठी सोमेश्वर बता रहा था, 'शनिवार को शनि महाराज के नाम पर तेल लेने जाता है। केतली हाथ में थी, आधी भरी। पूछने पर बताया, कभी-कभी आ जाता हूँ, जब जरूरत होती है।'

चेतना बोली, 'उसके माँ-बाप मना नहीं करते।' तब सोमेश्वर ने बताया, 'गाँव का है, यहाँ कमरा लेकर रहता है, दो और लड़के साथ रहते हैं।'

चेतना ने पूछा, 'पर... ये कैसी जरूरत, जो तेल माँगने पर ही पूरी होती है? ट्यूशन भी ले सकता है।'

'ट्यूशन!' सोमेश्वर ने जोर का ठहाका लगाते हुए कहा, 'अरे! जब पकौड़े तलने के लिए केतली भर तेल मिल जाए तो कोई क्यों बेवजह परेशान हो।'

'पकौड़े!' चौंकने के साथ ही चेतना की आँखें फटी की फटी रह गई।

चेतना के लिए यह सभी बातें बेहद अजीबोगरीब थी। आए-दिन ऐसे कई किस्से कक्षा के साथी एक-दूसरे को सुनाते रहते। सुनकर सभी ठहाका मारकर हँसते। चेतना की हँसी नहीं निकल पाती, एक सहपाठी ने पूछा, 'अरे! हँसती क्यों नहीं है, मुँह में दही जम गई

है क्या?' उसकी बात अभी खत्म भी नहीं हुई थी कि दूसरे ने तौंड मार दिया, 'वैसे तो खूब तर्क करती है, सिर्फ हँसना ही नहीं सीखा।'

ऐसी बेसिर-पैर की बातों का चेतना क्या जवाब देती? जिस समाज से वह है, वहाँ तेल माँगने की या जीमने जाने की परंपरा कभी रही नहीं। उसने तो अपने आस-पास के लोगों को दिनभर हाड़तोड़ मेहनत करते देखा है, तब जाकर रात की रोटी नसीब हो पाती है। पर यहाँ तो आए-दिन जजमान के यहाँ से न्योते आते हैं। कभी-कभी तो कक्षा के सभी छात्र भी कम पड़ जाते हैं तो अगली-पिछली कक्षा के अपने दोस्तों को मिलाकर संख्या पूरी की जाती है, कभी ग्यारह, कभी इक्कीस तो कभी इक्यावन। न जाने कब से यह संख्याएँ मंगल की पहचान बन गई।

संस्कृत मीडियम विद्यालय में छोटी कक्षा से ही संस्कृत का ज्ञान करवा दिया जाता है। वैसे इसे विद्यालय कम पण्डिताई की शिक्षा व्यवस्था जरूर कह देना चाहिए। छोटी कक्षा से ही बच्चों को पाठ्यपुस्तकों के ज्ञान के साथ समय-समय पर पण्डिताई का ज्ञान भी दिया जाता रहा है। किसी भी मंगल आयोजन पर पण्डित को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, इसकी बारीकियाँ कण्ठस्थ करवा दी जाती हैं।

चेतना सोमेश्वर से कह रही थी कि 'कितने बुद्धिमान हैं, उसके सहपाठी। इतने मेहनती कि कक्षा की पढ़ाई के साथ-साथ पण्डिताई की सारी नॉलेज भी है इन्हें। पूजा-पाठ के सारे श्लोक कठस्थ हैं। अद्‌भुत!'

चेतना को आश्चर्य करते देख सोमेश्वर पाण्डे ने कहा, 'अरे यार! इतना आश्चर्यचकित होने की जरूरत नहीं है, सुबह-शाम घर में यही सब सुनते हैं, जिस तरह से फिल्मी गाने जुबान पर चढ़ जाते हैं, उसी तरह हमें भी यह चीजें रट गई हैं। अर्थ पूछोगी तो मेरा कोई साथी नहीं बता पायेगा।'

'अगर कहीं अटक गये तो?'

'अरे! दो दिन पहले की बात है, किसी ने जीमने बुलाया, पूरे इक्यावन छात्रों को, अब तुरंत इक्यावन छात्रों का बंदोबस्त कैसे करता?'

'क्यों? हमारी क्लास में तो पचपन बच्चे हैं।' चेतना ने कहा।

'अरे! लडकियाँ नहीं जिमती, सिर्फ लड़के जाते हैं।'

'लेकिन नवरात्रि आदि में तो कन्या जिमाती हैं, फिर?' चेतना का प्रश्न सुनकर सोमेश्वर बोला, 'तुम्हारी बातों में, मैं मुख्य बात यह भूल जाऊँगा। मैं कह रहा था, तुरंत इक्यावन छात्रों को ले जाना था, जजमान के यहाँ। संख्या पूरी होने में दो कम पड़ रहे थे इसलिए सुरेश खटिक और उसके भाई को भी ले गया। पहली बार देखा था उन्होंने यह सब।' कहते हुए उसके चेहरे पर परोपकार वाला भाव आ गया। 'उन लोगों को हमारी वाली ट्रिक समझा दी थी कि बुदबुदाते रहना, जब जजमान पास आये तो बेझिझक जयदेव की 'चन्द्रालोक' या विश्वनाथ की 'साहित्य दर्पण' या जो भी कोर्स की किताब के श्लोक याद हो वो बोलना शुरू कर देना। सामने वाले को क्या पता कि हम पाठ्यपुस्तक के श्लोक बोल रहे हैं।' कहते हुए उसकी बांछें खिल उठी थी।

चेतना ने आपत्ति जताते हुए कहा, 'वो लोग तुम्हें धर्म के लिए बुलाते हैं और तुम तो धोखा देते हो।' सुनकर सोमेश्वर के चेहरे के भाव बदल गये। झल्लाते हुए बोला, 'तुझे बताना ही नहीं चाहिए।' चेतना को घूरकर लगभग चिल्लाते हुए उसने कहा, 'हम धोखेबाज और ठग हैं क्या? ब्राह्मण हैं हम। हमारे द्वारा किसी के घर में पाँव रखने से ही उसका घर पवित्र समझा जाता है। बकवास कर रही है।' चेतना भी तैश में आ गई, वह भी चिल्लाते हुए बोली, 'मुफ्तखोरी कहते हैं इसे। ज्ञान है नहीं और खुद को पण्डित कहलवाते हो, मुफ्तखोरी के लिए बेवकूफ बनाते हो।'

कक्षा में सोमेश्वर और चेतना के बीच हुई बातचीत जोशी सर के कानों तक पहुँच गई। दूसरे दिन कक्षा में पढ़ाने आए जोशी सर ने कुर्सी पर बैठते हुए लाड़ में चेतना से पूछा, 'और बच्चे क्या चल रहा है आजकल?'

'जी, कुछ नहीं।'

'रहते कहाँ हो?'

सर के प्रश्न पर वो एक नज़र कक्षा में दौड़ाती है, सिर्फ उसी से यह सवाल क्यों ? जवाब देती है, 'सर, शास्त्रीनगर।'

'अच्छा... पिताजी क्या करते हैं?'

'घर पर ही सिलाई का काम।'

'अच्छा-अच्छा, तो मंदिर में ही रहते हो।'

'मंदिर? मंदिर में क्यों रहेंगे? घर है हमारा।'

'तो मंदिर में नहीं रहते हो? हुम्म.. . तुम्हारा पूरा नाम क्या है?'

'जी, चेतना गौतम।'

'गौतम?'

'कौन से ब्राह्मण हो जी गौतम?'

'सर, मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, अनुसूचित जाति में आती हूँ।'

जोशी सर के चेहरे के भाव बदलने लगे, कुछ रुककर वे बोले, 'लेकिन

गौतम तो...? चलो कोई बात नहीं, बैठ जाओ।' कक्षा में अजीब-सा माहौल हो गया था। घूरती नज़रों का सामना वह नहीं कर पा रही थी। एक शहर के होने के बावजूद भी वह उन लोगों के बीच अजनबी थी। तभी सर ने एक विद्यार्थी से कहा, 'अरे तिवारी जी, क्या चल रहा है, इन दिनों? सावन के सोमवार की कमाई में लगे हो। अजी! थोड़ा लघुसिद्धांत कौमुदी का भी ध्यान कर लो। कहीं जजमानी ग्रहण करते हुए मंत्र भूल गये तो पढ़ाई ही नैया पार लगायेगी।' यह सुनकर पूरी कक्षा ठहाकों से गूंज गई।

विद्यालय की प्रार्थना सभा में किसी भी विद्यार्थी को अचानक बुला लिया जाता था। प्रार्थना खत्म होने के बाद स्टेज पर विद्यार्थी द्वारा श्लोक, कविता, दोहे आदि बोलने का चलन था। अगर कोई बच्चा बोल नहीं पाता था तो प्रधानाचार्य के मुख से शहद में लिपटे ऐसे बोल निकलते जो सीधे विद्यार्थी के हृदय में शूल की तरह चुभते। वैसे तो एक विद्यार्थी का नंबर महीने में एक-दो बार आता था परंतु चेतना का नाम सप्ताह में दो-तीन बार पुकारा जाने लगा। अचानक बुला लिए जाने पर वो संभल नहीं पाती, उसे समझ नहीं आता कि क्या बोले। धीरे-धीरे उसका मनोबल टूटने लगा, उसे एहसास होने लगा कि विद्यालय में उसकी छवि डफर की बनती जा रही है। उन्हीं दिनों विद्यालयों के टूर्नामेंट भी शुरू हो गये। चेतना ने भी हिस्सा लिया और उदयपुर के लिए निकल गई।

सप्ताह-भर के टूर्नामेंट से चेतना में पुनः जोश का संचार हुआ। जिला स्तर पर होने वाली संस्कृत श्लोक अन्ताक्षरी में प्रथम स्थान आया था उसका। बैडमिंटन प्रतियोगिता में भी द्वितीय स्थान रहा था। अच्छे दोस्त भी बने जो हौसला अफजाई करते रहे। हालांकि यह हौसला स्कूल की इज्जत के लिए था परंतु चेतना के बहुत काम आया। वो उस जातिगत डर से निकली जो उसमें घर करने लगा था।

विद्यालय की बिल्डिंग में ही दिन के समय कॉलेज चलता था। चेतना ने वहीं शास्त्री में दाखिला लिया और टॉप भी किया। आज कॉलेज मार्कशीट लेने जा रही है। साथ में मिठाई का डब्बा भी है। कॉलेज पहुँचते ही वो हिंदी साहित्य पढ़ाने वाले ब्रह्मानन्द सर के पास गई, मार्कशीट उन्हीं से मिलनी थी। चेतना के चेहरे की खुशी साफ झलक रही थी। उसने कहा 'सर... मार्कशीट।',

उन्होंने कहा ''कहाँ से कर रही हो बी.एड.।'

चेतना ने खुशी जाहिर करते हुए कहा, 'सर में बी.एड. नहीं कर रही हूँ, मुझे आगे पढ़ना है इसलिए दिल्ली के विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षाएं दी थी, उन सभी में हो गया है, अब बस दाखिले के लिए विश्वविद्यालय का चयन करना है।'

यह सुनकर ब्रह्मानन्द सर की त्यौंरियाँ चढ़ गई, तभी वाङ्मय पढ़ाने वाले अखिलेश्वर पाण्डे सर ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने आँखें उचकाकर पूछा, 'क्या हुआ?'

'ब्रह्मानन्द सर, कुछ नहीं... चेतना अपनी आगे की पढ़ाई दिल्ली में रहकर करेगी। किस्मत देखिए इसकी... हम लोग अजमेर में पैदा हुए और यहीं मर भी जायेंगे और ये अजमेर में पैदा हुई और दिल्ली जाकर मरेगी।' ऐसी बातें सुनकर चेतना चौंक गई। उसके दिल की धड़कन बढ़ने लगी और आक्रोश का सैलाब उसकी आँखों में उमड़ पड़ा। वह सोचने लगी कि जिस सर की वो इतनी इज्जत करती थी, उनकी ऐसी सोच और ऐसे घृणित बोल। चेतना का ध्यान अपने हाथ में पकड़े मिठाई के डब्बे पर गया। मिठाई का डब्बा ब्रह्मानन्द सर की ओर बढ़ाते हुए बोली, 'सर, मुँह मीठा कीजिए मैंने शास्त्री में टॉप किया है।' अनमने भाव से हाथ आगे बढ़ाकर दोनों ने एक-एक मिठाई का पीस ले लिया। तभी चेतना ने ब्रह्मानन्द सर से कहा, 'सर आप और मिठाई लीजिए, आपके विषय में मुझे हाईयेस्ट मार्क्स मिलें हैं।' बात सुनकर उन्होंने अपनी नज़र फाइलों में गड़ा ली और फुर्ती से औपचारिक खानापूर्ति करके मेज़ पर चेतना की मार्कशीट सरका दी। मार्कशीट लेकर जैसे ही कमरे से बाहर निकली, उसे संस्कृत साहित्य पढ़ाने वाले तिवारी सर मिल गये। वहीं सर जो स्कूल में चेतना का दाखिला नहीं होने देना चाहते थे। परीक्षा पास कर कॉलेज में पढ़ाने लगे है। उन्होंने चेतना को रोक कर पूछा, 'परीक्षा में कैसे लिखती हो?'

चेतना बोली, 'मतलब!'

समझाते हुए बोले, 'अरे! अक्षर छोटा लिखती हो कि बड़ा-बड़ा।'

गुस्से में तो वह थी, बोली, 'आप नंबर छोटे अक्षर पर ज्यादा देते हैं या बड़े अक्षरों पर।' अबकी बार तिवारी सर ने कहा 'मतलब!'

चेतना ने अपने अंदर का गुस्सा दबाते हुए कहा, 'मतलब कुछ भी नहीं, प्रश्नानुसार उत्तर लिखती हूँ।' यह कहते

हुए वह तुरंत कॉलेज के बाहर निकल आई।

पूरे रास्ते वह यही सोचती रही कि इनकी नज़र में अनुसूचित जाति में जन्म होना पाप है, उसके साथ बुद्धिमान होना भी।

दिल्ली से एम.ए. करने के बाद वह फिर से एम.फिल., पीएच.डी. की तैयारी में जुट गई। हर विश्वविद्यालय में किसी न किसी कक्षा के छात्र अपने प्रोफेसरों के प्रिय छात्र बनना चाहते हैं, इसी दौड़ में वे छात्रों के बीच की बातचीत को अपने प्रिय गुरुओं तक पहुँचाते है। अधिकांश गुरुओं को भी छात्रों के बीच चलने वाली बातचीत को जानने में रस आता है। चेतना की क्लासमेट पवित्रा चौबे, अभिनय पाण्ड्या गुरुओं के खासम-खास थे। प्रवेश परीक्षा की तैयारी में जुटी चेतना के परिश्रम की खबर इनके द्वारा गुरुओं तक पहुँचा दी गई थी।

लिखित परीक्षा में चेतना ने टॉप किया, यह खबर आग की तरह फैल गई। अब मौखिक परीक्षा शेष थी। जातिवादियों के बीच कानाफूसी होने लगी–'ये दलित रिजर्व सीट तो लेते ही हैं, हमारी जनरल की सीट पर भी कब्जा जमा लेते हैं। अरे! जो सीट तुम्हारें लिए छोड़ी गई है, वही लो ना।' यह बात चेतना के कानों में भी पड़ी। उसने पूरी जान लगा दी तैयारी में। वाइवा भी पच्चीस मिनट तक चला, बहुत बढ़िया रहा।

पूरे एक महीने बाद रिजल्ट आया। देखकर चेतना चौंक गई। उसकी एस. सी. कैटेगरी में फर्स्ट रैंक आई। यह तो उसे एडमिशन के चार-पाँच महीने बाद, परीक्षा के नंबर जब ऑनलाइन डाले गये थे तब पता चला कि वाइवा में उसे बीस में से सिर्फ चार नंबर मिले हैं। यानी कि साठ+चार=कुल चौंसठ। अनित्यानन्द दधीच के लिखित में पचास नंबर आये थे, उसे वाइवा में सोलह अंक मिलें। अंतिम प्रयास करके आखिर उसे लटकने से बचा ही लिया। चेतना सोचने लगी–'इतना घालमेल... सबके सामने इनके मुँह से समानता का झरना बहता है और हकीकत में कितने खोखले हैं यह लोग।'

यह जातिगत अपमान ही था। सिर्फ बीस नंबर देने का अधिकार मिलने पर यह लोग इतना गिर सकते हैं तो सोचो अगर पूरी परीक्षा प्रक्रिया ही इनके हाथ में आ जाए तो बहुजनों का उच्च शिक्षा पाना तो असंभव हो जाए। कोर्स वर्क बढ़िया जा रहा था, ग्रेड भी अच्छी आ रही थी। आंबेडकर, फूले, मार्क्स आदि को पढ़कर उसके सोच का दायरा विस्तृत होने लगा था। बहुजन संगठनों से जुड़ने लगी थी। बहुजन साथियों के साथ होने वाले जातिगत अनुभवों को सुनकर उसके रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसे भी याद आया कि जब वह बारहवीं कक्षा में थी, तब मामा की लड़की की शादी में गाँव गई थी। नानी के घर से पहले राजपूतों की बस्ती थी, वहीं से होते हुए नानी के घर का रास्ता था। एक ही कुँआ था गाँव में, राजपूतों की बस्ती के अंतिम छोर और दलितों की बस्ती की शुरुआती सीमा पर। शादी-ब्याह में पानी की किल्लत के चलते चेतना भी घड़ा लेकर ममेरी बहनों के साथ कुँए पर गई। दो नल थे, विभाजित। अपनी बहनों के साथ हँसी-ठिठोली करते हुए उसने देखा, एक बुजुर्ग महिला जिसके गले में तुलसी की माला है, अपने घड़े को पानी से भरकर इंतजार कर रही है कि कोई सहारा देकर उसके सिर पर घड़ा रख दे। चेतना को अपनी ममेरी बहनों पर गुस्सा आया, जो बेचारी बूढ़ी अम्मा को अनदेखा कर रही थी। चेतना ने झुककर घड़े के ऊपरी हिस्से को पकड़ लिया और 'लो, अम्मा मैं रखवा देती हूँ सिर पर', कहना चाह ही रही थी कि उस बूढ़ी अम्मा को जैसे ततैया काट गया हो, चिल्लाने लगी, 'हाय! मेरा सारा पानी खराब कर दिया।' और पूरे घड़े का पानी, जिसे भरने में कम से कम दस से पन्द्रह मिनट तो लगे ही होंगे, पास के नाले के सुपुर्द हो गया। ममेरी बहनें इस बात पर खूब हँसी थी और कह रही थी, 'शहर नहीं है यह।' चेतना पैर पटकती हुई नानी के घर आ गई थी। इस घटना से उस वक्त वह आहत जरूर हुई थी, पर मायने आज समझ पायी।

जातिगत भेदभाव के किस्से एक के बाद एक उसे याद आने लगे। शास्त्री प्रथम वर्ष के दौरान कक्षा में द्वितीय वर्ष के छात्र की कॉपी हाथ में लिए लगभग धिक्कारते हुए ही ब्रह्मानन्द सर ने कहा था, 'मनोज रैगर... साला नाम के पीछे एपरोच लगाता है।' और गुस्से में कॉपी को मेज पर पटक दिया। उसे देखकर सभी का कहना था– 'तुम्हें देखकर लगता नहीं कि तुम अनुसूचित जाति से हो।' और 'अनुसूचित जाति की होने के बाद भी पढ़ाई में इतनी तेज हो।' ऐसी बातें उसने कई बार सुनी, लेकिन कभी गौर नहीं किया इसके पीछे की सच्चाई पर।

कोर्स वर्क चल रहा था। प्रजन्टेशन के टॉपिक बता दिये गये थे। एक-दो दिन में प्रजन्टेशन भी हो गया। कुछ

दिन बाद ग्रेड आई। चेतना अपनी ग्रेड देखकर चौंक गई। जिस प्रजन्टेशन की तारीफ पूरी क्लास के सामने सर ने की थी, उसमें उसे बी माइनस मिला है। दूसरे दिन जब क्लास हुई तो उसने विश्वनाथ सिंह सर से कहा, 'सर मेरा एक प्रश्न है आपसे?'

सर ने उसकी ओर देखा, उनके बोलने से पहले ही वह बोली, 'सर, पूरी कक्षा के समक्ष आपने मेरे प्रजन्टेशन की तारीफ की थी, तो आपके ऐसे क्या कारण रहे, जिनके चलते आपने मुझे बी. माइनस दिया। जबकि आपने स्वयं कहा था कि मेरा प्रजन्टेशन ए प्लस के लेवल का है।'

विश्वनाथ सिंह कुछ बोल नहीं पाए। उन्हें अंदाजा नहीं था कि उनकी कोई बहुजन छात्रा ऐसा दुस्साहस भी कर सकती है। उसने कक्षा में चिल्लाकर कहा, 'जातिगत भेदभाव कर रहे हैं आप, वो भी इतने चौड़ में, आपको अपने पद का भी मान नहीं रहा, जब तक आप जैसे लोग ऐसे सम्मानित पदों पर बने रहेंगे तब तक हमारा भी हौसला डगमगाने वाला नहीं, करिए आप अपने मन की, हम अपने मन की करेंगे, ऐसे करते हुए आपको थोड़ी-सी भी लज्जा नहीं आयी...।' पूरी क्लास में सन्नाटा छा गया।

क्या बोलते अब? इसलिए विश्वनाथ सिंह क्लास खत्म होने के समय से पहले ही अपना सामान समेट कर अपने चैंबर में चले गये।

पवित्रा ने चेतना को शांत कराते हुए कहा, 'अरे! यार इतना गुस्सा मत कर। ले पानी पी ले।' और पानी की बॉटल उसकी ओर बढ़ा दी। चेतना ने बॉटल हाथ में लेते हुए उसे जोर से दीवार पर दे मारी और चिल्लाते हुए बोली, 'हट! दोगला।'

बॉटल का पानी पूरी कक्षा में फैल गया था। पवित्रा अपने गुरु का अपमान नहीं सह सकी। उसने कहा, 'यार ऐसा मत बोल, वो गुरु हैं हमारे।'

क्रोध से लाल हो गई चेतना, चिल्लाकर कहा, 'मैं अपनी मेहनत के नंबर माँग रही हूँ। चमचागीरी करने के नहीं, चमचागीरी करके नंबर बटोरने की कला नहीं है मुझमें।'

अबकी बार पैर पटकती हुई पवित्रा भी कक्षा से निकल गई।

दूसरे दिन चेतना विश्वविद्यालय गई तो देखा नोटिस बोर्ड पर ग्रेड लिस्ट में उसके नाम के आगे ब्लू पेन से जो बी माइनस लिखा था उस पर लाल पेन से सीधी रेखा खींचकर बी प्लस बना दिया गया है। यह देखकर उसकी हँसी निकल गई।❑

पृष्ठ सं. 78 का शेष भाग

काट रही थी। ग्राउंड में फैली खिली धूप में छात्राओं का समूह भी खिले हुए पुष्प गुच्छों की तरह लग रहा था। हँसती, खेलती, सपने देखती बच्चियों के बीच कीर्ति हर झुंड में खुद को खड़ा देख रही थी। आगे बढ़ते हुए वह महसूस कर रही थी कि बहुत धीरे सब कुछ पीछे छूट रहा है। उसकी इच्छाएं, उम्मीदें, धरती की हरी घास का मोड़, आसमान का नीला रंग... पर तभी उसने महसूस किया कि धरती पीछे नहीं, साथ चल रही है। उसकी जमीन, मिट्टी, मिट्टी का रंग, धूल; उसे अचानक वापस कुछ मिल गया था।

उसे अचानक भैया की पंचर साइकिल वाली बात याद आ गई। एक बार फिर से उसके पैरों में साइकिल के दोनों पहिए निकल आए थे। स्टॉफ रूम की ओर वह तेजी से आगे बढ़ी। वहाँ जाकर सीनियर टीचर्स के ग्रुप में बैठी डॉ. स्वर्णलता शर्मा से उसने दो टूक शब्दों में कहा, 'आप मेरा टाइम टेबल ठीक कीजिए। यह हर सेमेस्टर में नहीं चलेगा। मैं इस बार प्राचार्या के पास जाकर इसकी लिखित शिकायत करूँगी।' फिर तेजी से उसने पास रखे हॉटकेस से खाने का डिब्बा निकाला। आज अकेले बैठने की बजाय उसी टेबल पर सभी के बीच उसने ढक्कन को कटोरी से आजाद कर दिया। खाने की खुशबू हवा में थी। सामने वाले समूह की त्यौरियाँ चढ़ चुकी थीं। वे लगातार आपस में तेज आवाजों में बातें कर रहे थे। सारी आवाजों में उसकी इस हरकत की बुराईयाँ हो रही थीं। उसने कुछ खास ध्यान नहीं दिया। उसके दिमाग में तो एक आवाज तेजी से घूम रही थी, 'साइकिल चलाना थोड़े छोड़ देंगे, यात्रा करना थोड़े छोड़ देंगे।' अभी तो उसे स्टाफ रूम की खिड़कियों के बाहर नीला आसमान नजर आ रहा था। खाना खाने के बाद उसने अपना झोले वाला बैग उठाकर कंधों पर रखा और वहाँ से निकलकर क्लास की ओर बढ़ने लगी। एक छात्रा ने उसके कंधे पर टंगे झोलेनुमा बैग पर लिखे अक्षरों को देख कर ध्यान से पढ़ा। वहाँ अंग्रेजी में 'HAUSLA' और उसी लाइन के नीचे हिंदी में 'हौसला' लिखा था।❑

नाम के आगे लगा सन्नाटा

डॉ. यशोदा कुमारी
मो. 8869857474

'नाम के आगे लगा सन्नाटा' उस सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक मौन का संकेत है, जो किसी व्यक्ति की पहचान के साथ जुड़ जाता है। यह सन्नाटा तब उत्पन्न होता है जब नाम सुनते ही समाज सवाल पूछने, दूरी बनाने या चुप हो जाने का व्यवहार करता है। यह मौन सम्मान का नहीं, बल्कि पूर्वाग्रह, भेदभाव और अस्वीकृति का मौन होता है। दूसरे शब्दों में, यह अभिव्यक्ति बताती है कि व्यक्ति का नाम स्वयं उसकी आवाज को दबा देता है, उसकी योग्यता, संघर्ष और उसके मानव होने को अनदेखा कर देता है।

मेरा नाम लेते ही लोग अक्सर रुक जाते हैं। ऐसा नहीं कि नाम कठिन है, बल्कि इसलिए कि नाम के साथ जो जुड़ा है, वह उन्हें असहज कर देता है। नाम के बाद एक सन्नाटा खड़ा हो जाता है—भारी, बोझिल, अपमान से भरा हुआ। वह सन्नाटा बोलता नहीं, लेकिन बहुत कुछ कह जाता है। मैं पैदा हुआ तो अम्मा ने मेरी ओर देखकर बड़े भरोसे से कहा था, 'बेटा हुआ है। नाम ऐसा रखना कि जिंदगी में कभी सिर झुकाना न पड़े।' अम्मा को क्या पता था कि इस समाज में सिर झुकना नाम से नहीं, जाति से तय होता है। यहाँ कुछ नाम ऐसे होते हैं, जिनके साथ जन्म लेते ही आदमी की गर्दन झुकवा दी जाती है—बिना पूछे, बिना बताए। हमारा गाँव किसी सरकारी नक्शे में दर्ज नहीं है। कोई सड़क पूछे तो लोग कंधे उचका देते हैं, लेकिन जाति के नक्शे में हमारा गाँव बहुत साफ दिखाई देता है—इतना साफ कि हर आने-जाने वाला पहचान लेता है कि कौन कहाँ तक जा सकता है और किसे कहाँ रुक जाना है।

गाँव दो हिस्सों में बँटा है। एक हिस्सा वह, जहाँ घरों की दीवारें ऊँची हैं, दरवाजों पर नाम लिखे हैं और लोगों की आवाज में हक का भरोसा है। दूसरा हिस्सा वह, जहाँ दीवारें नहीं, मगर इंसानों की गर्दनें नीची हैं; जहाँ घर कम और डर ज्यादा है, जहाँ चुप रहना एक आदत नहीं, बल्कि जरूरत है। हम उसी हिस्से में रहते हैं जिसे लोग बड़ी आसानी से 'बस्ती' कह देते हैं, लेकिन वह सिर्फ बस्ती

नहीं है—वह पीढ़ियों से अलग-थलग की गई जिंदगी है, जहाँ सपने भी सोच-समझकर देखने पड़ते हैं और उम्मीदें अक्सर चौखट पर ही दम तोड़ देती हैं। यहाँ पैदा होना ही पहला अपराध है और जिंदा रहना रोज की सजा।

बचपन से ही मैंने बहुत कुछ सीख लिया था—पानी कैसे पीना है, रास्ता कैसे पार करना है, और सबसे जरूरी—चुप कैसे रहना है?

पानी पीते वक्त, हाथ नहीं, नजर झुकानी पड़ती थी। रास्ता पार करते समय यह देखना पड़ता था कि सामने कौन आ रहा है। और चुप रहना इसलिए जरूरी था, क्योंकि हमारे सवाल किसी किताब में नहीं लिखे गए थे। सवाल पूछना हमारे हिस्से में नहीं था, हमारे हिस्से में था—सब कुछ सह लेना। स्कूल पहुँचना मेरे लिए किसी युद्धभूमि में प्रवेश करने जैसा था।

कक्षा की दीवारों पर अक्षर टँगे थे, लेकिन उनके बीच बराबरी नहीं लिखी थी। जब मास्टर ने पहली बार मेरा नाम पुकारा, तो पूरी कक्षा हँस पड़ी—ऐसी हँसी, जिसमें बचपना नहीं, विरासत में मिली नफरत थी। मैं कुछ पल तक खड़ा रहा। समझ नहीं पाया कि मेरे नाम में ऐसा क्या था, जो हँसी का कारण बन गया। घर में तो उसी नाम से मुझे पुकारा जाता था, उसी नाम से अम्मा मुझे दुलारती थीं। लेकिन उस कक्षा में मेरा नाम मेरा नहीं रहा—वह मेरी पहचान बन गया, और पहचान मेरी सजा। रजिस्टर में जब पिता का नाम लिखा गया, तो मास्टर की भौंहें तन गईं। उन्होंने एक पल रुककर कहा—'ओह् तुम उस जाति से हो।'

उन शब्दों ने मुझे मेरी उम्र से पहले बड़ा कर दिया। उस दिन पहली बार समझ आया कि जाति कोई साधारण शब्द नहीं होता—वह एक ठप्पा है, जो माथे पर नहीं, आत्मा पर लगाया जाता है। उस दिन मुझे यह भी समझ में आ गया कि इस स्कूल में पढ़ाई सबके लिए एक-सी नहीं है। कुछ बच्चे सवाल पूछने के लिए आते हैं, और कुछ बच्चे चुप रहना सीखने के लिए। मैं दूसरे वाले बच्चों में था—जहाँ हर सही जवाब के बावजूद नजरें झुकी रहनी थीं। उस दिन के बाद मैंने किताबों से ज्यादा लोगों को पढ़ना शुरू किया। अक्षरों से ज्यादा खामोशी समझी। और जान लिया कि यह समाज पहले जाति पूछता है, फिर काबिलियत।

हमारे घर में शाम किसी सुकून की तरह नहीं आती थी। वह थकान बनकर आती थी—दिन भर की नहीं, पूरी जिंदगी की। पिता जब लौटते थे, तो उनके कंधों पर सिर्फ मजदूरी का बोझ नहीं होता था। उनकी पीठ झुकी हुई थी—सिर्फ मेहनत से नहीं, अपमान से भी। हर झुकाव में किसी की डाँट, किसी की घूरती नजर और किसी की बेवजह की हँसी दबी रहती थी। वे कम बोलते थे। शायद इसलिए नहीं कि उनके पास कहने को कुछ नहीं था, बल्कि इसलिए कि बोलने का हक उनसे बहुत पहले छीन लिया गया था। उनके हाथों की लकीरों में रोटी तो लिखी थी, लेकिन इज्जत नहीं। अम्मा के हाथों में गहरी दरारें थीं—जैसे उनकी हथेलियों ने उम्र से पहले ही हार मान ली हो। पानी, बर्तन, कपड़े और जिंदगी—सब कुछ उन्हीं हाथों से गुजरा था। लेकिन उनकी आँखों में दरारें नहीं थीं। वहाँ सवाल थे—खामोश, जले हुए, मगर जिंदा। वे मुझे बार-बार पास बुलाती थीं। मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहती थीं, 'पढ़ ले बेटा... ताकि तुझे कोई ऐसे न देखे, जैसे हमें देखा जाता है।' उनकी आवाज में सपना नहीं, एक डर छिपा होता था। उन्हें पता था कि पढ़ाई कोई गारंटी नहीं है, लेकिन चुपचाप सहते रहने से बेहतर एक रास्ता तो है। जब वे यह कहती थीं, तो उनकी आँखें कहीं दूर देखती थीं—शायद उस दुनिया की तरफ जहाँ आदमी की पहचान उसके काम से हो, उसकी जाति से नहीं। जहाँ सिर झुकाना मजबूरी न हो, और आँखें जमीन खोजती न फिरें।

उस दिन मुझे समझ आया—मेरी पढ़ाई सिर्फ मेरी नहीं है। वह पिता की झुकी पीठ का जवाब है, अम्मा के फटे हाथों का सपना है, और उस नजर के खिलाफ एक सवाल, जो हमें इंसान से पहले जाति समझती है। लेकिन पढ़ना कभी आसान नहीं रहा। हर किताब से पहले मुझे अपनी जगह साबित करनी पड़ी। कॉलेज पहुँचना किसी सपने जैसा नहीं था, बल्कि ऐसा लगा जैसे मैं अचानक किसी और ही दुनिया में आ गया हूँ। यहाँ लोग सीना तानकर चलते थे, उनके कदमों में हिचक नहीं थी। और मैं—अपने-आपको समेटकर चलता था, जैसे कहीं ज्यादा जगह न घेर लूँ। कॉलेज की गलियाँ चौड़ी थीं, लेकिन उनमें मेरे लिए जगह कम थी। यहाँ

बातचीत में आत्मविश्वास था, हँसी में बेफिक्री। और मेरे भीतर... लगातार एक डर, कि कहीं कोई मेरा नाम, या उससे भी पहले मेरी पहचान न पूछ ले। फॉर्म भरते वक्त जब जाति वाला कॉलम सामने आया, मेरी कलम ठहर गई। वह वही पुराना सन्नाटा था... नाम के आगे लगा हुआ। कुछ पल के लिए लगा कि अगर यह कॉलम न भरूँ, तो शायद मैं भी 'सामान्य' हो जाऊँ, लेकिन सन्नाटा टूटना ही था।

जाति लिखते ही सामने बैठे व्यक्ति का लहजा बदल गया। उसकी आँखों में अब उत्सुकता नहीं, जाँच थी। अब मैं छात्र नहीं था—मैं 'रिजर्वेशन वाला' था। मेरी मेहनत को मेरे जन्म से छोटा कर दिया गया था। मेरे अंक, मेरी रातों की जाग, मेरे पिता की झुकी पीठ और अम्मा के फटे हाथ... सब एक शब्द में समेट दिए गए। जैसे सब कुछ मुफ्त में मिला हो।

एक दिन किसी ने हँसते हुए कहा, 'तुम लोग तो सब कुछ फ्री में पा जाते हो।' मैंने उसे देखा। उसकी आँखों में सवाल नहीं, फैसला था।

मैं पूछना चाहता था, 'जो पीढ़ियों से छीना गया, उसे हासिल करना, मुफ्त कैसे हो सकता है? जो अपमान विरासत में मिला, उसकी भरपाई कौन करेगा?' लेकिन शब्द... गले में ही मर गए, क्योंकि यहाँ सवाल पूछने वाले अक्सर दोषी बना दिए जाते हैं। कॉलेज से गाँव लौटा, तो लगा कि पढ़ाई ने मुझे और अकेला कर दिया है। अब मैं दो दुनियाओं के बीच लटका था। जो पढ़े-लिखे नहीं थे, वे मुझसे डरते थे—शायद उन्हें लगता था कि मैं उनसे दूर निकल गया हूँ। और जो पढ़े-लिखे थे, वे मुझसे नफरत करते थे—क्योंकि मैं उनके बराबर आ गया था। अब न मैं पूरी तरह गाँव का रहा, न शहर का। मेरी पहचान दोनों जगह अधूरी थी। शायद यही पढ़ाई की सबसे बड़ी कीमत थी—कि उसने मुझे सवाल देना सिखाया, लेकिन जवाब कहीं नहीं छोड़े। एक शाम मंदिर के सामने मैं पानी भरने खड़ा था। दिन ढल रहा था, लेकिन मेरे भीतर की प्यास अब भी तेज थी—सिर्फ पानी की नहीं, इंसान होने की। मंदिर की सीढ़ियाँ ऊँची थीं, और उनके नीचे खड़ा मैं—अपनी हैसियत में। घड़ा भरते ही किसी ने पीछे से टोक दिया, 'रुको! यह जगह तुम्हारे लिए नहीं है।'

उस आवाज में गुस्सा नहीं था, आदेश था। जैसे यह बात सदियों पहले तय हो चुकी हो। मैंने पहली बार नजर झुकाने के बजाय नजर उठाई और पूछा, 'पानी भी जाति देखकर बहता है क्या?' मेरे सवाल में कोई गाली नहीं थी, कोई चुनौती नहीं—बस एक सीधा सच। लेकिन सच इस समाज को सबसे ज्यादा चुभता है। जवाब में शब्द नहीं आए। लाठी चली। एक नहीं, कई बार। मेरे शरीर से खून बहा—गरम, चिपचिपा, धरती पर फैलता हुआ, लेकिन उससे कहीं ज्यादा मेरी आत्मा से खून बह रहा था। हर वार के साथ यह एहसास गहराता गया कि मेरा अपराध सिर्फ सवाल पूछना था। लोग तमाशा देखते रहे। कुछ ने मुँह फेर लिया, कुछ चुप रहे। और उसी चुप्पी ने लाठियों को और मजबूत कर दिया। उस रात मैं सो नहीं पाया। घाव जल रहे थे, लेकिन उससे ज्यादा जल रहा था मेरा आत्मसम्मान।

उसी अँधेरी रात में मैंने पहली बार बाबा साहब को पढ़ा। उनके शब्द मेरे घावों पर मरहम नहीं थे—वे हथियार थे। उन्होंने मुझे सहना नहीं, सोचना सिखाया। डरना नहीं, समझना सिखाया। उन्होंने लिखा था, 'जिस समाज में आत्मसम्मान नहीं, वहाँ जीवन व्यर्थ है।' वह पंक्ति मेरे भीतर उतर गई। मुझे लगा, मेरी पीठ पर पड़े हर निशान का कोई अर्थ है। मेरी चुप्पी का कोई हिसाब है। उस दिन मैंने अपने आप से वादा किया—अब मैं चुप नहीं रहूँगा, क्योंकि चुप रहना सिर्फ डर नहीं होता, वह अत्याचार की सबसे वफादार साझेदार होती है। अब मेरा सवाल सिर्फ मेरे लिए नहीं था। वह उन सबके लिए था जो मंदिरों के बाहर, कुओं के पास, कक्षाओं की आखिरी पंक्तियों में और समाज की हाशियों पर खड़े कर दिए गए थे। उस दिन मेरे भीतर एक आदमी नहीं, एक आवाज पैदा हुई। जब मैंने बोलना शुरू किया, तो मुझे तुरंत याद दिलाया गया, 'ज्यादा बोलने लगे हो। औकात भूल रहे हो।'

यह चेतावनी नहीं थी, यह डराने की पुरानी तरकीब थी, लेकिन इस बार मैंने औकात नहीं, इतिहास पढ़ा था। मैं जान चुका था कि औकात तय करने वाले हमेशा डरते हैं, क्योंकि उन्हें पता होता है कि उनका हक झूठ पर टिका

पृष्ठ सं. 116 पर शेष भाग

महकता कोना

डॉ. दीपा
मो. 8744998293

अवनी सोने ही जा रही थी कि उसके वाट्सएप पर 'हाय' का एक मैसेज आया। इससे पहले कि वह मैसेज पढ़ती तुरंत दूसरा और तीसरा मैसेज आ गया।

'कैसी हो?'

'मुझे याद करती हो या भूल गई?'

अवनी ने तीनों मैसेज एक साथ पढ़ डाले और गहरी सोच में डूब गई।

'आखिर कौन हो सकता है? ऐसा तो कोई परिचित ही लिख सकता है।' अननॉन नम्बर था, इसलिए अवनी ने मैसेज का रिप्लाई करने में तेजी न दिखाई।

जब अवनी ने उस नंबर का प्रोफाइल पिक खोला तो वहाँ एक ऐसी तस्वीर लगी थी जहाँ एक ग़ज़ल की पंक्तियाँ लिखी थीं–'हम तेरे शहर में आए हैं मुसाफिर की तरह, सिर्फ एक बार मुलाकात का मौका दे दे।'

इसे पढ़ते ही अवनी सोचने लगी। कोई शायराना मिजाज व्यक्ति लगता है। 'क्या बात है आपने अभी तक मेरे मैसेज का रिप्लाई नहीं किया?' सामने से तुरंत चौथा मैसेज आ गया। अवनी बड़बड़ाने लगी। कौन है जो ये बार-बार मैसेज पर मैसेज किए जा रहा है। अवनी ने 'हू आर यू?' का मैसेज भेज दिया और सोचने लगी, अगर मुझे जानता है तो सीधे-सीधे नाम लिखकर भेज देगा, फालतू के मैसेज किए जा रहा है। वैसे भी सुबह की घटना से उसका का मूड खराब था।

'कुछ तो बोलो यार?'

सामने से फिर मैसेज आ गया। अवनी को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि मैसेज कौन कर रहा है। तुरंत फिर एक मैसेज आ गया–'पहचाना नहीं?'

अवनी का धैर्य जवाब दे गया–'अपना नाम बताते हो या नंबर ब्लॉक कर दूँ।'

'नहीं, नहीं। ऐसा जुल्म मत करना।'

'नाम बताते हो या नहीं?' अवनी ने गुस्से में मैसेज टाइप करके सेंड कर दिया।

'बताता हूँ–बताता हूँ।'

नाम तो लिखा हुआ नहीं आया। हाँ एक तस्वीर जरूर आई जिसे डाउनलोड करते ही अवनी मुस्कुरा दी। और फिर एक और मैसेज–'मैं श्रेय श्रीवास्तव, तुम्हारे कॉलेज का दोस्त।'

अवनी ने लगातार चार-पाँच मैसेज एक साथ भेज दिए–'तो तुम हो। पहले

अपना नाम नहीं बता सकते थे। इतना नाटक करने की क्या जरूरत थी। कहाँ थे इतने सालों से?'

'न कोई फोन, न कोई मैसेज।'

'तुम तो गायब ही हो गए थे।'

'कहीं चले भी गए थे तो बता कर नहीं जा सकते थे?'

'तुम्हारे पास तो मेरा नंबर था। कॉल क्यों नहीं किया?'

जवाब में श्रेय का रिल्पाई आया।

'मैं एम.बी.ए. करने लंदन गया था। छह साल बाद इंडिया लौटा हूँ। मैंने यहाँ एक मल्टीनेशनल कंपनी में एज ए मैनेजर जॉइन किया है। अब यहीं रहूँगा।' कुछ देर रुककर उसका फिर मैसेज आया, 'क्या हम कल मिल सकते हैं?'

अवनी ने बिना किसी संकोच के रिप्लाई मैसेज कर दिया, 'ओके।' जिसे अपने मोबाइल के स्क्रीन पर देखकर श्रेय प्रसन्न हो गया।

'कहाँ?' अवनी का फिर मैसेज आया।

'मैगी पाइंट पर, जो हमारे कॉलेज के बगल में है। जहाँ हम कॉलेज टाइम में जाते और मैगी के साथ-साथ चाय का आनंद लेते थे।' मैगी पाइंट शॉप के पीछे एक छोटा-सा पार्क था जिसमें आस-पास के लोग व्यायाम करते, टहलते और मजदूर वर्ग लंच टाइम में खाना खाता और साथ ही आराम करता था।

श्रेय का मैसेज फिर अवनी के मोबाइल की स्क्रीम पर था, 'तुम्हें याद है वहाँ एक गुलमोहर का पेड़ लगा था उसके नीचे पत्थर की कुर्सी लगी हुई थी। हम अक्सर वहाँ बैठकर मैगी खाते और चाय पीते थे और एग्जाम टाइम में पढ़ाई भी करते थे। तुमने तो उस जगह का नामकरण भी कर दिया था–'महकता कोना'।

श्रेय के लंबे मैसेज को पढ़ने के बाद अवनी ने दीवार घड़ी पर नजर डाली। रात के 12 बज चुके थे। अवनी ने अंतिम मैसेज टाइप किया, 'रात बहुत हो गई है। कल कॉलेज के पास बने मैगी पाइंट पर 12 बजे मिलते हैं।' और लाइट बंद करके सो गई।

अगली सुबह अवनी को तैयार होकर जल्दी नाश्ता करने पर माँ ने पूछा, 'क्या बात है अवनी सुबह से तैयार हो गई। कहीं जाना है क्या?'

'माँ आपको श्रेय याद है? मेरा कॉलेज फ्रैंड, जो कई बार हमारे घर भी आया था।'

'हाँ याद है। कहाँ है वो आजकल? अब घर भी नहीं आता? शादी हो गई उसकी?' माँ ने एक ही बार में कई सवाल पूछ डाले।

'कॉलेज खत्म होने के बाद उससे कभी बात न हो सकी और न ही उसका फोन आया, लेकिन कल अचानक उसका वाट्सएप पर मैसेज आया कि वो लंदन से दिल्ली वापस आ गया है और अब यहीं रहकर जॉब करेगा। उसने यहाँ किसी मल्टीनेशनल कंपनी में मैनेजर की पोस्ट पर जॉइन किया है। आज उसकी छुट्टी है और वो मुझसे मिलना चाहता है। माँ मैं जाऊँ?' अवनी ने पूछा। माँ ने अनुमति दे दी, 'ठीक है। चली जा।'

'मैगी पाइंट' कॉलेज से महज पाँच मिनट की दूरी पर था। मैगी पाइंट पर अवनी समय से पहले पहुँच गई और इंतजार करती हुई सोचने लगी कि श्रेय पहली बार यहीं मिला था।

वहाँ मैगी के साथ-साथ चाय और बिस्कुट भी मिलते थे। कॉलेज टाइम में अवनी और उसकी सहेली अंजू अक्सर वहाँ मैगी खाने जाते थे। एक दिन अवनी और अंजू वहाँ चाय पीने गई थीं। वहाँ श्रेय भी था। दुकानदार ने मुझे और श्रेय को एक साथ चाय लेने के लिए कहा, मैंने और श्रेय ने एक साथ चाय के कप की ओर हाथ बढ़ाया कि सारी चाय नीचे गिर गई। मैंने श्रेय को गुस्से में डॉट लगा दी थी।

'आपका हाथ जला तो नहीं?' गलती के अहसास से भरा स्वर श्रेय के मुख से निकला था।

'सॉरी-सॉरी!'

'अब क्यों सॉरी बोल रहे हो। चाय तो गिर गई न।' मेरा स्वर तल्ख हो गया और भौंहे कुछ तन गई थी।

'कोई बात नहीं मैं आपको दूसरी चाय दिलवा देता हूँ। भईया इन्हें दूसरी चाय दे दो। मैं पैसे दे दूँगा।'

'हमें नहीं चाहिए। पहले गलती करते हो फिर माफी मांगते हो।' अवनी बोली।

अंजू जो वहीं खड़ी थी। अवनी को चुप करा रही थी और साथ ही बोले जा रही थी, 'छोड़ न यार चाय के पैसे मैं दे दूँगी। वैसे भी वो माफी माँग रहा है।'

अंजू ने दुकानदार को तीन कप चाय बनाने का ऑर्डर दिया। तब अंजू ने अवनी को घूर कर देखा। अंजू तब मुस्करा दी। श्रेय ने चाय के पैसे देने की कोशिश की किंतु अंजू ने तुरंत दुकानदार को चाय के पैसे दे दिये। जब तीनों चाय पीकर जाने लगे तब श्रेय ने अंजू से कहा था, 'आप अपनी सहेली से मुझे माफ करने के लिए कहिए न।'

श्रेय की तरफ से निवेदन करते हुए अंजू ने कहा, 'माफ कर दे यार।' और फिर अंजू श्रेय को अपना और अवनी का परिचय देने लगी कि वे इसी कॉलेज में पढ़ती हैं। श्रेय ने भी अपना परिचय दिया कि वह भी इसी कॉलेज

में बी.कॉम प्रथम वर्ष का छात्र है। परिचय की औपचारिका को निभाया गया। इसके बाद वे तीनों अच्छे मित्र बन गए थे।

अवनी अभी भी सोच ही रही थी कि इतने में श्रेय आ गया, आते ही उसने पूछा, 'कैसी हो अवनी?'

'ठीक हूँ।'

'तुम कैसे हो?'

'अच्छा हूँ।'

'पर तुम्हारी आवाज का स्वर तुम्हारे चेहरे से मेल नहीं खा रहा।' श्रेय ने अवनी के मन की उदासी को भांपते हुए कहा।

'कुछ नहीं यार?'

दोनों ने दुकानदार से चाय के कप अपने-अपने हाथों में लिये और साथ लगे पार्क में बिछी कुर्सियों पर जाकर बैठ गये। बीच में छूट गई बात को पकड़ते हुए श्रेय ने पूछा, 'अपने दोस्त को नहीं बताओगी?'

अवनी ने श्रेय का औपचारिक हाल-चाल पूछा और फिर कल की घटना के बारे में श्रेय को बताना शुरू किया, 'पढ़ाई के दौरान मैंने कभी विवाह के बारे में नहीं सोचा था। जब मैंने पीएच.डी. शोध प्रबंध जमा करा दिया तो माँ कहने लगी कि अब मुझे विवाह कर लेना चाहिए। किंतु मैं उन्हें कहती कि नौकरी लग जाने के बाद विवाह करूंगी।' चाय की एक चुस्की लेकर अपने गले से उतारने के बाद वह बोली, 'अब तो माँ भी तानै मारते हुए कहती कि मैं 30 वर्ष की हो चुकी हूँ। नौकरी जब लगनी होगी लग जाएगी। पर मैं शादी कर लूं। उसे लगता है कि मेरी शादी हो गई तो उसकी एक चिंता खत्म हो जाएगी।'

अवनी ने देखा कि श्रेय उसकी बात सुन रहा है, वह आगे बोली, 'माँ मुझसे कहती है कि मोहल्ले की सारी लड़कियों की शादी हो चुकी है। वह बताती है कि उससे लोग पूछते हैं कि अपनी लड़की यानी मेरी शादी कब करोगी?' अवनी बात करते हुए चिंतित भाव में ठहर-सी गई। श्रेय अभी भी चुप था, जैसे वह केवल अवनी को ही सुनना चाहता था। अवनी ने आगे बताया, 'माँ को हमारे पड़ोसी रघु जी ने एक रिश्ता बताया था। लड़का पीएच.डी. कर रहा है। माँ ने मुझसे कहा कि देख ले! अगर तुझे लड़का पसंद आया तो बात आगे बढ़ाएंगे। मैंने समान योग्यता की बात सुनकर लड़के वाले को घर बुलाने के लिए कह दिया।'

अवनी ने आगे बताया, 'एक हफ्ते बाद लड़के वाले को घर बुलाया गया। जिस दिन लड़के वाले घर आने वाले थे, माँ ने हम सबको सुबह-सुबह ही जगा दिया था। 'जल्दी उठो। नहा-धोकर तैयार हो जाओ। लड़के वाले को ग्यारह बजे का टाइम दिया है।' मेरी छोटी बहन नींद में बोले जा रही थी, 'माँ थोड़ा और सोने दो न। दीदी को देखने के लिए आने वाले हैं। हमें क्यों जल्दी जगा रही हो? उसे बोलो वो जल्दी उठेगी।' अवनी ने श्रेय को बताया, 'पर माँ कहाँ मानने वाली थी, उसने तो फरमान जारी कर दिया था, 'चलो सब जल्दी उठो और काम में मेरा हाथ बंटाओ।'

अवनी ने आगे बताया, 'हम सब जल्दी उठ गए और घर को साफ-सुधरा करके स्वयं नहा-धोकर तैयार हो गए तथा रसाई में माँ का हाथ बंटाया। लड़के वाले ग्यारह बजे के बजाय बारह बजे हमारे घर पहुंचे। दरवाजे की घंटी बजी। माँ ने दरवाजा खोला और लड़के वालों को नमस्कार करते हुए, अंदर आने को कहा और उन्हें बैठक में बैठा दिया। माँ, छोटी बहन और भाई ने मिलकर सबको चाय-नाश्ता दिया। गुप्ता अंकल के साथ कुल मिलाकर सात लोग आए थे। लड़के के माता-पिता, भईया-भाभी, दीदी-जीजा और लड़का। चाय-नाश्ते के बाद मुझे बुलाया गया।'

श्रेय को अपनी बात बताते हुए अवनी चाय के खाली डिस्पोजल कप को टेबल पर हाथों से घूमा रही थी।, उसने श्रेय के चेहरे पर एक बार देखा और नजरों को टेबल पर टिकाकर आगे बताने लगी, 'मैं सामान्य सलवार-कमीज़ पहने हुए हाथों में पानी भरे गिलास की ट्रे लेकर बैठक में आई और सबको नमस्कार किया। मुझे पास में रखी एक खाली कुर्सी पर बैठने को कहा गया। मैं उस कुर्सी पर बैठ गई। भीतर से मैं बहुत नर्वस थी, क्योंकि आज तक मैंने केवल नौकरी के लिए इंटरव्यू दिये थे, लेकिन बहु के पद के लिए यह मेरा पहला साक्षात्कार था। अब मौखिक प्रश्नों का सिलसिला प्रारंभ हुआ।'

श्रेय ने हल्की-सी मुस्कान के साथ बीच में टोकते हुए पूछा, 'साक्षात्कार! बहु के पद के लिए? यह कुछ नया तरीका नहीं है, चीजों को देखने का?' कहने के साथ ही वह एक हाथ के कमीज की बाजू से कफ के खुले बंटन को लगाने लगा।

अवनी ने कहा, 'एक लड़की जहाँ समाज में मौजूद है, वहाँ से चीजों को देखने का उसका दृष्टिकोण ऐसे ही बनता है। वह कई सारे प्रश्नकर्ताओं से घिरी बैठी होती है, मैं भी वैसे ही बैठी थी, पहला सवाल मेहमानों में सबसे

उम्रदराज व्यक्ति, शायद वो लड़के का पिता था, उसने पूछा, 'क्या नाम है?'

'अवनी।' मैंने बताया था।

फिर दूसरा सवाल आया कि क्या करती हो? मैंने जवाब दिया, 'फिलहाल तो कुछ नहीं करती। हाँ, दो माह पूर्व मैंने अपना पीएच.डी. शोध-प्रबंध जमा किया है। अब लेखन कार्य कर रही हूँ।' लड़के के परिजनों में अधिकांश ज्यादा पढ़े-लिखे नहीं थे इसलिए पीएच. डी. को सामान्य डिग्री मानते हुए मुझसे तुरंत अगला प्रश्न पूछा गया।

'बी.एड. किया है?'

'नहीं।' मैं बोली।

मैं पीएच.डी के बारे में विस्तार से बताती कि उससे पहले ही लड़के के पिता के बगल में बैठा व्यक्ति बोल पड़ा, 'पीएच. डी. एक कोर्स है। जैसे रमेश कर रहा है। उसमें कोई बड़ी बात नहीं। बी.एड. का महत्त्व अधिक है। आपको बी.एड. करना चाहिए।' लड़के का जीजा लड़के के पिता की ओर देखते हुए बोला था। उन्होंने मुझे मुफ्त में ही बी.एड करने की सलाह दे दी और पीएच.डी. की डिग्री को मूल्यहीन घोषित कर दिया। मैं कह देना चाहती थी कि आपका लड़का स्वयं पीएच.डी. कर रहा है। क्या उसने आपको कभी नहीं बताया कि पीएच.डी डिग्री है या कोर्स? मुझे लड़के के परिजनों पर दया आ रही थी, लेकिन मुझे लड़के पर उतना ही क्रोध आ रहा था जो चुपचाप बुत बना मुझे घूरे जा रहा था। कम से कम उसे अपने परिजनों को बताना चाहिए था कि पीएच.डी. उच्च शिक्षा से संबंधित डिग्री है। खैर एक संस्कारी लड़की की तरह मुझे केवल उतना ही बोलना था, जितना मुझसे पूछा गया था। मेरा अधिक बोलना संस्कारहीनता की निशानी समझी जाती।

'जी नहीं किया, क्योंकि मेरी बी.एड. करने की इच्छा नहीं थी।' मैंने मन को शांतचित्त करते हुए उत्तर दिया।

'खाना बनाना आता है?' अब प्रश्न पूछने की बारी लड़के की माँ की थी। कहने को यह सामान्य प्रश्न है किंतु सदियों से प्रत्येक लड़की से यह प्रश्न किया जाता रहा है। ससुराल पक्ष को सदैव यह लगता है कि बहू है तो खाना बनाएगी ही, इसलिए यह प्रश्न पूछकर वे सुनिश्चित हो जाना चाहती थी कि बहू आने पर सास और ननद की खाना बनाने के काम से छुट्टी मिल जाएगी। इसलिए उन्हें यह चिंता रहती है कि 'खाना कौन बनाएगा?' वे चाहती हैं कि घर में ऐसी बहू आए जो खाना बनाने में पारंगत हो। उन्हें रसोईघर की सारी जिम्मेदारी बहू के कंधों पर जो डालनी होती है, किंतु यदि यही प्रश्न लड़के से किया जाए, 'उसे खाना बनाना आता है?' तो लड़का इसे अपना अपमान समझता है यानी लड़की ही खाना बनाएगी। खैर! मैंने 'हाँ' में उत्तर दिया। अगला प्रश्न भी खाने से जुड़ा था।

'नॉनवेज बना लेती हो?'

मैंने 'हाँ' में उत्तर तो दे दिया, लेकिन मैं उनसे प्रति-प्रश्न करना चाहती थी कि 'क्या आप नानवेज खाती हो।' लड़की स्वयं नॉनवेज खाती हो या ना खाती हो किंतु उसे नॉनवेज बनाना आना चाहिए अन्यथा उसका नॉनवेज न बनाना और न खाना विवाह में एक रुकावट बन सकती है।

'जॉब करोगी?'

यह प्रश्न लड़के के जीजा ने पूछा। जो, दसवीं कक्षा तक पढ़े थे और गाँव में फोर्थ क्लास की सरकारी नौकरी करते थे।

मैंने 'हाँ' में जवाब दिया, किंतु मेरे मन में यही चल रहा था कि उनको कह दूँ कि इतनी पढ़ाई मैंने घर बैठने के लिए नहीं की है। यदि मुझे जॉब न करनी होती तो इतना पढ़ती ही नहीं।

'जॉब करोगी तो घर का काम कौन करेगा?' अगला प्रश्न किया, 'जब मैं घर का काम करने में समर्थ न हुई तो कामवाली बाई लगा लूँगी।'

मेरा जवाब उन्हें पसंद नहीं आया। उन्होंने खीझते हुए तुरंत तीसरा प्रश्न मेरी ओर कर दिया, 'जॉब लग जाएगी तो आप हवा में तो नहीं उड़ोगी?' इस प्रकार के घटिया प्रश्न की मैंने कल्पना नहीं की थी, फिर भी मैंने पूछ ही लिया, 'मैं कुछ समझी नहीं। आप क्या कहना चाहते हैं?'

'मेरा मतलब है जॉब लग जाने के बाद सास-ससुर की सेवा, खाना बनाना और घर का सारा काम आपको ही करना होगा। हम अपने घर में कामवाली बाई नहीं रखेंगे। आपको जॉब करने के लिए समय से जाना होगा, और समय पर घर लौटना होगा। अपनी मर्जी से आप कभी मायके नहीं जायेंगीं।'

उनके प्रश्नों से मेरे भीतर गुस्सा बढ़ता ही जा रहा था कि एक और प्रश्न बारूद की तरह मेरी ओर कर दिया गया 'इतनी पतली क्यो?' यह प्रश्न मुझे मेरी अस्मिता पर चोट जैसा चुभा। मैं दुबली-पतली हूँ लेकिन वह लड़का बहुत मोटा था। मैं उनसे क्रास-कोस्चन करना चाहती थी। मन में लगा कि बोल दूँ, 'मैं पतली हूँ आप इसे छोड़ो। पहले ये बताओ कि आपका लड़का इतना मोटा क्यों है?' अवनी की यह बात सुनकर श्रेय हँस दिया।

हँसते हुए वह बोला, 'तुम्हें बोल देना चाहिए था।' वह लगातार हँसे जा रहा था।

अवनी ने श्रेय को हँसते हुए टोका, 'तुम हँसना बंद करोगे या नहीं?'

'अच्छा बाबा ठीक है। आगे बताओ क्या हुआ था।' कहते हुए श्रेय चुप लगा गया।

अवनी ने बताया, 'होना क्या था, पारिवारिक संस्कार और इज्जत के कारण मन की बात मन में ही रह गई। मुझे अंदर जाने का इशारा किया गया और मैं अंदर चली गई, लेकिन अभी प्रश्नों का क्रम समाप्त नहीं हुआ था। एक अंतिम और महत्त्वपूर्ण प्रश्न तो अभी बाकी था, जो इस रिश्तों की बुनियाद था। जिसे मुझसे नहीं मेरे परिजनों से पूछा गया था, 'आपकी लड़की हमें पसंद है।' यह सुनकर माँ और मेरे भाई-बहन प्रसन्न हो गए। माँ ने छुटकी को मिठाई लाने को कहा।

'रुकिए' अभी काम की बात करनी बाकी है।' लड़के के पिताजी बोले थे।

'क्या बात है?' माँ ने चिंतातुर स्वर में पूछा।

'शादी कितने लाख की करोगे?' यह प्रश्न लड़के के बड़े भाई ने किया।

माँ बोली 'जैसी शादी होती है वैसी ही करेंगे। 'आप मेरी बात का मतलब समझी नहीं। मेरा कहने का मतलब है 'शादी में कितने लाख रुपए नकद दोगे?' हमें पाँच लाख रुपये नकद और पाँच लाख की शादी चाहिए, यानी कुल मिलाकर 10 लाख रुपये तक की शादी होनी चाहिए।'

अवनी कुछ पल को रुकी फिर आगे श्रेय को बताया, 'मैं अंदर से ये सब बातें सुन रही थी। अभी तक मैंने एक संस्कारी लड़की की भाँति लड़के वाले के किसी भी प्रश्न का प्रत्युत्तर न दिया था, लेकिन सीधे-सीधे दहेज की बात सुनकर मेरे धैर्य का बांध टूट गया। एक घंटे तक पूछे जाने वाले सवालों से मेरे भीतर गुस्सा भर गया था, वो लावा बनकर फूट पड़ा। मैं जो चुपचाप शांत लड़की की तरह उनके सवालों का सीधा-सीधा जवाब दिए जा रही थी, अब कमरे से बाहर निकलकर बैठक में आ गई। माँ कुछ कहती, उससे पहले मैं बोल पड़ी। 'क्या कहा आपने पाँच लाख रुपये और वो भी नकद?' अवनी के चेहरे पर तैश साफतौर पर उभर आया, उसने श्रेय को बताया, 'मेरा चेहरा गुस्से से लाल हो गया था और आवाज में कड़कपन आ गया था। मैंने उनसे कहा कि अच्छा आप ये बताओ कि आपको किस बात का पैसा दिया जाए? इसलिए कि आप लड़के वाले हैं। लड़के के पिता मेरी बात काटते हुए बीच में बोले कि उन्होंने अपने लड़के को पढ़ाया है। आज वो पीएच.डी. कर रहा है। मुझे उनकी बातों पर हँसी आ गई। मैंने उनसे कहा कि वाह अंकल जी आप भी कमाल हैं। आपने अपने लड़के को पढ़ाया है। मेरी माँ ने मुझे अकेले पढ़ाया है। आपके लड़के ने अभी पीएच.डी. का एक साल पूरा किया है। मैं पीएच.डी. पूरी कर चुकी हूँ। फिर तो आपको मुझे पैसा देना चाहिए क्योंकि मैं आपके लड़के से आगे हूँ, और आपको बहू नहीं चाहिए। आप एक नौकरानी की तलाश में हैं और वो भी मुफ्त की। जो दिन-रात आपकी चाकरी में लगी रहे। माफ करना अंकल जी, मुझे आपके लड़के से विवाह नहीं करना। इतने घटिया प्रश्न जिस लड़के के सामने पूछे जा रहे हो और वो मूकदर्शक की तरह बैठकर देख रहा हो। आगे भी वो क्या मेरे साथ खड़ा हो पाएगा? नहीं! कभी नहीं! मुझे नहीं करनी आपके लड़के से शादी।'

सारी बात सुनकर श्रेय को अच्छा लगा, वह कह उठा, 'वाह मेरी झांसी की झलकारी! तुमने तो सीधा सिक्सर लगा दिया।' श्रेय ने खुश होते हुए कहा।

श्रेय के प्रोत्साहन भरे शब्दों से अवनी को खुशी हुई, वह बोली, 'माँ मुझे बीच-बीच में चुप करा रही थी, लेकिन मैं लगातार बोलती रही। लड़के की माँ मुझे बद्तमीज बोल रही थी। अंत में सब खड़े हो गए। लड़के का पिता बोला था, 'यह रिश्ता नहीं हो सकता।' जाते-जाते सब यही बोल रहे थे कि ऐसी लड़की से शादी कौन करेगा? मुझे इस रिश्ते के जुड़ने से अधिक टूटने की खुशी थी। इस प्रकार मुझे बहू के पद के लिए रिजेक्ट कर दिया गया, क्योंकि ससुराल पक्ष संस्कारी बहू के नाम पर मूक-बधिर लड़की चाहते थे। जो आत्मसम्मान को तिलांजलि देकर गलत बातों का विरोध न करे। यदि उसने ऐसा किया तो वह संस्कारहीन है तथा उसकी परवरिश पर प्रश्नचिह्न लगने शुरू हो जाते हैं।'

अवनी ने चेहरे को रुमाल से पोंछा, और फिर श्रेय को बताया, 'भले ही हमारे समाज में दहेज प्रथा का प्रचलन न हो, किंतु आज का शिक्षित दहेज की माँग करने लगा है।'

श्रेय ने अवनी की सारी बात एकाग्र होकर सुनी। श्रेय अवनी को एकटक देखते हुए यही सोच रहा था कि यह वही लड़की है जो रोते हुए को हँसाने की क्षमता रखती थी। भाग्य की विडम्बना तो देखिए इतनी, चंचल, नटखट लड़की की आँखें में नमी है। श्रेय सोचते हुए

गहराई तक उतर गया, उसका ध्यान तब टूटा जब उसके कान में अवनी के शब्दों ने आवाज दी, 'तुम मेरे पुराने दोस्त हो इसलिए तुम्हें अपने मन की सारी बात बता दी।' कहते हुए अवनी भावुक हो गई।

'तुम क्यों रोती हो यार! रोना तो उनको चाहिए जिन्होंने इतनी अच्छी लड़की को ठुकरा दिया। अपने आँसू पोंछो और मुस्कुरा दो। अरे भई, तुम ही तो कहती थी न कि–मन का हुआ तो अच्छा, न हुआ, तो और अच्छा।'

'क्या मैं इतनी बुरी हूँ श्रेय कि कोई मेरे लिए बना ही नहीं। खैर! छोड़ों ये सब। तुम अपनी बताओ। एम.बी.ए. करने विदेश क्या गए अपनी दोस्त को ही भूल गए। क्यों? कम से कम एक कॉल तो कर सकते थे। इतने सालों बाद एक बार भी अपनी दोस्त की याद नहीं आई। मेरे पास तो तुम्हारा नम्बर नहीं था, लेकिन तुम्हारे पास तो मेरा नम्बर था न?'

'ऐसी बात नहीं है अवनी। मैंने सदैव तुम्हें याद किया, क्योंकि तुम्हें कभी भूला ही नहीं। मेरा मोबाइल खराब हो गया था मैंने वहाँ जाकर दूसरा मोबाइल और नम्बर लिया। तुम तो जानती हो छह वर्ष पूर्व आज की भांति सभी के पास टच-स्क्रीन वाले मोबाइल नहीं होते थे। तुम्हारे और मेरे पास भी कीपेड न थे और उस समय फेसबुक और वाट्सएप का भी इतना क्रेज नहीं था। फिर भी मैंने तुम्हें कई बार फेसबुक में ढूंढ़ने की कोशिश की, किंतु तुम नहीं मिली। बस यही दुआ करता था कि जब भी इंडिया जाऊँगा, तुमसे जरूर मिलूँगा, किंतु एम.बी.ए. करने के बाद मेरी एक कंपनी में मैनेजर की पोस्ट पर जॉब लग गई थी, इसलिए वहाँ जॉब करता रहा और पता ही नहीं चला कि छह साल कैसे बीत गए। एक दिन पापा का कॉल आया और वो बोले, 'तू दिल्ली आ जा और अपना घर बसा ले। मैं उनकी बात नहीं टालता।' बात करते हुए श्रेय ने एक अल्पविराम लिया और आगे बताने लगा, 'माँ के जाने के बाद वे अकेले हो गए थे। किंतु मेरी परवरिश करते-करते उन्हें इसका एहसास न हुआ। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। अपना पूरा जीवन मेरे लिए समर्पित कर दिया। अब मेरी बारी है, मैं पापा के साथ रहूँगा और उनकी देखभाल करूंगा। पापा छह साल तक अकेले रहे पर अब ऐसा नहीं होगा।'

'मैं तुम्हें एफबी पर मिलती भी कैसे? मैंने अपने नाम से अकाउंट खोला ही नहीं था। मैंने 'महकता कोना' नाम से अकाउंट खोला था। दोस्तों का महकता कोना। ...ये तो तुमने बहुत अच्छा किया। माता-पिता का सहारा बनना चाहिए। बड़ों की छत्रछाया में ही बच्चों का पूर्ण पल्लवन हो सकता है।'

श्रेय कॉलेज टाइम से अवनी को मन ही मन पसंद करता था, किंतु उसके मन की बात कभी जुबान तक आ न सकी। आज श्रेय अवनी से वही बात करने आया है, जिसे वह वर्षों पहले कहने की हिम्मत न जुटा पाया था।

'अपने दोस्त की एक डिमांड पूरी करोगी अवनी?' श्रेय ने संभावना भरे स्वर में अवनी से कहा।

'दोस्त बोलते हो और डिमांड भी करते हो। तुम तो अधिकार के साथ ऑर्डर करो। बोलो तुम्हें क्या चाहिए?'

'क्या तुम मेरी जीवनसंगिनी बनोगी?'

अवनी को समझ नहीं आ रहा था कि वह श्रेय की बात सुनकर प्रसन्न हो या दुखी, क्योंकि वह जानती थी कि श्रेय सवर्ण जाति का है। वह श्रेय को आश्चर्य से देखती है। श्रेय अवनी का अच्छा दोस्त है लेकिन...।

'तुम जानते हो न मैं एस.सी. हूँ और तुम जनरल।' अवनी ने पूछा।

श्रेय ने बेहिचक कहा, 'इससे क्या फर्क पड़ता है कि तुम एस.सी. हो और मैं जनरल। मुझे तुम पसंद हो, और मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। यहाँ जाति कहाँ से आ गई। क्या तुम इतना पढ़ने के बाद भी जातिभेद में विश्वास करती हो?'

'मैं जातिभेद में विश्वास नहीं करती। लेकिन मैंने पढ़े-लिखे लोगों को जातिभेद की खाई को भरने के स्थान पर और गहरा करते देखा है श्रेय। उनकी कथनी और करनी में बहुत अंतर होता है।'

'मैं इन बातों को नहीं मानता।' श्रेय ने जाति व्यवस्था से असहमति दर्ज की। वह एक पल को बोलते हुए ठहरा, और फिर बोला, 'जानती हो अवनी इतने सालों बाद जब मैं विदेश से घर लौटा तो पापा के चेहरे पर एक सुकून दिखाई दिया। हमने रात को एक साथ बैठकर खाना खाया। जानती हो, उन्होंने मुझसे क्या पूछा।' अवनी को बात बताते हुए श्रेय अपनी स्मृति में उतर गया, वहाँ श्रेय के पापा थे, जो कह रहे थे, 'बरखुरदार, अब शादी कर लो।' उनकी बात सुनकर मैं मुस्कुरा दिया। उन्होंने कहा, इतने दिनों विदेश में रहकर आया है, फिर भी मेरे सामने शरमा रहा है।' उन्होंने रोटी का एक कौर मुँह में ले जाने के बाद मुझसे पूछा, 'अच्छा बता, वहाँ कोई लड़की मिली?'

'नहीं पापा।'

'फिर तो लड़की खोजने के लिए मुझे ही मेहनत करनी पड़ेगी। क्या तुझे

आज तक कोई लड़की पसंद नहीं आई?'

माँ के गुजरने बाद लंबे समय तक साथ-साथ रहने से हम पिता-पुत्र के बीच के संबंध मित्रतापूर्ण थे। उनकी बात सुनकर मैं मुस्कुरा दिया, किंतु इस बार मेरे चेहरे का गुलाबीपन पापा ने भांप लिया और पूछ बैठे, 'कौन है वो? कहाँ रहती है, क्या करती है? क्या उसकी शादी हो गई?'

पापा के पूछने पर मैंने खुले मन से बात की, 'एक लड़की थी पापा, लेकिन मुझे नहीं पता कि अब वो क्या करती है। उसकी शादी हुई या नहीं? उसे कैसे खोजूं, यह मेरी चिंता है।'

'तूने कभी उससे संपर्क करने का प्रयास नहीं किया?' पापा ने पूछा था।

मैंने बताया था, 'किया था पापा। लेकिन मेरे पास उसका फोन नंबर नहीं था। मैंने उसे फेसबुक पर भी खोजा था, वो नहीं मिली। उसका नाम अवनी था मेरे कॉलेज में पढ़ती थी। उसके पिता का देहांत हो चुका था तथा उसके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उसकी माँ प्राइवेट जॉब करती थी। वो एस.सी. थी।'

'कहाँ है वो लड़की?' पापा ने पूछा।

'मुझे नहीं पता?' मैंने उन्हें बताया, पर तभी अचानक से मुझे याद आया कि मैंने फाइनल ईयर में अपने सभी दोस्तों का मोबाइल नंबर एक डायरी में लिखा था। मैंने खाना खाने के बाद अलमारी में डायरी को खोजने की बात पापा से कही।

पापा ने मुझसे कहा, 'उसका नंबर मिल जाए तो उसे कॉल करना और मुझे बताना, क्या बात हुई।' फिर पापा उठकर अपने बैडरूम में चले गये।

मैंने भी खाने के बर्तन रसोई में रखे और हाथ धोने के बाद स्टडी रूम में जाकर तुरंत अल्मारी में डायरी ढूंढ़ने लगा। मुझे वह डायरी मिल गई।

डायरी में अवनी तुम्हारा नंबर मिल गया। मैंने तुरंत तुम्हारा नंबर अपने मोबाइल में सेव किया और वाट्सएप पर चैक किया तो वहाँ प्रोफाइल में तुम्हारी तस्वीर देखकर मैं खुश हो गया, तुरंत तुम्हें मैसेज कर दिया।

श्रेय ने एक-एक करके सारी बात अवनी को बता दी थी, आगे उसने कहा, 'जब मैंने तुम्हारे बारे में अपने पापा को बताया तो वे बोले, 'देखो बेटा, जिंदगी में वही करो, जो मन करे। तुम विदेश जाकर एमबीए करना चाहते थे। मैंने तुम्हें नहीं रोका, तो अब भला मैं तुम्हारी पंसद की लड़की से विवाह करने के लिए क्यूं मना करूंगा। यदि तुम वास्तव में उसे पसंद करते हो तो जाति और आर्थिक स्थिति कभी बीच में नहीं आने देना। जब प्रकृति कोई जातिभेद नहीं मानती तो हम ही क्यों माने। खाते तो हम सब रोटी ही हैं। और फिर ऐसा तो कुछ नहीं है कि हमारे खून का रंग लाल और उनका नीला हो। फिर कैसा भेद। सवर्ण और अवर्ण के बीच दूरियों को बनाए रखने वाले समाज नियमों को मैं नहीं मानता और मैं नहीं चाहता कि मेरा बेटा भी इसे माने। जो कायदे-कानून इंसानियत को जख्मी करने लगे उन्हें मिटाने की जिम्मेदारी हमारी ही है। जानते हो मैं जब एम.ए. फाइनल में था तो मुझे तुम्हारी दादी ने बीमारी का झूठा बहाना बनाकर गाँव बुला लिया। पिताजी ने मेरा रिश्ता कहीं पक्का कर दिया था। उन्हें लड़की पसंद थी, इसलिए उन्होंने जबरन मेरी शादी करवा दी। उन्होंने इतना भी पूछना जरूरी नहीं समझा कि मैं शादी करना चाहता हूँ या नहीं। उस दौरान मैं एक लड़की को प्रेम करता था और शादी भी करना चाहता था। वह ऊँची जाति की नहीं थी। पर मेरी पिताजी और दादाजी के सामने एक न चली। जिसका मलाल मुझे आज तक है। मैं उस लड़की को कभी भुला न पाया। मैं हमेशा यही सोचता था कि काश! मैं निम्न परिवार में जन्मा होता तो उस लड़की से विवाह कर पाता। तेरी मम्मी के देहांत के बाद सबने मुझे दूसरा विवाह करने के लिए विवश किया किंतु मैंने पुनर्विवाह नहीं किया क्योंकि मैं किसी और की जिंदगी खराब नहीं करना चाहता था, इसलिए बेटा जाति को अगर जड़ से उखाड़ फेंकना है तो सवर्ण और अवर्ण का भेद छोड़ना ही होगा, तभी जातिभेद खत्म होगा।' पापा की कही बात सुनाकर श्रेय कुछ पल के लिए शांत हो गया। उसने दो-एक पल बाद ही अपने सिर नीचे से ऊपर उठाया, और अवनी के हाथ पर अपना हाथ रखते हुए प्रस्ताव रखा, 'अवनी मुझसे शादी करोगी?'

श्रेय का प्रस्ताव सुनकर अवनी सकपका-सी गई। उसने अपने-आप को अंदर से समेटा, और श्रेय की आँखों में देखते हुए सिर हिलाकर कर कह दिया, 'हाँ।'

अवनी की सहमति पाकर श्रेय के शरीर में रोमांच की फुरफरी दौड़ गई, हर्ष से उसका चेहरा चमक उठा। उसे अचानक से महसूस हुआ कि आज ये 'महकता कोना' पहले से कही अधिक महक रहा है।❑

डिजिटल आपका धन, समय और संसाधन बचाता है।

मोक्ष

डॉ. प्रियंका सोनकर
मो. 9582692523

हॉस्पिटल के शांत, सफेद गलियारे में, तीनों भाई जड़वत खड़े थे। डॉक्टर की आवाज उनके कानों में गूँज रही थी, 'इस वक्त कुछ भी कहा नहीं जा सकता। मैटर थोड़ा सीरियस है। सही इलाज हुआ तो बचाया जा सकता है।'

डॉक्टर ने तेजी से एक पर्ची पर दवाइयाँ लिखीं, उसे भाइयों की ओर बढ़ाया और लगभग आदेशात्मक लहजे में कहा, 'जाइए! शीघ्र ही ये दवा लेते आइए।'

एक भाई ने पर्ची लपक कर दूसरे को थमाई, आँखों में डर और लाचारी थी। 'जल्दी जाओ,' फुसफुसाहट हुई।

माथे पर चिंता की गहरी लकीरें लिए तीनों भाई अपने बेड पर बेसुध पड़ी माँ के पास पहुँचे। उनका शरीर स्थिर था, मानो वातावरण में सब कुछ थम-सा गया हो। अचानक, छोटे भाई की आवाज वातावरण की चुप्पी को चीर गई।

'भैया, अब तो मेरे पास पैसे भी नहीं हैं।'

बड़े भाई ने दुखभरी निगाहों से माँ को देखा। फिर माँ भी तो अंतिम साँस गिन रही है। शायद ही बचें।' उसकी आवाज में गहरी निराशा थी। तीसरे ने सहमति में सिर हिलाया, 'पैसा लगाकर भी क्या होगा? मैं तो यही कहूँगा कि आप भी न लगाओ।'

पूरी सुबह दुविधा और गहन चिंतन-मनन में बीत गई। जब शाम ढली और भाई किसी तरह हॉस्पिटल पहुँचे, तो उनकी उम्मीदों पर वज्रपात हुआ।

डॉक्टर ने बिना किसी भाव के कहा, 'आपकी माँ नहीं बची।'

मानो बिजली का झटका लगा हो। चीख-पुकार और रोना-धोना शुरू हो गया। 'डॉक्टर, ऐसे कैसे हो गया? माँ की तो साँसें चल रही थीं, फिर...?'

डॉक्टर ने तीनों भाइयों को देखा। उनके चेहरे पर कोई भावना नहीं थी। उन्होंने कुछ बोलना उचित नहीं समझा। बस इतना कहा, 'आप अपनी माँ का शव ले जा सकते हैं।'

कुछ ही घंटों में, घर का माहौल पूरी तरह बदल चुका था। नाते-रिश्तेदारों को संदेश पहुँच गया था। घर में लोगों का हुजूम जुटने लगा था। दूर-दराज के संबंधियों को भी खबर मिल गई थी।

कर्मकांड के लिए पंडित जी को बुलाया गया। माथे पर तिलक, सफेद कुर्ता पहने, धोती का आखिरी छोर हाथों में पकड़े हुए पंडित जी ने घर में प्रवेश किया। उन्होंने घर के बीचों बीच अपना आसन लगाया, भाइयों का ध्यान अपनी ओर खींचा और बैठ गए।

पंडित जी ने कर्मकांड के लिए जरूरी सामग्रियों की एक लंबी-चौड़ी सूची बनाकर भाइयों के हाथ में थमा दी और जल्दी लाने को कहा।

एक कोने में लोग 'टिटी' (अर्थी) बांधने लगे थे। दूसरे कोने में, महिलाएँ बिलखती हुई शव को नहलाने-धुलाने के क्रियाकर्म में लगी थीं। बेटियों का रुदन इतना तेज हो गया था कि देखने वालों की भीड़ भी उस दुख को महसूस कर रही थी।

सामग्री आते ही, एक भाई ने पंडित जी को सौंपते हुए कहा, 'अब आप काम शुरू करें।'

पंडित जी ने गंभीर स्वर में मंत्र पढ़ना शुरू किया और घोषणा की, 'पिंडदान समुचित विधि-विधान से होगा। नहीं तो माता जी को मोक्ष नहीं मिलेगा।'

भाई तुरंत तैयार हो गए। 'हाँ पंडित जी, आप शुरू तो करें।'

पंडित जी ने अपनी आवाज ऊँची की, 'पिंडदान को विधिवत किए जाने पर ही माँ की आत्मा को शांति मिलेगी। आप लोग भी प्रेतात्मा से मुक्त रहेंगे।'

माँ की आत्मा की शांति और मोक्ष प्राप्ति की बात सुनकर, भाइयों का ध्यान सचेत हो गया। उन्होंने पूरे ध्यान से पंडित जी के निर्देशों का पालन किया। पंडित जी ने मंत्रों का उच्चारण करते हुए कहा, 'जो मृत है, उससे अपने रिश्ते को जोड़ते हुए, उनके मोक्ष और अपने जीवन में प्रेतात्माओं से शांति का ध्यान धरते हुए, यहाँ पिंड पर अक्षत के साथ कुछ पैसों को भी अर्पित करें।'

पिंडों की संख्या तीन थी। तीनों भाइयों ने अलग-अलग, तीनों पिंडों पर अक्षत के साथ श्रद्धापूर्वक पैसे समर्पित किए।

इसके बाद, बारी आई अन्य भाइयों और सगे-संबंधियों की। एक ही गोत्र के संबंधियों ने, 'माँ को मोक्ष मिले!' कहते हुए दाह-संस्कार करने वाले भाई के हाथ में पैसा डालना शुरू कर दिया।

देखते ही देखते, भाई का हाथ पैसों से भर गया। इतने नोट थे कि कुछ रुपए फिसलकर जमीन पर गिरने लगे।

पंडित जी की लालची निगाहें पैसों पर टिकी थीं। मंत्र उच्चारण करते हुए भी, वह बार-बार बोल रहे थे, 'और लोग आते जाइए! माँ को मोक्ष मिले और घर में शांति स्थापित हो! सभी दान करें!'

तीनों भाइयों ने जितना संभव हो सका, श्रद्धा के नाम पर पैसे दिए।

घर का आँगन रोने, भागदौड़ और पैसों की खनक से भर गया था।

और बीचों-बीच-माँ का निस्तब्ध, शांत शरीर पड़ा था।

उनके पास अब कोई सांस नहीं थी,

बस उनके मोक्ष की कीमत तय की जा रही थी।❑

पृष्ठ सं. 107 का शेष भाग

है। अब मैं अकेला नहीं था। मेरे शब्दों में मेरी जाति नहीं, मेरा सच बोल रहा था। और सच कभी अकेला नहीं होता। मैं समझ चुका था—यह लड़ाई मेरे अपमान की भरपाई नहीं, एक पूरी पीढ़ी की इंसानियत की माँग है। यह उन सबकी लड़ाई थी जिनके नाम के आगे सन्नाटा लगा दिया गया है। जिनकी पहचान कागजों में तो दर्ज है, लेकिन समाज में नहीं। जिनकी मेहनत दिखती है, लेकिन बराबरी नहीं। हमने संगठन बनाया। डर से नहीं, जरूरत से। हमने नीला झंडा उठाया, किसी रंग के खिलाफ नहीं, बराबरी के पक्ष में। पहली बार सड़कें हमारी आवाज से गूँजीं। नारे लगे, 'हम भी इंसान हैं!'

'हम भी बराबर हैं!'

ये नारे हवा में नहीं, सीधे सत्ता की दीवारों से टकराए। और जैसे हर बार होता है—जवाब में लाठियाँ चलीं। वही पुरानी भाषा। वही पुराना जोर, लेकिन इस बार लाठी की चोट दिल तक नहीं पहुँची। क्योंकि डर से बड़ी चीज, चेतना जाग चुकी थी।

अब हमें पता था कि गिरना हार नहीं है, और चुप रहना सबसे बड़ी हार है। आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो समझ आता है—यह लड़ाई सिर्फ अधिकार की नहीं थी। यह पहचान की थी। अपने नाम को पूरा करने की लड़ाई। अपने वजूद को आधे में कटने से बचाने की लड़ाई। आज भी जब कोई मेरा नाम पूछता है, और मैं पूरा नाम बताता हूँ—तो वही पुराना सन्नाटा अब भी आता है, लेकिन फर्क इतना है—अब वह सन्नाटा मुझे नहीं डराता। अब वह सन्नाटा मेरे सवालों से डरता है, क्योंकि अब मैं जानता हूँ—नाम के आगे लगा सन्नाटा हमारी चुप्पी से नहीं, हमारी आवाज से टूटता है। ❑

SANCHI
(Saturday, Sunday, Monday)

हम आपके ऋणी हैं

भारत वासियों को शुभकामनाएं

76 वें गणतंत्र दिवस की

हमें अपने खून की आखरी बूँद तक...

26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतंत्र देश बन गया, उसकी स्वतंत्रता का क्या होगा? क्या वह अपनी स्वतंत्रता बरकरार रख पाएगा या उसे फिर से खो देगा? यही पहला विचार है जो मेरे मन में आता है। ऐसा नहीं है कि भारत कभी स्वतंत्र देश नहीं था। बात यह है कि उसने एक बार अपनी स्वतंत्रता खो दी थी। क्या वह इसे दूसरी बार खो देगा? यही विचार मुझे भविष्य के लिए सबसे ज्यादा चिंतित करता है। मुझे सबसे ज्यादा परेशान करने वाली बात यह है कि भारत ने न केवल एक बार अपनी स्वतंत्रता खोई है, बल्कि उसने इसे अपने ही कुछ लोगों के विश्वासघात और धोखे के कारण खोया है। क्या इतिहास खुद को दोहराएगा? यही विचार मुझे चिंता से भर देता है। यह चिंता इस तथ्य से और भी गहरी हो जाती है कि जाति और धर्म जैसे हमारे पुराने दुश्मनों के अलावा, हमारे सामने कई राजनीतिक दल होंगे जिनके राजनीतिक विचार विविध और एक-दूसरे के विरोधी होंगे। क्या भारतीय देश को अपने धर्म से ऊपर रखेंगे या धर्म को देश से ऊपर रखेंगे? मुझे नहीं पता। लेकिन यह निश्चित है कि यदि दल राष्ट्र से ऊपर विचारधारा को रखते हैं, तो हमारी स्वतंत्रता एक बार फिर खतरे में पड जाएगी और शायद हमेशा के लिए खो जाएगी। इस स्थिति से हम सभी को दृढतापूर्वक बचाव करना होगा। हमें अपने खून की आखिरी बूंद तक अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने का दृढ संकल्प रखना होगा।

डॉ. बी. आर. आंबेडकर